भारत पुस्तकालय ग्रन्थमाला नं० १

॥ ओ३म् ॥

ऋषि जीवन कथा

डा० भवानी लाल भारतीय

लक्ष्मण आर्योपदेशक

प्रथमवार २०००]

[मूल्य ॥=)

ओ३म
गुरु विरजानन्द दण्डी
संदर्भ पुस्तकालय
दयानंद महिला महाविद्यालय
कुरुक्षेत्र
वर्गीकरण नम्बर ....780....
पु. परिग्रहण क्रमांक ...883

भा ... या

... त,

देवन ... में

मि ... । आर्डर इस पते पर भेजिये ।

मैनेजर,

भारत पुस्तकालय,

लाहौर ।

पंजाब प्रिंटिंग वर्क्स, लाहौर में पं० चरणदास बी. ए. प्रोप्राईटर ने
म० लक्ष्मण आर्य्योपदेशक लाहौर के लिये छापा ।

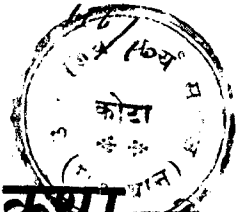

ऋषि जीवन-कथा

अर्थात

महर्षि स्वामी दयानन्द जी महाराज के
जीवन सम्बन्धी मनोरंजक तथा
शिक्षादायक वृत्तान्त

लेखकः—

लक्ष्मण आर्य्योपदेशक

पंजाब प्रिंटिंग वर्क्स, लाहौर।

प्रथमवार १००० प्रति | सम्वत १९७४ वि० | मूल्य प्रति पुस्तक ।)

मुख्य पुस्तकालय
पुस्तक क्रमांक 883
दयानन्द महिला महाविद्यालय
कोटा

भूमिका ।

विद्वान् पुरुष विद्या सम्बन्धी नियमों पर विचार करते हैं, सूक्ष्म से सूक्ष्म विषय पर अपनी तर्क शक्ति द्वारा सफलता प्राप्त करते जाते हैं, परन्तु साधारण पुरुष इस पदवी पर पहुंचने से पहले मोटी २ बातों पर ही बुद्धि लगा सकते हैं । कभी दृष्टांत से समझते हैं, कभी किसी कल्पित किस्से कहानी से । इतिहास का उद्देश्य यही था कि भावी संतान के सन्मुख दृष्टांत और वृत्तांत रखकर उन्हें विद्या सम्बन्धी और धार्मिक नियम समझाए जावें । मनुष्य की दृष्टि उसी बात की ओर आकर्षित होती है, जिसे वह प्रतिदिन श्रवण तथा अवलोकन करता है ।

विद्या का ग्रहण एकाग्रता से होता है और जब बहुधा देखे या अभ्यास में आये हुए ऐतिहासिक वृत्तांतों से ध्यान या मन एक ओर होजाता है,तब पुरुष विद्या सम्बन्धी नियमों को भलीप्रकार हृदय में बैठाता है । राजा हरिश्चन्द्र का राणी और कुंवर सहित पैदल चलना, दुःख उठाना, बिक जाना, कुंवर का मरना आदि वृत्तांत ऐसे हैं कि स्त्री पुत्र वाले चलने फिरने तथा लेन देन करने वाले पुरुष नित्य प्रति उन्हें देखते हैं । अतः यह उन्हें मनोरंजक प्रतीत होते और उन का ध्यान और विषयों से हटाते हैं । और इसीलिये प्रतिज्ञा पालन का नियम सारी कथा के पश्चात् भलीप्रकार उन पर प्रभाव डालता है ।

रामचन्द्र जी के भी बड़े बड़े दुःख सहन करने के
तांत सुना २ कर पितृ-भक्ति की शिक्षा दी जाती है।

इसी प्रकार प्रत्येक पुरुष के शब्द तथा कर्म दूसरों पर
ाव डालते हैं और पुरुष की सर्व प्रकार की बनावट
द गिरद की अवस्थाओं पर निर्भर है। इसलिये भावी
तानों के सुधार वा उन्नति के लिये पहली नीव यह है कि
त वा वर्तमान के महान् पुरुषों के जीवन उनके सन्मुख
र कर उन्हें प्रभाव तथा शिक्षा प्राप्त करने का अवसर दिया
वे। और उनके हृदयों में मनोरंजक घटनाओं से प्रेम उत्पन्न
के उन्हें विद्या सम्बन्धी नियम सिखाये जावें।

साधारण पुरुषों की योग्यता के अनुसार कथा सुनाकर
हें तात्पर्य्य समझाने की आवश्यक्ता से ही नावल तथा
टक का रिवाज़ हुआ, अच्छी घटनाओं तथा विचारों से विद्या
संबंधी नियम समझाने छोड़कर विषय भोग के अभिलाषी
तों को आचार बिगाड़ने वाले चरचे सुनाये गये अथवा इन्हीं
यमों के समझाने के लिये बहुत असत्य मिला दिया गया और
रेणाम जो है, हमारे सामने है। आवश्यक्ता है कि दूसरों के
वन से शिक्षा पाने के मानषी भावों को बड़ी सावधानता से
र्ग दर्शाया जावे सत्य और असली बातों का सब किस्से क-
नियों से बढ़कर प्रभाव होता है। असम्भव अथवा बनावटी
तें दिल्लगी या शुगलका काम दें तो दें, वह बुद्धि तथा कर्म
ा सत्यसिद्ध नहीं होतीं इसालये मैंने सरल और सीधे शब्दों
एक महान् पुरुष की जीवन कथाएं एकत्र कर दी हैं।
र प्रकरण अनुकूल भूमिका तथा शिक्षा के नियम

भी लिखे हैं, मैं मनुष्य पूजा के विरुद्ध हूं। यदि मैं देखत
हूं कि मनुष्यों के चलाये मतमतान्तरों की देखा देखी को
पुरुष ऋषि दयानन्द की पूजा करता है अथवा यथायोग्य
तथा उचित सीमा से बढ़कर सन्मान करता है तो मै
उसे वैदिक आदर्श से गिरा हुआ समझता हूं। परन्तु य
मैं पूर्ण साहस से कहूंगा कि वर्त्तमान और भविष्य संतान
के लिये कोई भी इतिहास या जीवन-चरित्र ऐसा शिक्षाद
यक नहीं होसकता, जैसा ऋषि दयानन्द का जीवन वृत्तां
हो सकता है। अतः मैं आशा करता हूं कि सब विद्या प्रि
सज्जनगण, नवयुवक अथवा वृद्ध स्त्री अथवा पुरुष आर्य
तथा अन्य मतावलंबी इसे अपने सुधार का साधन बनावेंगे
और अपने पुत्रों तथा कन्याओं को निषिद्ध तथा कल्पि
पुस्तकों के स्थान में यह सच्ची कथाएं सुनायें वा पढ़ायेंगे

लक्ष्मण।

ॐ

प्रथम खण्ड

ऋषि जीवन ।

पहला सर्ग

बुद्धि की विलक्षणता ।

परमात्मा ने मनुष्य को उत्तम से उत्तम पदार्थ दिये, और इन पदार्थों के भोग के लिये कर्म्म और ज्ञान इन्द्रियां दीं। रवि और शशि किस कार्य्य के थे, यदि नेत्र प्रकाश ग्रहण करने को न होते, सुन्दर जगत से क्या शिक्षा मिलती ? यदि नेत्र उसका सौंदर्य्य न दिखाते। इन सब के लिये हम परमात्मा को धन्यवाद देते हैं, परन्तु सब से उत्तम दान उस का बुद्धि है, जिस की शिक्षा से सब इन्द्रियों के व्यवहार ठीक होते हैं। पुरुष स्वाद में मस्त होकर खाता ही जाता और उसका पेट फट जाता, यदि बुद्धि उपदेश न देती कि इतना खाओ कि जिस से भूख मिटे और शरीर बचे। सब वस्तुएं दुःख का हेतु होजाती हैं, जहां बुद्धि से काम नहीं लिया जाता। अतः धन्य हैं, वह जो काम समझ और विचार कर करते हैं, और मंदभाग्य वह हैं—जो अन्धाधुन्द चलते हैं। यही वह हैं, जो देखते हुए नहीं देखते, सुनते हुए नहीं सुनते। इन दो प्रकार के मनुष्यों में कितना अन्तर है, इस के जानने के लिये छोटे से बालक मूलशंकर की दो कथाएं आपको सुनाता हूं।

१--साक्षात् देखूं तो सत्य प्रगट हो।

मोरवी (काठियावाड़ प्रान्त) के अम्बाशंकरजी शिव मत के अनुयाई थे,आपकी दृढ़ इच्छा थी-कि मेरा पुत्र मूलशंकर भी इस मत में प्रवीन होजावे,इस कारण उस से शिवलिङ्ग की पूजा करवाते थे। मेल जोल और शिव पुराण की कथा आदि में उसे मन्दिर में साथ ले जाते थे। माघवदि चतुर्दशी संम्वत् १८९४ को शिवरात्रि का त्योहार था, मूलशंकर को त्रयोदशी के दिन ही कहा गया कि कल तुमको उपवास करना होगा। माता कहती रही कि १४ वर्ष का बालक कैसे उपवास कर सकेगा, मूलशंकर स्वयं भी भूखा रहने को दुःख का कारण समझता था। परन्तु पिता ने कुल की रीति का गीत गाया और साथ ही शिव कथा का महात्म्य सुनाया। जो पुत्र को बहुत भाया और उसने पिता के बचन के आगे शिर झुकाया। शिवरात्रि को भक्तजन शिवालय में एकत्रित हुए, जागरण रात्रि भर का है। परन्तु पहिले और दूसरे पहर की पूजा ही हुई थी, कि १२ बजे निन्द्रा ने घेरना आरम्भ किया। सब से पहिले अम्बाशंकरजी ही इसकी लपेट में आये, भक्तजन भी बारी २ लेटते गये यहां तक कि पुजारी भी बाहर आकर सो गये। सुनसान अन्धेरी रात्रि में अकेला मूलशंकर मूर्ति के आगे बैठा रह गया, निन्द्रा आती है, तो नेत्रों पर पानी का छींटा मार लेता है इसलिये कि सोगया तो शिवरात्रि का सारा फल मारा जायेगा।

सरल हृदय बालक सच्चे विश्वास को धारण किये निद्रा से युद्ध कर ही रहा था कि एक विचित्र घटना ने उसके

आत्मा में जागृति सी उत्पन्न कर दी । देखता क्या है कि एक चूहा (मूशक) दौड़ा आया मूर्ति के ऊपर चढ़ गया और चढ़ावे की वस्तुएं खागया और नीचे ऊपर इधर उधर दौड़ता रहा ।

बालक विचारता है कि, हें ! क्या यह वही महादेव है, जिसकी कथा सुनी थी ? ओह ! शिवजी तो पाशुपत अस्त्र से बड़े २ दैत्यों को मारे, परन्तु यह मूर्ति तो मूशक को भी अपने से नहीं हटावे । तुरन्त पिता को जगाया और अपनी शङ्का कह सुनायी, जिस पर पिता को क्रोध आया और उसने उसे दबाया कि तेरी तर्क बुद्धि बड़ी ख़राब है, तू ऐसे प्रश्न क्यों करता है ? (बालक) इसलिये कि कथा वाला महादेव चैतन्य था । वह मूशक को कब अपने ऊपर चढ़ने दे, उसे अपवित्र करता फिरे । जिस महादेव को पारब्रह्म कहा, उसके गुण इस मूर्ति में नहीं प्रासकते । पिता समझाता है, कि सच्चा महादेव कैलाश पर है कलयुग में उस का साक्षात् नहीं होता । इस कारण उसकी मूर्ति पूज कर उसे प्रसन्न किया जाता है । परन्तु मूलशङ्कर की इन बातों से तृप्ति कहां ? वह इस विचार में निमग्न है कि किसी प्रकार महादेव को साक्षात् रीति से देखूं-तो भेद खुले ।

२--अमर होने की औषधि ढूंढनी चाहिये ।

मूलशङ्कर १६ वर्ष का था जब वह एक रात्रि को पिता जी के साथ एक उत्सव में सम्मिलित हुआ । भृत्य (नौकर

ने आकर अकस्मात् सूचना दी कि उसकी १४ वर्ष की भग्नी को हैज़ा होगया, सब दौड़े आए वैद्य बुलाकर औषधियें दी गई, परन्तु निष्फल। रोगग्रस्त बहिन ४ घंटे में कालवश होगई। मूलशंकर बिछौने के पास दीवार की ओट लिये खड़ा था उसने प्रथमवार ही मृत्यु का दृश्य देखा, हृदय को अत्यन्त खेद हुआ। उसने विचारा कि सब ने इसी प्रकार मरना है, मैं भी कालवश हूंगा। कोई ऐसा उपाए मालूम हो कि जन्म मरण का दुःख छूट जावे। सम्बंधी क्या जानें कि उसके हृदय में क्या गुज़र रहा है। वह तो यह देखते हैं कि नेत्रों से अश्रपात तक नहीं होते, और इस कारण कहते कि धिक्कार है! ऐसे बालक पर जो ऐसा कठोर हृदय हो। परन्तु वह अपने विचार में निमग्न है कि जब मौतरूपी शत्रु शिर पर आ ही जावेगा। उस समय कौनसा अस्त्र शस्त्र कहां ढूंढ़ता फिरूंगा और किस पर आश्रय करूंगा उचित तो यह है कि अभी से वह औषधि ढूंढ़ जिससे सारे दुःख दूर हो जावें। इस प्रकार इस घटना ने मूलशंकर के हृदय में वैराग्य उत्पन्न कर दिया। और जब १६ वर्ष की आयु हुई तो एक और प्यारे सम्बंधी की मृत्यु ने इस नीव को पक्का कर दिया। धर्मात्मा चाचा जो मूलशंकर से अत्यंत प्रेम करता था, हैज़े के रोग में फंस गया। मृत्यु के समय उसने मूलशंकर को अपने पास बुलाया और देखते ही नेत्रों में नीर भर लाया तिस पर भतीजे का दिल भी उभर आया और वह इतना रोया कि नेत्र फूल गये। वह फिर प्रबल वेग से इस बात को अनुभव करने लगा कि मृत्यु का दुःख

आने वाला है। चाचा की न्याईं न जाने मैं भी कब चल बसूं। अतः शीघ्र और अवश्य ही अमर होने की औषधि ढूंढनी चाहिये।

शिक्षा।

प्रिय पाठकवृन्द! बड़ी २ घटनाएं आयु भर मनुष्यों ने देखीं। बालकों ने खेल कूद में मूर्तियों को अंग भंग किया, चोरों ने उनके भूषण और वस्त्र उतारे, महमूद जैसों ने उन को तोड़ा फोड़ा, उनके मन्दिर गिराये। परन्तु किसी के हृदय में किंचित्मात्र भी विचार उत्पन्न नहीं हुआ। प्रतिदिन सब ने जगत् में सम्बंधियों को मरते देखा और सुना कि कालचक्र से कोई बच नहीं सकता। सिकन्दरने सातों विलायतें अपने भुजबल से जीतीं, परन्तु काल के अति बलवान शत्रु के सन्मुख लाचार तथा निर्बल रहा। महमूदसा धनवान्, मसीह सा ईश्वर पुत्र, राम और कृष्ण सा अवतार, अथवा जगत् का बड़े से बड़ा बलवान् कोई भी इसके पंजे से नहीं २ छूटा। शोक! शत्रु की चढ़ाई अनिश्चित है। जाने कब युद्ध हो।

फिर भी सैना, तोप और बन्दूक हर समय तय्यार हैं। परन्तु जो मौत का आक्रमण निश्चित होना है, उससे बचाओ का तनक भी विचार नहीं, एक २ दो २ व्यक्ति संबंधि प्रश्नों पर तो बुद्धि रात दिन लड़े। परन्तु जो मृत्यु का प्रश्न जीव मात्र के लिये है, उसको छूआ तक नहीं जाता।

मूलशंकर की बुद्धि की विलक्षणता है कि चूहे की साधारण सी घटना से किस कदर उत्तम शिक्षा ग्रहण

और बहिन और चाचा की मृत्यु देखकर किस प्रकार सबसे बड़ा प्रश्न हल करने पर उद्यत होगया। आओ! हम सब इन कथाओं से बुद्धि-रूपी नेत्र खोलकर जगत में चलना सीखें।

दूसरासर्ग—सच्चात्याग।

उदर भरण तत्पर भये, भेषी संत अनन्त।
जगत् जलधि के तरन को, विरला कोई संत॥

भारत में भगवा वेश बहुत हैं। नाम के साधु और त्यागी लाखों हैं, कोई बाल बच्चों का पालन पोषण नहीं करसका, किसी की घर में न बन आई, कोई वेश्या के पीछे खराब हुआ, कोई मदिरा पान में उजड़ा, किसी ने व्यौपार में घाटा उठाया, किसी को ऋण ने सताया, ऐसे ही कारणों से मुंह छुपाने की आवश्यक्ता हुई तो इस आडम्बर की शरण ली गई। सच्चे-त्याग को किसी ने बिचारा ही नहीं। लाखों करोड़ों साधुओं के होते हुए जहां पाप और ताप बढ़ रहा है, वहां एक सच्चा-त्यागी जगत् को सुख और शांति का मार्ग दिखा सकता है। जैसा कि दयानन्द ने करके दिखा दिया। ऋषि दयानन्द के काम की तह में सच्चा-त्याग ही था. जिस के उदाहरण उस के जीवन में आदि से अंत तक मिलते हैं॥

१—गृह त्याग।

मूलशंकर को लगन लग गई कि मृत्यु पर विजय पाने का उपाए ढूंढ़ू,इस कारण जगत संबंधी कार्य्यों से घृणासी रहने लगी। माता पिता यह जान कर विवाह की फिकर करने लगे कि कहीं पुत्र साधु न होजावे। गृहस्थ का बोझ पड़ गया तो वैराग्य भूल जाएगा। परन्तु मूलशंकरने जूं तूं करके एक वर्ष के लिये यह प्रस्तावना हटा ली और फिर यह प्रार्थना की,कि पिता जी काशी भेज दो तो व्याकरण ज्योतिष् और वैदिक-ग्रंथ पढ़ आऊं। पिताने कहा कि कन्या के माता पिता विवाह पर ज़ोर देते हैं प्रथम तो जो पढ़ा है, वही बहुत है, बरंच यहीं पढ़ो। मूलशंकर हठ करता है, कि पूरा पंडित हुए बिना विवाह करना उचित नहीं।

इस पर माता भी विरोध करती है। अन्त में इतनी प्रार्थना स्वीकार हुई कि मोरवी के पास के ही ग्राम में जो एक प्रसिद्ध पंडित रहता है, उस से मूलशंकर पढ़ें। परन्तु पंडितने अम्बाशंकर को शीघ्र ही सुचना देदी,कि इसे विवाह से घृणा है। बस फिर क्या था,उसे वापिस बुलालिया गया। और वह यह देखकर चकित सा रह गया,कि विवाह की पूरी तय्यारियां हो रही हैं। घर में दो परस्पर विरुद्ध भाव काम करने लगे। माता पिता उस शुभ घड़ी की प्रतिक्षा में थे कि पुत्र दुल्हा बने और बहु घर में आवे। परन्तु बेटा इस धुन में था कि सब मोहादि की ज़ंज़ीरें तोड़ कर घर से निकल जावे। चुनांचि इधर विवाह की तय्यारियां पूर्ण हुईं, उधर

मूलशंकर का भी अन्तिम निश्चय गृह-त्याग का हो गया और वह २२वें वर्ष की आयु में एक दिन सायंकाल को बिना सूचना दिये घर से चल निकला। मानो घर और देश को अंतिम त्याग देदिया ॥

२—तपस्वी जीवन।

स्वामी जी अग्नि तापने, हाथ सुखाने इत्यादि तपों का खंडन करते थे और कहते थे कि पुरुषार्थी बन कर जो धर्म हो उसका पालन करना और जो भी कष्ट धर्माचरण के कारण आवे उन का सहिन करना ही सच्चा तप है। अभिमान आलस्य प्रमाद विषय सेवनादि सब का त्याग उनके तप में शामिल था, और यही उन्होंने अपने जीवन के आदि से अन्त तक सामने लक्ष्य रक्खा। सत्य विद्या और योग के लिये घर से निकले हर प्रकार के शारीरिक सुखका ध्यान त्याग कर देश २ में भटकते फिरे। जहां किसी विद्वान तथा योगी का ज़िकर सुना श्रद्धा और सच्चे प्रेम की भेंटा लिये पहुंचे। हिमावृत पर्वत मार्ग में बाधक हुए, जहां खून का दौरा तक बंद हुआ, ऐसे २ स्थान आए जहां मनुष्य का जाना कठिन है, कांटे वाली झाड़ियां तथा वृक्षों की परस्पर उलझी हुई शाखाओं ने आगे निकलना असंभव कर दिया। न्हें रींग २ कर चलना पड़ा, मांस लौचा गया, रुधिर निकल गाया कपड़े फट गये, इसी प्रकार कहीं जंगली रीछ से भेंट ई, कहीं हाथी से सामना हुआ, कहीं सुनसान मार्ग हित बन आया, यह अकेले नंगे पाओं, नङ्गे शरीर

भूखे पेटके साथ खानपानादि सामग्रीके बिना अंधेरी रात में फंसे और ऐसे अनेक भयानक दृश्य देखने में आए, परन्तु इस अखंड ब्रह्मचारी ने अपनी शुभ इच्छाकी पूरति के लिये जो भी संकल्प धारण किया, उसे दृढ़तासे पूराही करके छोड़ा। साधारण मनुष्य जिन बातों में पुरुषार्थ और साहस त्याग बैठते हैं, स्वामीदयानन्दने महीनों और वर्षों पूरी वीरता से उनको लगातार सहारा ऐसा दृष्टान्त जगत् के इतिहास में मिलना कठिन है। न केवल पहिली आयुमें यह तप साधा, उसके पश्चात् भी सदैव सादापन पर ही आरूढ़ रहे। वर्षों ही एक लंगोटी मात्र से व्यतीत कर दिये उसी से स्नान किया उसे ही धूप में सूखने डाल रेतेमें समाधि लगाय सरदी और गरमी बिना वस्त्र के ही काटी। नगरों में अतिथि हुए तो भी बस्त्र नहीं लिया आवश्यकता हुई तो अपने ऊपर पराली डाल ली, खानें में कहीं जंगली बैंगन से निर्वाह कर लिया। कहीं और फल से। वस्त्र धारण करने के लिये जब कलकत्ते में प्रेरणा हुई आपने इसे स्वीकार किया, तो भी फैशन सर्वथा सादा रक्खा, जो बहुमूल्य वस्तु आई वह जिस के योग्य देखी, उसे दे दी, आप कभी किसी लालच में फंसे नहीं। जब गृहस्थ में भोजन का प्रबंध होता तो भी सादा भोजन के लिये ताकीद करते, हर प्रकार के कष्ट आयु भर सहन किये। आवश्यक्ताओं और संम्बंधों को घटाएं रक्खा और सारी शक्ति मृत्यु समय तक धर्म्म रक्षा पर लगाई इस प्रकार तपस्वी जीवन व्यतीत किया, इससे उच्च-जीवन क्या होगा।

३--वाममार्ग कितना घर कर चुका है ।

टिढ़ी का स्थान साधुओं और राज पंडितों से पूर्ण और प्रसिद्ध था। स्वामीजी सत्य विद्या की खोज में वहां भी पहुंचे। एक दिन एक पंडित ने आपको निमन्त्रण दिया। नियत समय पर आदमी बुलाने आया, और स्वामीजी एक ब्रह्मचारी सहित वहां पहुंचे। परन्तु उन्हें आश्चर्य्य हुआ, जब पंडित को वहां मांस काटते और बनाते देखा। इस पर इनको अत्यंत घृणा हुई। परन्तु आगे जाकर देखा कि बहुत से पंडित मांस हड्डियों के ढेर और जानवरों के भुने हुये शिरों पर काम करते हैं । गृह के स्वामि ने बड़ी प्रसन्नता से कहा, कि भीतर चले आएं। परन्तु स्वामीजी यह कह कर वहां से निकल आये, कि अपना काम करते जाएं। मेरे लिये कष्ट न उठाएं। थोड़ी देर पश्चात् वह पंडित डेरे पर पहुंचा और निमंत्रण में चलने को कहा, यह भी बताया कि मांसादि उत्तम भोजन केवल आपके ही लिये बनाए गये हैं। स्वामीजी बोले-यह सब वृथा और निष्फल है, इसका खाना तो क्या मुझे तो देखने मात्र से ही रोग होजाता है। आप मांस भक्षी हैं, परन्तु मैं फल आहार करता हूं, इस पर वह लज्जित होकर चला गया।

४--पुस्तकों को फाड़ दरया में फैंका ।

स्वामीजी ने कई पुस्तक पढ़े जिनमें नाड़ी चक्रायत और नाड़ी चक्र अर्थात शरीर की रगों का वर्णन था। उनमें बहुत बड़े लम्बे लेख थे, जिनका पढ़ना, समझना,

का स्मरण रखना कठिन था, ऐसे ही कारणों से स्वामीजी को शंका होगई, कि यह सत्य भी हैं अथवा नहीं, इन्हें निश्चय करने का ध्यान रहता था, कि एक शव अचानक इन्हें दरया के ऊपर बहती हुई मिल गई। इन्होंने इसे सत्य निर्णय करने का अच्छा अवसर समझा, पुस्तकों को जो पास थीं समीप रक्खा, कपड़ों को ऊपर उठा दरया में घुस गये और शीघ्र ही लाश को पकड़ कर तट पर ले आये, चाकू से इसे काटा, दिल को इसमें से निकाला, और ध्यान-पूर्वक इसका अवलोकन किया। उधर पुस्तक को सन्मुख रक्खा, और उसके लेख से इसका मुकाबला किया, फिर शिर और गर्दन के भी एक हिस्से को काट कर सामने रक्खा। परन्तु मुकाबला से पता लगा, कि पुस्तक के कथन और लाश में परस्पर विरोध है। वहीं आपने पुस्तकों को फाड़कर टुकड़े २ कर डाला और लाश सहित दरया में फैंक दिया।

५—मनुष्य कृत ग्रन्थ नहीं बाचूंगा।

उन्नति का निर्भर ज्ञान पर है, ज्ञान का आधार वेद है। वेद का मार्ग दिखाने वाले ऋषि कृत ग्रंथ हैं। और इस से भुलाने वाले मनुष्य कृत। जिनमें अयथार्थ बाते हैं। यदि इनमें कुछ सत्य है, तो वह विष मिश्रित मिठाई की न्यांई त्याग करने योग्य हैं। स्वामी विरजानन्दजी ने इसी लिये अपने शिष्य दयानन्द को विदा करते हुए, मनुष्य कृत ग्रंथों से सावधान कर दिया था और इसी लिये उन्होंने सदैव ही ऐसे ग्रंथों से मनुष्यों को बचाया। आगरा

में जब आपकी विद्या की प्रसिद्धता हुई, तो २-
वेदांतियों ने पंचदशी की कथा बांचने को निवेदन कि
स्वामीजी ने कहा-मैं प्रत्येक ऋषि कृत ग्रंथ बाचने को तय्यार
हूं-परन्तु मनुष्य कृत नहीं। उत्तर मिला पंचदशी ऋषि कृ
है, जिसे शंकराचार्य्य जी के शिष्य विद्या आरण्य ने बनाया
है। कथा आरम्भ होगई परन्तु एक स्थान में वर्णन आय
कि कभी २ ब्रह्म को भी भ्रम होजाता है। वहीं 'हरि ॐ
तत्सत् कह कर' आपने पत्रे रख दिये और कहा जिसे भ्रम
हो—वह ईश्वर कहां रहा। गुरु जी ने कहा था कि ईश्वर
निन्दा करने वाला ग्रंथ मनुष्य कृत समझो। तत् पश्चात्
बहुत आग्रह हुआ—परन्तु उन्होंने इसे हाथ नहीं लगाया।

६—सारा जगत् मेरा कुटुम्ब है।

सर्व व्यापक परमात्मा हमारा पिता है, जगत हमारा घर है, प्राणीमात्र हमारा परिवार हैं। परन्तु शोक हमारी अल्प बुद्धि पर जो हमारे हृदयों को संकुचित बना रही है। और हम प्राणी मात्र से प्रेम हटाकर मनुष्यों को ही अपना जानते हैं। बुद्धि और सुकड़ती है और कहीं देश कहीं जाति और कहीं अपने मत तकही हमारा सम्बन्ध रहजाता है। इससे भी गिरे तो अपना नगर और परिवारही प्यारा भासने लगता है,परन्तु संकुचित भावों में जब अत्यन्त वृद्धि होती है तो केवल अपने शरीर अथवाविषयसेवनकी धुन लगी होती है,दुनियां जाय भै में अन्य प्राणी चूल्हे में पड़े, सुख सम्पत्तिका नाश हो। ाग आचार हीन हों, अविद्या में भटकें, कोई परवाह,

८२८
२१२७२४

व...तो काम अपने मन माने आराम से है। आज मनुष्यत्व
...उस ऊंची शिखर पर पहुंचना असंभव प्रतीत होता है,
...न्तु धन्य है ऋषि दयानन्द! जिसने इस असम्भव बात
...अपने जीवन से सम्भव कर दिखाया।

...सं० १९२४ विक्रमीय हरिद्वार में कुंभ हो रहा है। ...खों साधु एकत्रित हैं। जिसप्रकार ब्राह्मण क्षत्रियादि वर्णों की जातियां और उनके आगे और छोटी जातियां बन गई हैं। उसी प्रकार संन्यास मंडल भी गिरि, पुरी, भारती आदि नाम के दस भागों में विभक्त होगया है। हर मंडली वाले बड़े ठाठ से डेरा जमाते हैं। अपने २ डेरों की राजाओं की न्याई शान बनाते हैं। वैशाखी के दिन गङ्गा स्नान के लिये हर एक समूह को पहले पहुंचने की लगी है। शाही जलूस निकल रहा है। साधुओं की सज धज देख कर गृहस्थी भी दंग हैं। कहां त्याग का आश्रम और कहां दिखावा तथा आडम्बर रचना, सेठ साहूकार सहस्रों रुपये लगा कर लंगर जारी कराते हैं। सदाव्रत लगाते हैं और भिखमंगे निकम्मे आनन्द उड़ाते हैं। काम है—तो भंग से या चड़स से। और इस पर बाधा यह कि चड़स की लाटें निकालकर जब उसे भस्म कर देते हैं तो कहते हैं चांदी बन गई। देश भर से भक्तजन पहुंचते हैं मेला देख कर प्रसन्न होते हैं, और हर कहीं यथाशक्ति चढ़ावें चढ़ाते फिरते हैं। ऐसा कोई दिखाई नहीं पड़ता, जो इस प्रदर्शनी के गुण तथा अवगुण पर विचार करे। परन्तु सब को छोड़कर उस ओर को चलिये वह देखो एक "पाखण्ड मर्दन"

पताका लग रही हैं यहां एक आत्मा विचार में निमग्न है। हा! यह क्या अधोगति का दृष्य है, कहां वह त्याग उपकार तथा सरलता की मूर्तियां और कहां यह वेशधारी साधु हाथी, घोड़े स्वर्णमयि तथा रूपहरी झूलें। मखमली ताकिये जरबफ्त के गदेले सोने के कंगन, चांदी के उगालदान रक्खे हैं, परन्तु नाम रखाया है उदासी वा निरमले साधु। शोक! गृहस्थी अविद्या में भटकते हुए हर कहीं लुट रहे हैं। राजा लोग हैं तो वह भी खुशामदियों से घिर रहे हैं और दुनियां को पाप में डुबाने के लिये रुपये की वर्षा कर रहे हैं। विद्वान हैं तो सत्य से मुख मोड़े हैं, यदि कोई सत्य के लिये साहस भी करे तो उसके विरुद्ध मन-सुबे बनावें। आज लाखों मनुष्य सारे भारत के प्रतिनिधि एकत्रित हैं। परन्तु सब मनुष्य-पूजा और पत्थर-पूजा में डूबे हुये हैं। कहां आत्म-दर्शी योगी तथा ऋषि व्यास और कपिल से तत्त्व-वेता, कहां राम और सीता से सन्ध्या प्राणायाम के करने वाले और कहां प्रतिमा पूजक। यदि एक दो हों तो सुधार भी हो, परन्तु यहां तो आकाश ही फट रहा है।

यह विचार इस विचित्र पुरुष के हृदय को बाण की न्याईं बेंध रहे हैं। इस पर यह चिंता उठती है। वेद धर्म लोप होकर ऋषि संतान आये दिन यवन और क्रस्टान होते जाते हैं, कितने मतमतांतर जारी हैं, किस २ का मुकाबला हो। कई बेर ऐसे भाव धैर्य्य तथा उत्साह को घटाते हैं। भाषण भिन्न२ आचार व्यवहार प्रथक्, पुस्तकें अलग२, मनुष्यों में न शरीर का बल, न आत्मा का, न बुद्धि पवित्र, न मन उज्ज्वल,

एक रोग हो तो उपाय भी सोचें। परन्तु यहां तो बुद्धि हैरान है। फिर धर्म्म प्रधान देश की यह दशा है, तो शेष जगत् का तो कहना ही क्या ?।

बारम्बार ऐसे विचार उठते हैं, परन्तु ब्रह्मचर्य्य के बल और तप से आत्मा बलवान् हो चुकी है। इसलिये इन निराशा के विचारों का प्रभाव चिर स्थाई नहीं होता। अंत को हृदय से आवाज़ आती है कि तू औरों की न्याई आलसी न बन। रोग का ज्ञान होने पर औषधि न करना बड़ा पाप है। उठ पुरुषार्थ कर, हिम्मत से काम ले। सोतों को जगा। पुरुषार्थी की ही तो ईश्वर सहायता करता है। "हिम्मते मरदां मददे खुदा" जो अपनी मदद आप करते हैं, परमात्मा भी उनकी सहायता करते हैं। इस शब्द का सुनना था कि "परोपकाराय सतां विभूतये" का सच्चा अर्थ हृदय के सामने प्रगट होता है और दृढ़ संकल्प होता है, कि जगत् उपकार में सर्वस्व स्वाहा करदूं। चुनांचि व्याख्यान में देश दशा का वर्णन करते हुये दिल भर आया और समाप्ति पर "सर्वं वै पूर्णं स्वाहा" कहकर अपना सब कुछ त्याग दिया। पुस्तक, बर्तन पीताम्बरी धोतियां, रेशमी कपड़े, दोशाले, नक़द रुपये जो जिसके योग्य था बांट दिया। कैलाश पर्वत बोले—यह क्या ? उत्तर मिला, जब तक आवश्यकाओं को कम न करूं, स्वतंत्र नहीं हो सकता, मैं सत्य कहना चाहता हूं और वह बंधनों से रहित हुये बिना हो नहीं सकता।

पाठकगण! यह सर्वस्व त्याग करने वाला शूरवीर ऋषि दयानन्द था, जिसने इस काल में अपने आचरण से सिद्ध किया कि सारा जगत् मेरा कुटुम्ब है।

७--स्वार्थी भगवे वेष वालों से बचो।

रावण ने साधु के भेष में सीता को हरा ऐसे ही भेष धारी भिन्न २ ढोंगों से बुद्धिमान लोगों तक को ठग रहे हैं। इस अवस्था में मूलशंकर सा सरल हृदय बालक कब बच सकता था, वह घर से निकलकर अपनी धुन में भटकता फिरता था कि एक भिख मंगो का टोला उस मिल गया जिनमें से एक बैरागी ने एक मूर्ति जमा रक्खी थी, मूलशंकर के हाथ में अंगूठी देखकर मीठी २ बातें करने लगा और जब उसके घर बार त्यागने का वर्णन सुना तब समझा की बस दाल गली, चिढ़ाकर उसे कहा-"अरे! हाथ में सोने की अंगूठियां डालकर वैराग्य की सिद्धि कैसे करेगा?", सरल हृदय नवयुवक ने तीनों अंगूठियां और रुपये मूर्ति की भेंट कर दिये झूंठे बैरागी और संन्यासियों की सचमुच ऐसी ही अवस्था है॥

दुनियां को तो त्याग सिखावे, धनसंपत सबकी हरलावे।

८--इन सबको गंगा में बहा दे।

मिरज़ापुर में राजनाथ शर्मा स्वामीजी के पास पठन पाठन के लिये ठहरा भोजन बनाता और पढ़ाई भी करता था, एक दिन प्रातःकाल स्वामी जी आए तो क्या देखा कि वह आदित्य हृदय का पाठ करता है। स्वामीजी आये और उसकी

सब पुस्तकें इन्द्र-जाल आदित्यहृदय सूर्य्यपुराण आदि उठा ले गये। फिर उस से पूछा—आदित्य के हृदय का पाठ कितनी बार करते हो, वह बोला-आप के पास आने से पहिले २१ पाठ रोज़ करता था। परन्तु अब तो छिप छिपाकर एक आध कर लेता हूं। प्रश्न हुआ, इन इन्द्र-जालादि सब को मानते हो? कहने लगा जांच नहीं की, परन्तु निश्चय है आप के यहां रहने से भेद मिल जावेगा। स्वामी जी ने कहा—इन सब को गंगा में बहा दे और उठ खड़ा हो नहीं तो अपने घर चला जा। राजनाथ ने तुरन्त ही उनको गंगा में प्रवाह कर दिया और अष्टाध्याई आदि पढ़ने लगा।

१—इस विचार में भोजन का ध्यान नहीं आया।

स्वामी जी बरारी के पक्के घाट पर आये तो बाबू नन्दन ओझा मिले, जिन्होंने आपकी बातों से बहुत शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने सायंकाल को भोजन के लिये पूछा—तो आपने नहीं माना कि रात्रि अधिक होगई है, और दूसरे हम जंगली बैंगन खाकर निर्वाह कर लेते हैं। प्रातःकाल आया—तो ज्ञात हुआ—कि स्वामी जी तो आधी रात को ही चले गये, परन्तु स्वामी जी जो योगाभ्यास करने गये थे उसी समय आ पहुंचे। फिर ओझा ने भोजन के लिये कहा, तब उसके सन्ध्या गायत्री

जानने का निश्चय करके स्वीकार किया। सायंकाल को वह प्रीति से भोजन बनवा कर लाया। परन्तु स्वामी जी को अनुपस्थित पाया जब प्रतिज्ञा के पश्चात् भी न आये तो पुजारी के कहने से भोजन वहीं रखकर आप घर चला आया, और प्रातःकाल मंदिर में पहुंचा, देखा तो भोजन वहीं पड़ा रक्खा है, ऊपर कीड़ियां चढ़ रही थीं। पुजारी ने कहा-स्वामीजी तो रात भर नहीं आए। थोड़े समय पश्चात् स्वामीजी आए तो ओझा ने हाथ जोड़कर कहा—महाराज! आपने भोजन नहीं पाया, क्या मुझसे कुछ अपराध हुआ। स्वामीजी हंसकर बोले-भाई आज कोई पर्व था, इसलिये गंगा के उस पार भारी मेला था, कई लोग अपनी कन्याओं को संकल्प कर ब्राह्मणों को देते थे। ऐसे अज्ञान से संसार में व्यभिचार और दुःख विस्तृत हो रहा है। इसी विचार में मुझे भोजन करने का ध्यान नहीं आया, यह सुनकर बाबू के नेत्रों से अश्रुपात हुए।

१०—मुझे इस शब्द से गुरुपन की बो आती है।

लाहौर में एक दिन बाबू सारदाप्रसादने समाज के सभासदों से विचार करके प्रस्तावनकी, कि स्वामीजी को कोई विशेष अधिकार जैसे मुरब्बी अथवा हादी (आचार्य्य) की दी जावे। लोगों ने इसे स्वीकार किया, परन्तु स्वामीजी हंसकर बोले—मुझे इस शब्द से गुरुपन की बो आती है। और मेरा मिशन

गुरुपनाद पंथों के तोड़ने का है न कि स्वयं गुरु बन कर एक नया पंथ स्थिर करने का और कहाकि यदि कल को इसप्रकार की पदवी से मेरा भी दिमाग़ फिर जावे, या मैं बच रहा तो मेरा स्थानापन ही कुछ करने लगे तो फिर तुम लोगों को बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। और वही ख़राबी उत्पन्न होगी जो अन्य नवीन-पंथों को पेश आई है। इस लिये ऐसी कोई प्रेरणा कदापि न होनी चाहिये। बाबू जी ने कहा—और नहीं तो हम आप को इस समाज का परम सहायक कहेंगे। स्वामी जी ने कहा-मुझे परम-सहायक कहोगे तो उस जगदीश जगतगुरु परम-सहाई को क्या कहोगे? अन्त में यह कहा—मेरा नाम सहायकों में लिख लो जैसे और लोग सहायक हैं मैं भी एक सहायक हूं।

११—मेरा कोई संमारिक चिन्ह न बनाना।

एक दिन कविराज श्यामदासजी ने प्रार्थना की, कि स्वामी जी आप का सन्मारिक चिन्ह बनाना चाहिये। स्वामीजी ने कहा—नहीं प्रत्युत मेरी भस्मी को भी किसी खेत में डाल देना काम आवेगी, कोई सन्मारिक न बनाना ऐसा न हो कि मूर्ति पूजा हो जावे। कविराजजी अपना स्टैचू (बुत) बनवाना चाहते थे। परन्तु स्वामी जी ने कहा—कविराजजी ऐसा न करना मूर्ति पूजा का मूल कारण यही है।

१२--वेद आज्ञा पालन में कितने कटिबद्ध हैं।

स्वामीजी उदयपुर राज में थे। एक दिन राणा जी ने इन्हें अकेला पाकर अत्यन्त आधीनता से प्रार्थना की आप राज्य नीति के विरुद्ध मूर्ति-पूजा का खंडन न करें। यह तो आप जानते हैं कि यह रियासत एक लिंगेश्वर-महादेव के आधीन है आप वहां के महन्त बन जावें। कई लाख पर आप का अधिकार होजावेगा और यह रियासत भी धार्मिक सम्बंध से एक प्रकार इस मंदिर के आधीन होगी यह वार्ता राणाजी ने इस उत्तमता से कही की, कि कोई बनावटी इनकी प्रतीत न होती थी। यह सुनते ही स्वामीजी ने कोप से कहा—"तुम मुझे तुच्छ लालच देकर एक बड़े महान् ईश्वर की आज्ञा तुड़वानी चाहते हो। यह छोटी सी रियासत और इस के मंदिर, जिस से मैं एक दौड़ से बाहर जासकता हूं मुझे कभी भी वेद और ईश्वर की आज्ञा तोड़ने पर उद्यत नहीं करसकते। अतः जिह्वा को सँभालें लाखों के धर्म मुझ पर निर्भर हैं मुझे हर प्रकार यह ध्यान है कि सत्य से काम लूं"। महाराज! यह सुनकर आपके धार्मिक भाव से चकित रह गये, और प्रार्थना की मैंने यह सब कुछ परित्यार्थ कहा था, अब मुझे पहिले से अधिक निश्चय हो गया कि वेद आज्ञा पालन में आप कितने कटिबद्ध हैं।

१३—संसारिक धन्धों से मुक्त।

स्वामीजी को कुछ जिमीदार रास्ता में मिले और मुकदमा की बाबत कुछ कहा—महाराज उदयपुर ५० क़दम के फासले पर

खड़े स्वामीजी की ओर देख रहे थ,स्वामीजीने कुछ उत्तरदिया और वह लोग चले गये। राणा सहिबने अपने एक कर्म्मचारी को दौड़ाया कि मुकदमा वालों से जा के पूछो—उन्होंने क्या कहा और स्वामी ने क्या उत्तर दिया। वह कर्म्मचारी दूसरे रास्ते से इन्हें जामिले जिस से इन्हें ज्ञात न हो कि दरबार से आते हैं कर्मचारी के प्रश्न पर उन्होंने बतलाया कि हमने राज्य सभा में अपील की थी, उसी की बाबत स्वामीजी से कहा था। तब उसने पूछा—स्वामी जी ने क्या कहा? उत्तर मिला—"हम साधु हैं हमें संसारिक राजाओं की कार्य्यवाई से कोई सम्बन्ध नहीं"। यह बात जब राणा साहिब को सुनाई गई तो वह बोले—मैंने क्या कहा था,भला ऐसा स्वतन्त्र पुरुष आपने कभी देखा॥

१४--मिथ्या समाचार मुद्रित करने पर ताड़ना।

स्वामी जी के एक बड़े श्रद्धालु और योग्य भगत गोपाल रावहरी ने दयानन्द दिग्विज्य में लेख छपवाया जिस की अशुद्धि एक साधु ने स्वामी जी को लिखी। गोपालराव जी ने लिखा था कि चित्तौड़गढ़ में महाराणा उदयपुर स्वामी जी को दिन में दो बार मिलते रहे जो असत्य था। जब इस साधु ने पत्र लिखा तो स्वामी जी ने तुरंत गोपालराव को स्पष्टतया लिखा कि साधु का कथन सत्य है। शोक! आपने सुन सुनाकर असत्य लिख दिया। उस स्थान में

महाराणा मुझे केवल ३ ही बार मिले थे आप का भाव शुद्ध है आप सत्य से प्यार करते हैं। और इसी हित चित से उपकारक काम कर रहे हैं, परन्तु जिस बात का ठीक २ ज्ञान न हो उस के लिखने का कभी साहस मत करो, थोड़ा सा भी असत्य हो जावे तो सम्पूर्ण निर्दोष कृत बिगड़ जाता है। यह पत्र पाकर गोपालरावजी ने अपनी भूल को बड़े विशाल हृदय से स्वीकार किया और स्वामीजी ने उक्त साधु का पत्र भी साथ ही भेज दिया था, इसलिये गोपालराव ने उन्हें उत्तर दिया। जिसमें भूल पकड़ने के लिये बहुतसा धन्यवाद दिया, और लिखा कि मैंने उदयपुर के कई अच्छे भद्र पुरुषों को लेख दिखलाया था कि जो अशुद्धियां हों वह बतावें, परन्तु किसी ने पता न दिया, आप ने बड़ी ही कृपा की, परन्तु साथ ही यह भी निवेदन है कि आप स्वामी जी को कष्ट न देते तो अच्छा होता, आपने जो स्थाली पुलाक न्याय से एक असत्य होने पर सारे लेख को असत्य समझने का भाव प्रगट किया। यह आर्य्यों के समीप ठीक नहीं, क्या रुपयों की थैली में से एक रुपया खोटा निकलने पर सारी थैली के रुपये खोटे ठहराये जा सकते हैं? अतः सत्य को सत्य और असत्य को असत्य कहना चाहिये, यह पत्र व्यवहार बहुत शिक्षादायक हुआ, और इससे जहां गोपालराव जी की उदारता और योग्यता ज्ञात होती है, वहां स्वामीजी के भूल को मानने तथा उसके संशोधन करने का प्रबल भाव स्पष्ट होता है॥

१५—आर्य्य समाज से पृथक् किये गये।

मुन्शी इन्द्रमुन मुरादाबादी मुसलमानों के जबाव में पुस्तक लिखते थे, स्वामी जी के उपदेश से वह आर्य्य समाज के प्रधान बन गये। कई शास्त्रार्थों में स्वामी जी के साथ गये, इन पर मुसलमानों ने अभियोग किया। जिस पर स्वामी जी और आर्य्यों ने पबलिक अपील उनकी सहायतार्थ की। परिणाम यह हुआ कि रुपया आने लगा। परन्तु स्वामी जी आवश्यक जानते थे कि पबलिक रुपये का उचित तथा उसका नियमानुसार व्यय हो। इसलिये एक कमेटी बनी, जिस कर्त्तव्य था कि हिसाब ठीक २ रक्खे, मुन्शी जी पर मुकद्दमा के पश्चात् जुरमाना हुआ, तो अपीलें करोकर वह भी छुड़ाया गया। परन्तु मनुष्य का मन फिरते देर नहीं लगती। रुपया आता देखकर मुन्शी जी चाहने लगे कि जब मेरे लिये और मेरा नाम लेकर धन लिया जाता है, तो औरों का क्या अधिकार। जो रुपया उनके पास सीधा आया। उसका हिसाब भी उन्होंने नहीं दिया और अनुचित रीति से कमेटी से रुपया मांगते गये सभा ने इसे बुरा मनाया, और स्वामीजी ने भी बारम्बार समझाया। परन्तु इन्हें कुछ ध्यान न आया, हां! उल्टा चोर कोतवाल को डांटने के न्याईं, कमेटी व स्वामीजी के विरुद्ध कहने लगे। परन्तु जब सारा वृत्तान्त प्रगट हुआ,तो आपको अत्यन्त लज्जित होना पड़ा, सभा की रिपोर्ट तथा हिसाब के ब्यौरे ने सारा मामला साफ़ कर दिया, व्यय के पश्चात् जो धन बचा, वह दानियों को उनके दान के अनुसार लौटा

दिया गया। मुन्शी जी लालच के फंदे में फंस चुके थे। और उनका ज़ालिम पेट हद्द से बढ़ चुका था, इसलिये मुरादाबाद आर्य्य समाज ने स्वामी जी की आज्ञा लेकर उन्हें और उन के एक साथी जगन्नाथ को समाज से पृथक् कर दिया। और सब समाजों को सूचना दे दी। सामाजिक पुरुष लोभ लालच तथा नियम विरुद्ध काम के विरुद्ध थे, और ऐसे पुरुषों के समाज के अधिकारी बनने अथवा सभासद् रहने से समाज के गौरव का नाश समझते थे। इसलिये उनके पृथक् होने की सूचना पर मुरादाबाद समाज की सत्य प्रियता की बड़ी प्रशंसा हुई। और स्वामी जी ने यही शिक्षा दी कि धर्मबल और साहस की परीक्षा ऐसे ही समयों पर देखी जाती है, कि कोई बड़ा हो अथवा छोटा, उसके अनुचित व्यवहार पर यथायोग्य दण्ड दिया जावे।

१६—थियोसाफीकल सोसायटी से सम्बन्ध तोड़ दिया।

ऐमरीका से करनैल अलकाट और मैडम ब्लैवट्सकी ने बड़ी श्रद्धा और प्रेम के पत्र लिखे, वेद को धर्म का मूल जताया, स्वामीजी को अपना आत्मिक गुरु लिखा, और बहुत लम्बे लेखों में इच्छा प्रगट की कि हम आपके चरणों में बैठकर शिक्षा लेना चाहते हैं, स्वामीजी उनको विस्तार पूर्वक उत्तर लिखते रहे। और बड़ा चरचा हुआ, कि इतनी दूर के लोग किस प्रकार खींचे आ रहे हैं। थियोसाफीकल सोसायटी और आर्य्यसमाज एक ही समझी गई। अन्त में

गुरु विरजानन्द दण्डी
मन्दिर
पु परिग्रहण कमांक 883
दयानन्द महिला म

करनैल और मैडम दोनों भारतवर्ष में पधारें । समाजों ने उनका अच्छी प्रकार स्वागत किया । स्वामीजी से उनकी कई बेर भेंट हुई, और काम सब बड़े उत्साह पूर्वक होता रहा, परन्तु भारत के प्रेम और श्रद्धा भरे व्यवहार से उनके भी मन फिरने लगे,और वह जो शिष्य बनने आये थे । अब गुरुपनकी बो उनके दिमाग़में भरने लगी । सत्य है यश कीर्ति तथा प्रतिष्ठाके प्रलोभनों से बचकर अपनी वास्तविक अवस्था को ध्यान में रखना हरएक मनुष्य का काम नहीं,सच्चे तपस्वी ही हर्ष वा शोक त्याग कर अपने कार्य्य में डट सकते हैं । मेरठ में एक बार उनकी बात चीत से स्वामीजी को ज्ञात हुआ, कि वह कुछ बातों में असहमत हैं, चुनांचि एक दो नियमों और ईश्वर विषय में वादानुवाद होता रहा । स्वामी जी ने कहा, आपको भली प्रकार सोच विचार कर निर्णय करना चाहिये, चुनांचि इनके प्रश्नों के सन्तोषजनक उत्तर दिये, परन्तु ईश्वर विषय पर उन्होंने स्वामीजी के बारंबार आग्रह करने पर भी बातचीत न की वह कहते रहे, कि शीघ्रता ही क्या है । कभी बात चीत करें लेंगे, अन्त को बम्बई में स्वामीजी ने भली प्रकार प्रगट किया कि हमारे बीच में ईश्वर विषय में एक मत होना आवश्यक है, फिर पत्र भेजा कि यदि शीघ्र ही बिचार होकर परस्पर का मत भेद दूर न हो तो हमारी मित्रता रहना कठिन है, क्योंकि मैं नास्तिकों के खण्डन में आलस्य करने को पाप समझता हूं परन्तु उत्तर मिला कि करनैलसाहिब बाहर चलेगये हैं । और

मैडम साहिबा को समय नहीं सारांश यह है कि निर्णय को आये नहीं, हा उनके व्याख्यान तथा लेखों की रिपोर्ट से विदित होता था कि वह समझते हैं कि हम भारत को जिधर चाहेंगे चला लेंगे उन्हें भूल गया, कि हमारे सन्मान का कारण केवल ऋषि का गौरव ही है, निदान स्वामीजी ने मैडम को पत्र द्वारा अलटीमेटम (अन्तिम निश्चय) दे दिया कि यदि आप अथवा करनैल साहिब या आप दोनों आकर २-४ दिन में अपनी प्रतिज्ञानुकूल बिचार न करेंगे, तो मैं २८ मार्च १८८३ को आप के विरुद्ध व्याख्यान देदुंगा, परन्तु उत्तर नहीं आया और स्वामीजी ने नियत तिथि पर व्याख्यान देकर थियोसाफिकल सोसायटी का पत्र व्यवहारादि सुनाया और सिद्ध किया, कि वह वास्तव में आर्य्य नहीं हैं । उन से सम्बन्ध नहीं रह सकता, यह ही सूचना सब समाजों को देदी । और व्याख्यान जिस से सब वृतांत शृंखला-बृद्ध लिखा था छपवा दिया, इस के पश्चात् थियोसाफिकल वालों के भ्रम जाल फैलाने वाले काम कई स्थानों में प्रगट हुए, कहीं मैस-मरेज़म, कहीं भूत विद्या दिखलाते कहीं योग विद्या का आडम्बर रचते तब सब को निश्चय होगया कि स्वामीजी ने जो उन से सम्बन्ध तोड़ दिया यह सब सर्वथा उचित तथा धर्म अनुकूल था ॥

शिक्षा ।

(१) मनुष्य को अपने जीवन का उद्देश्य निश्चित करना चाहिये, जगत का उपकार इस का नाम रक्खें अथवा

अपना सुधार दोनों से आशा एक ही है, हमारी यथार्थ उन्नति जगत् की उन्नति में ही है, तुच्छ बुद्धि हैं वह जो स्वार्थ भाव से अपने जीवन का नाश कर रहे हैं और जगत् में दुःख बढ़ा रहे हैं, संभव है कि मनुष्य अपनी अथवा अपनी जाति की उच्चत्तम कोटि की उन्नति न करसके। परन्तु आवश्यक है कि अपनी योग्यता अनुकूल उन्नति के मार्ग पर पग उठाये जाना सदैव लक्ष्य रहे। इसी से योग्यता बढ़ती है उन्नति के शिखर पर पहुंच जासकता है। आत्मिक प्रकाश एक पुरुष नहीं देसकता, फिर भी किसी के मन के घाव के लिये मरहम और फाहे का काम देसकता है किसी की भंवर बीच फंसी नावको चक्र लगा सकता है,कोई मनुष्य ऐसा नहीं जो कुछ न कुछ परोपकार न कर सकता और भविष्य में बड़े महान् कार्य्यों के योग्य न हो सकता हो।

त्याग दे अपनत्व को, स्वार्थ नहीं तू ग्रहणकर।
दे लगा अन्यों की सेवा में,यह जीवन सुघड़नर॥

तू जो आया है यहां, तो मुख्य यह कर्तव्य है।
काम परोपकार का कर, कष्ट सारे सहनकर॥

लाभ पहुंचाता है, पर पुरुषों को वह आनन्द है।
स्वार्थी का मन समझलो, है सदा चिन्ता का घर॥

चान्द सूर्य मेघ वायु, वृक्ष दरया सब के सब॥
कह रहे है तुझ से क्या, सुन कान अपने खोलकर।

मौत पर उपकार में, आई जिन्हें हुए अमर ।
स्वार्थी की मौत मरने से, बचाये ईश्वर ॥
उसका जीवन है जो जीता, दूसरों के वास्ते ।
उसका जीना तुच्छ है, जीता है जो अपने लिये ॥

(२) जो शुभ उद्देश्य मनुष्य अपने लिये निश्चित करे उसमें सफलता प्राप्त करने के लिये अपनी सारी उत्तम शक्तियों को उस पर लगा देना चाहिये। इससे योग्यता की त्रुटियां भी दूर होजाती हैं, अन्यथा अधूरे नामक भी ठीक नहीं होते, उन पर "दुबधा में दोनों गये, माया मिली न राम" वाला उदाहरण घटता है, लकड़ी अपने आपको जलाकर भस्म किये जाती है तब ही ऊष्णता और प्रकाश दे सकती है। स्वर्ण तपाया और कूटा जाकर ही कुन्दन होता है, चन्दन घिसा जाने से ही सुगंधी देता है। बीज अपना आप गला कर ही फल बनता है। आत्मा प्रकृति के सारे सम्बन्ध तथा इन्द्रियों और संस्कारों तक से पृथक् होकर ही ईश्वर दर्शन से आनन्द लाभ कर सकता है। अतः निश्चय है कि अपने कर्तव्य पर तन मन और धन को न्योछावर कर देना ही कर्तव्य है :—

पीना चाहे प्रेम रस, और राखा चाहे मान ।
एक म्यान में दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥

(३) इन घटनाओं से भी शिक्षा ग्रहण होती है कि मनुष्य के लिये सच्चा त्याग क्या है ? लोग ज़रा निन्दा करते हैं तो मनुष्य आर्य्य-समाज को त्याग देते हैं यदि यह बात विचार

में आजावे, कि इस मनुष्य के संग चलने अथवा इसके मिलने से अमुक पुरुष क्रोधित होगा अथवा अमुक प्रकार की हानि होगी, तत्काल उससे सम्बन्ध च्युत कर देते हैं; यद्यपि वह कितना धर्मात्मा और सत्य-परायण हो। थोड़ी ही प्रेरणा पर सत्य का परित्याग किया जाता है। घूंस लेकर अपनी न्याय प्रियता पर कलंक लगाया जाता है, किसी बड़े पुरुष के कहने पर मदिरा पान से "न" नहीं हो सकती; झट पवित्रता को त्यागा जाता है। कहां "हां"(स्वीकृति)और कहां "न" (अस्वकृति) करना है इस पर कर्म रूप में ध्यान देना कठिन है। परन्तु यह आत्म-बल विहीन पुरुषों का काम है, यदि बालक भी बल रखता हो तो प्रलोभनों पर विजय पासकता है। चिन्तन करो. उस बालक का जिस का वर्णन कई पुस्तकों में आता है, वह सेना में नौकर है; उस का उच्चाधिकारी मदिरापान के लिये कहता है बड़ा कर्म्मचारी भी धमकाता है। उसे सुनाया जाता है कि आज्ञा भङ्ग करना मानो बिना आई मौत मरनाहै। परन्तु किस दृढ़ता से वह उत्तर दिये जाया है कि—"नहीं मेरा प्रण है इसे कभी न पीऊंगा" अन्त में उच्चाधिकारी भी शिर झुकाते और उस से प्रेम तथा सन्मान और पद तथा वेतन वृद्धि का वर्ताव करते हैं॥

हकीकतराय ने कैसी कीर्ति और यश पाया केवल इसलिये कि उसे मृत्यु की धमकी मिलती है। माता पिता, सम्बन्धी प्रेरणा करते हैं। परन्तु वह यही कहता है कि "मुसलमान नहीं हूंगा"।

उचित समय पर इस 'नहीं' और 'हां' का प्रयोग करना ही आजावे तो मानवी दशा इस अधोगती और पतन के स्थान में सच्चे उत्थान का दृश्य दिखावे ॥

(४) ऋषि का जीवन बताता है, कि तुम्हारे शुभ उद्देश्य में यदि घर बार का भी त्याग करना पड़े तो कर दो; यदि तुम्हारा कर्त्तव्य तुम से तुम्हारे शरीर तक की आहुति चाहता है तो उससे भी स्नेह छोड़ दो। यदि तुम्हारा प्रिय मित्र तथा साथी धर्म्म से पतित होता है तो तत्काल उससे नाता तोड़ लो, भोजन में कहीं मांस आदि का संबंध है तो भूखा रहना स्वीकार करलो; पुस्तक में यदि असत्य लिखा है तो उसे विष युक्त रोटी के सदृश त्याग दो । शुभ गुणों और विद्या आदि के लिये आलस्य और प्रमाद से बचो। धर्म्म और ईश्वर आज्ञा के मुकाबले में अपने स्वत्व को तुच्छ समझो। चक्रवर्ती राज्य भी क्यों न मिले आत्मिक आनन्द में विघ्न डालता हो तो सच्ची शूरवीरता से उस पर लात मार दो और सब से बढ़कर जगत् से मैत्री और भ्रातृ-भाव में बाधा पड़ता दिखाई दे तो अहिंसाधर्म के उच्चादर्श का पालन करते हुए अपने घातक से भी बदला लेने तथा द्वेष का भाव तक छोड़ दो ॥

मैं यह कहता हूं कि तुम, गर्दन न काटो और की।
यह नहीं कहता कि तुम, गर्दन कटाना छोड़दो ॥

तीसरा सर्ग—ब्रह्मचर्य्य ।

हमारे पूर्वजों ने एक दृष्टान्त दिया है कि एक नगरी है, उसकी रक्षा के लिये राजा है। यदि राजा न हो तो जीवन तथा धन आदि सुरक्षित नहीं रह सकते और कोई कार्य्य यथायोग्य नहीं होसकता, परन्तु राजा भी अन्याय तथा अत्याचार कर सकता है, यदि योग्य तथा दक्ष मंत्री राज्य कार्य में उसके सहायक न हों; मन्त्री लाभकारी नहीं होसकता, यदि दीवानी, फौजदारी के न्यायालय और सेना तथा पुलिस न हो यह सब कुच्छ सुप्रबंध के लिये आवश्यक है। परन्तु सब से आवश्यक और लाभकारी वस्तु "कोष" है क्योंकि मंत्री सैनिक आदि सब वेतन पर काम करते हैं, कोष भरपूर हो तो वेतन अच्छा और समय पर मिलता है, सेवक स्वकार्य्य परिश्रम से करते हैं और अच्छे काम करने पर पारितोषिक(इनाम)मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि सारे राजाधिकारी अपने फर्ज़ (कर्तव्य) पर जीवन तक देने को उद्यत रहते हैं, प्रजा प्रसन्न रहती है, राज्य दृढ़ होता है। बड़े से बड़े राजा भी उस देश पर आक्रमण करने का साहस नहीं कर सकता, यदि करता है तो मुंह की खाता है। परन्तु राजा कोष को निष्फल व्यय करके नष्ट कर देवे तो न वेतन पूरा मिलता है न समय पर। राजाधिकारियों में अविश्वास फैलता है, कर (टैक्स) और लगान बढ़ते हैं और प्रजा में असन्तोष का सञ्चार होता है, इसी दुरावस्था में छोटे से छोटा शत्रु भी देश पर आक्रमण करदे तो अपनी प्रजा तथा

राजाधिकारी लोग उस शत्रु से जा मिलते हैं और राज्य नष्ट भ्रष्ट होजाता है।

इस कथन का दारिष्टान्त यह है कि शरीर नगरी है, मन उसका राजा है, इन्द्रियां मंत्री, कर्म इन्द्रियां और सब नाड़ी नस, रग पट्ठ आदि अन्य राज्य विभाग है; यह सब आवश्यक है। परन्तु वीर्य्य-रूपी कोष सब से अधिक आवश्यक है। जो पुरुष इस की रक्षा करते हैं, उनके समस्त अङ्ग बलवान् तथा दृढ़ होते हैं। वीर्य्य-रक्षा से नेत्र में तेज, मुख पर लाली मस्तिष्क में शक्ति आदि आती और शरीर सुडौल होता है। सारे अङ्गों को उन्नत करने वाली सामग्री मिलती है, ब्रह्मचारी को रोग नहीं सताते, वह धूप की तीक्ष्णता को सहन करता है और शीत का कड़ाका उसे दुःखदाई नहीं होता। परन्तु जो पुरुष व्यभिचार अथवा बाल-विवाह से वीर्य्य का नाश करते हैं, उनके समस्त अंग बल-हीन हो जाते हैं। नेत्र तेज विहीन, मुख पीले, शरीर निर्बल, थोड़े से काम पर भी शिर पीड़ा करे, मस्तिष्क तत्काल चक्कर खाजाता है। साधारण से कष्ट पर भी सहन-शक्ति साथ नहीं दे सकती, रोग हर समय शिर पर सवार है। रात दिन का दुःख, रोग पर व्यय, कमाने के अयोग्य बेचारे घुल २ कर मृत्यु की गोद में जाते हैं। सौ से अधिक तो क्या ७०,८०,५०,६०, भी नहीं। बल्कि २०, ३०, वर्ष की युवावस्था में ही चल बसे अथवा शरीर-रूपी नगरी के राज्य रोग-रूपी रिपु-दलों के आक्रमणों से नष्ट हों, जैसा कि आजकल होरहा है॥

हा ! लक्ष्यों कन्यायें ब्रह्मचर्य्य के नाश होने से प्रतिवर्ष विधवाएं हो रही हैं । विद्या में, बुद्धि में, उन्नति नहीं हो सकती, शारीरिक बल आ नहीं सकता, जबतक कि इस मूल मंत्र पर विचार नहीं होता । मन में साहस, उत्साह, धैर्य्य, सहनशीलता, और सच्चा पुरुषार्थ तथा कामों में सफलता सब ब्रह्मचर्य्य सेवन से ही संभव है ।

महाभारत में भीष्मपितामहजी ने क्या उत्तम कहा है:—

"ब्रह्मचारी ही सब प्रकार की सिद्धि का उपलब्ध कर सकता है । कठिनाईयां कितनी भारी हों,ब्रह्मचारी के तपोबल के आगे इस प्रकार छिन्न भिन्न होजाती हैं; जिस प्रकार सूर्य्य के आगे बादल" ।

ऋषि दयानंद अकेला लंगोटी बांधे साधु वेष में काम करने को निकला,न तो उसके पास मनुष्य ही थे । न धन, न राज्य की सहायता; न इच्छानुकूल देश की दशा । हां, सारा भारतवर्ष अपनी सारी सम्पत्ति और वैभव के साथ सारे पंडित अपनी विद्वत्ता तथा योग्यता के साथ, समस्त मतमतान्तर अपने अनुयाइयों के साथ एडी चोटी का ज़ोर लगा कर विरोध करते रहे, परन्तु ऋषि के मन में न भय प्रतीत हुआ न वह सन्मार्ग से तनिक भी डगमगाया । प्रत्युत सब विरोधियों के हृदयों को पलटा देकर सारे संसार में विजय पताका आरोपण कर गया । ऐसे २ विरोध और अत्याचार जिसका चिन्तन भी बड़े २ योद्धाओं को कम्पायमान सकता है । परन्तु सब ब्रह्मचर्य्य से प्राप्त किये, शारीरि आत्मिक और मानसिक बल के कारण उसे तुच्छ प्र

होते थे। ऋषि ने जिस बात को अपने जीवन में सब से अधिक प्रिय समझा, जिस शिक्षा पर बाल्यावस्था से मरण पर्य्यन्त आचरण किया; ब्रह्मचर्य्य व्रतपालन था। ऋषि इस विषय में कहां तक सावधान थे और कहां तक उनके शरीर में बल था अथवा वह ब्रह्मचर्य्य का मनुष्य जीवन से क्या संबंध जानते थे। इसका उत्तर निम्न लिखित घटनाओं से मिलेगा।

१—अपने पतियों को भेजो उनको उपदेश देंगे।

अजमेर में कुछ स्त्रियां स्वामीजी के निवास स्थान (उद्यान)में दर्शन के लिये आगईं। उनसे स्वामीजी ने कहा-माताओ कहां गई थीं? (उत्तर)! राम स्नेही साधुओं के पास गई थीं। (प्रश्न) क्यों गई थीं? (उत्तर) यदि आप आज्ञा दें तो आप के पास आ जाया करें। (प्रश्न) हमारे पास तुम्हारा क्या प्रयोजन है? (उत्तर) हम कुछ उपदेश लेना चाहती हैं। (स्वामी) हम तुमको उपदेश नहीं दे सकते अपने पतियों को भेजो उनको उपदेश देंगे।

२—सांड ने स्वयं मार्ग छोड़ दिया।

एक बार स्वामीजी जारहे थे पग-डंडी में एक हृष्ट पुष्ट सांड सन्मुख आगया, साथी पृथक् होगये; परन्तु स्वामीजी छाती टेक कर उसके सन्मुख खड़े हो गये। चैन सुख आदि

कहते ही रहे कि सांड आया है सांड ! परन्तु उन्होंने कुछ परवाह न की। संस्कृत में कहते रहे,क्या कर लेगा। यह मार्ग में डटे खड़े थे, सांड स्वयमेव मार्ग छोड़ कर हट गया। चैनसुख बोले—"स्वामीजी यदि वह सींग मारता तो क्या होता ?" कहने लगे अरे ! "सुन, मैं दोनों हाथों से उसके सींगों को पकड़ कर हटा देता" ॥

३—हाथ वज्रवत पड़ता प्रतीत हुआ।

राव कर्णसिंह ने जब कर्णवास में स्वामीजी पर प्राण घातक वार किया और ठाकुर लोग उसको धिक्कारने लगे, तब नन्दकिशोर ब्राह्मण राव साहिब के पक्ष में बोले—"महाराज ! रावसाहिब तो ऐसे मूर्ख नहीं कि ऐसा काम करें"। स्वामीजी बोले—ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हें कुछ द्रव्य देता है। इसलिये झूठ बोलते हो, उसने बातों ही में हाथ आगे बढ़ाया तो स्वामीजी ने उसे पकड़ लिया। यह पीछे कहता था कि स्वामीजी का हाथ ऐसा प्रतीत होता था, जैसा वज्र पड़ता है ॥

४—माई भगवती का मिलना।

माई भगवतीजी हरियाना से अपने भाई चूनीलाल सहित बंबई में स्वामीजी को मिलने आई। माईजी के चित्त सत्यार्थ-प्रकाश पढ़कर नवीन वेदान्त से हट गये थे जब मिलने और शंका निवारण का पत्र माईजी का आ तो अगले दिन मध्याह्नकाल स्वामीजी ने नियत किया

उक्त समय पर स्वामीजी ख़ेमे के भीतर रहे और माई को बाहिर बैठने की आज्ञा की। जब माई जी की संशय निवृत्ति हुई तो उन्होंने योग्य सेवा पूछी-स्वामीजी ने उत्तर दिया कि मेरी सेवा यही है कि जितनी योग्यता है उस से अपनी बहिनों को जगाओ और उन में विद्या फैलाओ। माई जी ने आते ही अपने नगर में पाठशाला स्थापन की और आयु पर्य्यन्त जितना बना प्रचार करती रहीं।

५—पतियों को गुरु मानो।

लाहौर में एक दिन कुछ स्त्रियां विशेष आज्ञा लेकर मध्याह्नकाल में आईं कि स्वामी जी से उपदेश ग्रहण करें। स्त्रियों ने पूछा—"ज्ञान और शान्ति किसप्रकार उपलब्ध हो सकती है?" स्वामी जी ने कहा—"तुम्हारे पति ही गुरु हैं। उन्हों की सेवा तुम को करनी चाहिये और किसी साधु को गुरु न मानना चाहिये। विद्या पढ़ो और अपने पतियों को यहां भेजा करो और उन्हों के द्वारा हमारे उपदेश से लाभ उठाओ"।

६—विवाह न करना तुम्हारी आयु न्यून प्रतीत होती है।

लाहौर में कालिज के विद्यार्थी स्वामी जी से संस्कृत पढ़ने आते थे, उनमें शाहपुर निवासी पं०गणपतिराय वकालत पढ़ते थे, "एक दिन स्वामी जी ने उन से पूछा" तुम्हारा

विवाह तो नहीं हुआ ?" वह बोले-"महाराज ! सगाई हो चुकी है"। स्वामी जी, "विवाह न करना"। पूछा-'महाराज ! क्यों?' उत्तर मिला-"तुम्हारी आयु कुछ कम प्रतीत होती है, अर्थात् ३० वर्ष के अन्दर"। पंडित जी ने घर में किसी को न कहा, हां, अपने मित्रों को कह दिया कि मैं विवाह नहीं करूंगा। परन्तु उन के श्वसुर ने विवाह पर बलदिया और घर वालों ने पत्र लिखकर बुलाया, आना तो कहां-उसने उत्तर ही न दिया,कुछ काल पश्चात् तार आया कि तुम्हारे पिता अत्यन्त रोगी हैं;वह "कहते हैं कि हमारा पुत्र है तो घर आकर पानी पीना" वह लाचार हो घर पहुंचे। पिता रोगी तो थे परन्तु साधारण। उन्हें सब ने विवाह करलेने की प्रेरणा की और उन्होंने भी विचार किया कि यदि कोई सन्तान होजावे तो मेरा नाम चला जावे इस पर उन्हों ने विवाह कर लिया और पढ़ना छोड़ दिया, इधर उधर घूमने लगे। एक दिन उन्हें समझाया गया कि ज्योतिषयों और साधुओं की सब बातें सच्ची नहीं होतीं,तुम्हारे यह विचार भ्रम युक्त है कि मेरी आयु थोड़ी है इसलिये बेकार रहना अच्छा नहीं। इस बात से प्रेरित हो कर नायब तासीलदार के पदाभिलाषी हो गये। फिरोजपुर और शुजाआबाद में स्थानापन नायब तहसीलदार भी रहे। परन्तु अन्त में रोगग्रस्त होकर २८ वर्ष की आयु में संसार को परित्याग कर गये, मृत्यु समय उन्हों ने बताया कि मुझे स्वामी दयानन्द ने कहा था कि "तुम्हारी आयु ३० वर्ष से न्यून" है इसीलिये मैं विवाह नहीं कराता था और इसी कारण मैंने विद्या अध्ययन का परित्याग किया था।

७—ब्रह्मचर्य्य के बल का प्रमाण देदिया।

एकबार सरदार विक्रमसिंहने वर्णन किया कि:—"महाराज सुनते हैं। ब्रह्मचर्य्य से बहुत बल बढ़ता है"। स्वामीजी ने कहा—यह सत्य है ऐसा ही शास्त्रों में लिखा है। सरदारजी बोले—शास्त्र में लिखे का प्रमाण सिद्ध होना कठिन है आप भी तो ब्रह्मचारी हैं? परन्तु आप में ऐसा बल प्रतीत नहीं होता। उस समय तो स्वामीजी चुप रहे, परन्तु कुछ घण्टों के पश्चात् जब सरदारजी गाड़ी पर सवार हुए,स्वामी जी ने गाड़ी को पीछे से पकड़ लिया, घोड़ा चलने से रुक गया। सरदार साहिब ने पीछे फिर कर देखा तो छोड़ दिया और हंसकर कहा कि—"यह ब्रह्मचर्य्य के बल का परिचय मैंने दे दिया" ॥

८—बल परीक्षा का खुला चैलंज।

गुजरांवाला में व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने कहा कि "सरदार हरिसिंह नलुवा बड़ा पराक्रमी हुआ है, इसका कारण यही प्रतीत होता है कि वह २५, २६ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहा, मेरी आयु इस समय ५१ वर्ष की है और मुझे विश्वास है कि मेरा भी ब्रह्मचर्य्य अखंडित है मैं दावा से कहता हूं कि जिसको अपने बल का साहस हो मैं उसका हाथ पकड़ता हूं, मुझ से छुड़ा ले,या मैं हाथ खड़ा करता हूं, कोई इसे नीचा करे"। ५०० दर्शक विद्यमान थे इनमें कई कशमीरी मल्ल (पहलवान) थे परन्तु किसी को साहस न

हुआ। इसी प्रकार लाहौर में भी स्वामीजी ने श्रोतागणों को चैलंज दिया, सुनते सब थे, परन्तु आगे कोई न बढ़ा॥

९—स्त्री दर्शन का सर्वथा परित्याग।

एक बार कुछ स्त्रियां निकट से होकर गईं तो स्वामीजी ने उधर पीठ करली। एक पुरुष ने पूछा—आपने ऐसा क्यों किया? क्या आप सदृश ऋषियों के मन में भी स्त्री दर्शन से कोई बुरा विचार उत्पन्न हो सकता है? स्वामीजी बोले—"वास्तव में ब्रह्मचारियों को स्त्री दर्शन से बहुत बचना चाहिये क्योंकि दृष्टि द्वारा रूप उनके भीतर घुस जाता है"॥

१०—कितना पराक्रमी पुरुष है?

स्वामीजी एकबार सड़क पर जारहे थे जहां कीचड़ था, आपने देखा कि गाड़ी और बैल कीचड़ में फंसे हैं, साथी बैलों को बहुत मार रहा है। परन्तु वह चल नहीं सकते। वहीं आप कीचड़ में घुस गये, बैलों को खोल दिया और गाड़ी को खींचकर पश्चिम की ओर सूखी भूमि पर पहुंचा दिया। बाबू अमृतलाल आदि काशी जारहे थे, यह देख कर बहुत चकित रहे कि कितना पराक्रमी पुरुष है॥

११—सदाचार का आदर्श।

एक दिन चित्तौड़गढ़ में व्याख्यान के पश्चात् स्वामीजी कुछ सरदारों और ३, ४ पंडितों सहित भ्रमणार्थ चले। राजपूताना में ग्रामीण लोग वृक्ष के नीचे चबूतरा बांधकर

लकड़ी खड़ी कर देते हैं और उसे देवता की स्थापना कहते हैं। भ्रमण करते हुए स्वामी जी ऐसे ही स्थान के पास से निकले। इस स्थान पर ४, ५ बालक खेल रहे थे। स्वामी जी एक पंडित की शंकाओं का समाधान कर रहे थे। और मूर्ति-पूजा का खंडन करते थे जब इस स्थान पर पहुंचे, ठहर गये। और शिर निवाकर आगे चल दिये। पंडित हंस पड़ा और बोला—देखिये महाराज! आप कितनी ही युक्तियां क्यों न दें, देवता ने बल-पूर्वक आपका शिर झुका लिया। स्वामीजी वहीं फिर एक दम खड़े होगये और बड़ी गंभीरता से एक ४ वर्ष की कन्या (जो उनके बीच में खेल रही थी) की ओर संकेत करके कहा—"देखते नहीं वह मातृ शक्ति, जिसने तुम्हें जन्म दिया"। उन सब में यह श्रवण कर सन्नाटा छा गया और निवास स्थान पर पहुंचने तक किसी ने मुंह न खोला।

१२--बालक को ब्रह्मचर्य्य का उपदेश।

बंबई में एक सेठ अपने १०-१२ वर्ष के पुत्र को संग लिये स्वामी जी के दर्शन को आया और वार्तालाप के अतिरिक्त स्वामी जी ने बालक को उपदेश किया कि "प्रातः उठो, मुंह हाथ धोओ, माता पिता को नमस्ते करो, पाठशाला जाने लगो तो अपनी पुस्तक अपने हाथ में लो भृत्यों के हाथ न दो, स्वयं पुरुषार्थी और परिश्रमी बनो। इसी प्रकार उपदेश देते हुए कहा—किसी स्त्री के मुख की ओर गूढ़-दृष्टि से ध्यान न करो यदि स्त्री दृष्टि के सन्मुख आजावे तो दृष्टि

हटा लो अन्यथा उसका रूप तुम्हारे मन में घुस कर ऐसी उत्तेजना उत्पन्न करेगा कि जिस से वीर्य्य के विषय में रोग होकर तुम्हें अत्यन्त हानि पहुंचेगी, इस पहली आयु में यदि कोई आवश्यक बात है तो ब्रह्मचर्य का पालन है"।

१३--पहरे वाले बदल दिये गये।

जोधपुर में जिस उद्यान में स्वामी ठहरे हुए थे उस की सीढ़ी के निकट एक मारवाड़ी पंडित उतरे हुए थे, एक बार बड़ी महाराणी ने कुछ आम केले आदि अपनी दासियों के हाथ उनके लिये भेजे वह पूछती हुई वहां आगईं। किसी ने कहा कि "पंडितजी बीच के बंगले में हैं अर्थात् स्वामी दयानन्द जी"। यह ऊपर आगईं, स्वामी जी भोजन पाकर लेटे थे, दैवयोग से करवट बदली तो उनको देख लिया तत्काल घबरा कर ज़ोर से पुकारा और उठ खड़े हुए। सेवक जो साथ की कोठरी में लेट रहा था समझा कि कोई स्वामी जी पर खड्ग लेकर आया है,यह नंगे सिर दौड़ा। स्वामी जी ने उससे कहा कि–"क्या अंधेर है। हमारे सामने स्त्रियां आगईं तुम्हारे प्रबन्ध की त्रुटि है, जलदी इन को निकाल दो"। निदान उस ने उनको निकाल दिया और पंडित का ठीक पता बता दिया और स्वामीजी से निवेदन किया कि "पहरे वालों की भूल से ऐसा हुआ"। जिस पर पहरे वाले बदलाये गये जो नये आये उन्हें स्वामीजी ने समझा दिया कि "कोई स्त्री छोटी अथवा बड़ी इस बंगले पर आने न पावे"।

१४--बाल ब्रह्मचारी की विजय ।

शास्त्रार्थ का साहस न पाकर मथुरा के पंडों ने विचार किया कि कोई ऐसी युक्ति करें कि स्वामी दयनन्द सर्व साधारण की दृष्टि से गिरजावें । विचार के पश्चात् एक स्त्री को इस का साधन बनाया गया जो भ्रष्टाचार के कारण प्रसिद्ध थी उस को कहा गया कि—यदि तू किसी रीति से स्वामीदयानन्द को कलंकित करसके तो जो तू मांगेगी देंगे। उसने५००)रु० मांगा जो स्वीकार हुआ,परन्तु उसने कहा—मैं पेशगी लूंगी और भूषणों के रूप में । ऐसा ही किया गया वह स्त्री भूषण पहिन कर प्रातःकाल ही स्वामी जी के डेरे पर आई । पंडे लोग बाहिर ठहरे कि अभी कोलाहल करने का अवसर मिलेगा, परन्तु स्वामीजी समाधी में थे उस स्त्री ने उनके ब्रह्मचर्य की चर्चा भी सुनी हुई थी, उसका चिन्तन करके वापिस आई और कहने लगी, मैं कुछ नहीं करसकती मुझे तो भय लगता है, उन्होंने उपहास की बातें करके पुनः साहस दिया तब वह भीतर गई । परन्तु समाधी न खुली थी, उस के मन में न जाने क्या संकल्प विकल्प उत्पन्न हो रहे थे कुछ देर के पश्चात् यह भूषण उतारने लगी, स्वामी जी ने आंख खोली तो स्त्री को देखकर अचंभित हो बोले–तू कैसे यहां आगई वह हाथ जोड़, भूमि पर सिर निवा रो २ कर कहने लगी—"महाराज क्षमा करो मैं पापिन धनादि के लिये अपना धर्म गंवाती रही अब भी भूषणों के बदले मैं हत्यारी स्वार्थियों की बहकाई यहां आई

थी। परन्तु यहां मेरी मति बदल गई है, यह भूषणादि सब आपके अर्पण हैं। मेरे पाप को क्षमा कीजिये"। स्वामीजी ने कहा—" हमें इन भूषणों की इच्छा नहीं तू इसे ले जा अपने काम में लगा। हमारी ईश्वर से यह प्रार्थना है कि इस समय जो तुझे सुमति आई है वही तेरी आयु पर्य्यन्त स्थित रहे।

शिक्षा।

१-ब्रह्मचर्य्य के नियमों का पूरे यत्न से पालन करना उचित है। सर्व प्रकार की शक्ति और उन्नति का निर्भर इसी पर है इसका यह आशय नहीं कि स्त्रियों और पुरुषों की परस्पर घृणा रहे, किन्तु यह कि यथार्थ उद्देश्य अर्थात् सन्तान उत्पत्ति को लक्ष्य रखे व्यभिचार तथा इसके प्रेरक प्रत्येक व्यवहार से मनुष्य बचे। जिन लोगों ने गृहस्थ त्याग दिया। अथवा गृहस्थ में प्रवेश नहीं किया उनको अर्थात संन्यासी और ब्रह्मचारी को सदा ऐसे प्रलोभनों से बचना आवश्यक है स्त्रीदर्शन, स्त्रियों से अथवा स्त्रियों के विषय में बातचीत करना आदि उनके लिये वर्जित है, इसलिये कि उनके मतों की रुचि अन्य विषयों की ओर न जाये। संतान का उत्पन्न और पालन करना आदि ग्रहस्थ से ही सम्बंध रखते हैं। इसमें भी स्त्री पुरुष को ब्रह्मचारी कहा जाता है। जब वह नियम अनुकूल सन्तान उत्पन्न करते और व्यभिचार के भाव आदि से बचते हैं॥

२—अपनी स्त्री के बिना अन्य स्त्री जाति में मातृ-शक्ति को ही प्रत्यक्ष देखना निःसन्देह बड़े ही उत्तम संस्कारों का

प्रमाण है। परन्तु स्त्रियों पर माता, भगिनि अथवा पुत्री की दृष्टि डालने का स्वभाव हो तो भी मनुष्य को सदैव सावधान न रहने की आवश्यकता है। जब अवसर मिले आंख नीची कर लेना और दूसरी ओर फेर लेना ही कर्त्तव्य होता है। बाल-विवाह तो सारे शरीर की दृढ़ता और उन्नति के मार्ग में अत्यंत विघ्नकारी है और व्यभिचार बड़े से बड़े बलवानों का भी नाश कर देता है, न केवल यह किन्तु खाने पीने व वस्त्र पहरने, व्यायाम और सोना आदि में भी नियम का विचार रखना चाहिये, गरीष्ट (सकील) भोजन जैसे मिठाई आदि वीर्य्य की नालियां पर बोझ डालता है, चाय और मादिक द्रव्य उत्तेजित करने वाले हैं। इसलिये सदैव सात्विक भोजन का सेवन करना तथा सब व्यवहारों में नियम तथा आवश्यकता को लक्ष्य रखा जावे तभी मनुष्य सर्व प्रकार से बलवान हो सकता है, ऋषि दयानंद का शारीरिक बल, बालक युवा अथवा वृद्ध सब को मुक्तकंठ से यह उपदेश दे रहा है कि देखना, अमूल्यरत्न गंवाकर अपने महत्व का नाश न करना॥

चौथा सर्ग, विद्या-प्राप्ति ।

दे गुरु भगवान् विरजानंद से, अब फिर हमें ।
अपने शिष्यों में, दयानन्द सा जो जीवन डालदें ॥

लक्षों पढ़ाने वाले हैं और करोड़ों पढ़ने वाले हैं, परन्तु विद्या क्या है अथवा इसका उद्देश क्या है, इसे विरले ही जानते हैं। अन्न अनाज आदि का लेन देन जिस प्रकार रुपये से होता है, उसी प्रकार फ़ीस अथवा वेतन द्वारा विद्या ली जाती है, व्यौपारी लोग कपड़ा अथवा आटा दाल आदि बेंचकर आजीविका कमाते हैं, तो पढ़े लिखे शब्दों अथवा अक्षरों के सौदे से पेट पालते हैं, आत्मा को जिस ज्ञान की आवश्यकया है, ईश्वर, आत्मा, प्रकृति, इनका भेद तथा परस्पर का संबंध, जगत् के पदार्थ, उनका भोग, सुख और शांति की वृद्धि, किसी भी बात का जानना कठिन होरहा है। जैसे सूर्य नेत्र को बाहिर का रूप दिखावे वैसे ही विद्या का सूर्य वेद आत्मा को तत्त्व-ज्ञान के दर्शन करावे । परंतु अब कहां का वेद और कहां की सत्य-विद्या, परिणाम यह है कि "नानक दुःखिया सब संसार" के कथन अनुसार जगत् नर्क धाम बन रहा है और जब तक विरजानन्द या दयानन्द का सा भाव गुरु और शिष्य में नहीं आता, दुःख बढ़ता ही जायेगा। वह भाव क्या था, यह निम्न लिखित घटनाओं में देखिये :—

१—आदर्श गुरु और शिष्य।

मधु मक्खी जिस प्रकार प्रत्येक पुष्प तक पहुंचती और मीठा रस उससे खींचती है दयानन्द उसी प्रकार प्रत्येक विद्वान के पास पहुंचता रहा, वह ऐसा गुरु चाहता था, जो लोभ लालच तथा स्वार्थ त्यागी हो और सत्य मार्ग दिखावे। ईश्वर की करुणा, उसे गुरु मिले तो विरजानन्द जो बहुत वर्षों से ऐसे शिष्य की तलाश में थे, जो उनके अमूल्य विद्या कोष से संसार को मालामाल करदे, नेत्र विहीन होने से वह काम नहीं कर सकते थे और सोचते थे कहीं ऐसा न हो कि मन की कामनायें मन में रखे ही शरीर त्याग जावें। दयानन्द की वह लगन कि वर्षों अमर होने की औषधी ढूंडता फिरा और विरजानन्द की यह धुन कि अंधा होते हुए भी अविद्या अंधकार फैलाने वालों से निरन्तर युद्ध करते रहे—दोनों एक ही सांचे के ढले थे—और दोनों का मेल होना सचमुच एक दैवी घटना थी।

दयानन्द—द्वार आ खटखटाता है, डंडी जी नाम तथा उद्देश्य पूछ कर द्वार खुलवाते और कहते हैं; कि हम से पढ़ना है तो मनुष्य-कृत ग्रंथों को त्याग दो।

दयानन्द—बहुत अच्छा छोड़ता हूं।

डंडी जी—तुमने जो कहा सारस्वत आदि पढ़ा है यह तो मनुष्य कृत ग्रंथ हैं ऋषि-कृत शास्त्र और हैं।

दयानन्द—महाराज कहिये वह कौन हैं?

डंडी जी—पहले मनुष्य कृत ग्रंथों को छोड़ो।

दयानन्द—मैं संकल्प करता हूं सब छोड़ दिये।

डंडी जी—(सारस्वत तथा कौमुदी की अशुद्धियां बता कर और उनसे संस्कृत विद्या के प्रचार में बाधा पड़ने का वर्णन करके) मेरे शिष्य तब बन सकोगे कि इन पुस्तकों और इनके कर्ताओं का सनमान करना सर्वथा त्याग दोगे। दयानन्द ने सच्चे विश्वास से इस आज्ञा को स्वीकार किया। कौमदी के कर्ता की तसवीर पर जूते लगाये और विद्या प्राप्ति के लिये ऐसे गुरु की सेवा में उपस्थित हुवे जो निः-स्वार्थ तथा सत्य प्रेमी थे।

२—गुरु की ताड़ना अमृत है।

माता पिता तथा आचार्य्य की ताड़ना को शास्त्र अमृत बतलाता है और लाड़ चावो को विष से उपमा देता है, इसी प्रकार विद्या दाता गुरु का संमान और सेवा करना शिष्य का कर्तव्य है विद्या श्रद्धा से प्राप्त होती है। ऋषि दयानन्द अपने गुरु के लिये प्रतिदिन पन्दरह बीस घड़े उत्तम शुद्ध जल के यमुना के बीच से भर के लाते थे-और गुरु की सेवा को धर्म समझते थे।

गुरु ने एक बार लाठी से मारा जिस से उनका हाथ दुःखने लगा तब स्वामीजी ने कहा-"महाराज! मुझे न मारा करें, मेरे वज्र केसे शरीर पर चोट लगाने से आपके कोमल हाथों को दुःख होता है"; इस चोट का निशान अंत तक स्वामी जी के हाथ पर रहा, जिसे देख कर वह सदा

गुरु को याद करते और उनकी विद्या तथा उपकार का धन्यवाद देते रहे।

एकवार डंडीजी ने जब स्वामी जी को लाठी से दंड दिया तो नयनसुख जड़िया ने कहा–"इसे आप न मारा करें यह गृहस्थी नहीं संन्यासी है", डंडी जी ने तिस पर प्रण किया कि–"आगे को दयानन्द को मान से पढ़ायेंगे" परंतु स्वामी जी इस प्रेरणा के लिये नयनसुख से अप्रसन्न हुवे कि–"आपने बुरा किया" गुरुजी-"मेरे सुधार के लिये दंड देते हैं मेरे शत्रु अथवा वैरी नहीं ? जैसे कुम्हार ताड़ ताड़ कर घट को बनाता है, वैसे ही गुरु मुझ पर दया करते हैं"।

३–बेटा ! मतमतान्तरों की अविद्या को मिटा दिखाओ !

वृक्ष अपने फल से पहिचाना जाता है और बीज अपने सदृश ही फल लाता है स्वार्थी गुरुओं के स्वार्थ प्रिय शिष्यों की विद्या का फल यही है कि वह विषयों ही में आयु व्यतीत करदें। परन्तु निष्काम भाव से कर्तव्य का ही पालन किया जाय तो फल कुछ और ही होता है, वह क्या ? इसका उत्तर दयानन्द का समावर्तन संस्कार देगा।

स्वामी विरजानन्दजी मनुष्यों को अच्छे प्रकार पहिचान जाते थे, वह कहा करते थे कि मेरे द्वारा जो अग्नि मेरे शिष्यों में सुलग रही है; वह एक दिन अवश्य ही प्रचंड-ज्वाला के रूप में प्रज्वलित होगी और अन्ध-विश्वास,

भ्रम जाल तथा कल्पित ग्रन्थों का नाश कर देगी। वह इस कथन को मुहम्मा नहीं रखते थे, स्पष्ट कहते थे, मेरा काम यदि कोई करेगा तो दयानन्द ही करेगा, यह विचार आपका सोला आना सत्य निकला।

निर्धन संन्यासी विद्यार्थी दयानन्द विद्या समाप्ति करके गुरु से विदा होना चाहता है, प्राचीन प्रणाली के अनुसार आधसेर लौंग ले गुरु की भेंट करता है और कर जोड़े नम्रता से आज्ञा मांगता है। गुरु "दयानन्द! जाते हो तो हमारी दक्षिणा देना धर्म है"।

शिष्य—महाराज! जो आज्ञा हो पूरी करूं।

गुरु—जानता है कि किस शिष्य को सम्बोधन कर रहा हूं, इसलिये न द्वितीय वार प्रतिज्ञा करवाता है, न सौगन्द लेता है सरल और स्पष्ट शब्दों में कहता है, मुझे न धन चाहिये न मान केवल यह चाहता हूं:—

"पुत्र! विद्या को सफल कर दिखाओ, परोपकार तथा सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मतमतांतरों की अविद्या को मिटाओ, वैदिक धर्म फैलाओ, यही मेरी दक्षिणा है"।

दयानन्द—(गंभीरता से इस दक्षिणा के महत्व पर विचार और बड़ी नम्रता से नमस्कार करके) गुरु जी आपकी आज्ञा सिर माथे पर आयु प्रयन्त इसके लिये ही यत्न करूंगा।

गुरु—पुत्र! ईश्वर तेरे पुरुषार्थ तथा परिश्रम को सफल करे, यह मेरी आशीर्वाद है, और यह मैं एक आन्तम

शिक्षा तुम्हें देता हूं कि "मनुष्य-कृत ग्रंथों में परमेश्वर और ऋषियों की निन्दा है परन्तु ऋषि कृत में नहीं, इस कसौटी को हाथ से न देना"।

४--कृतज्ञता के भाव।

गुरु दक्षिणा को आयु प्रयंत स्वामी जी ने लक्ष्य रखा, इसके अतिरिक्त जहां कोई विद्यार्थी मिलता उसे गुरु जी के पास पहुंचने की प्रेरणा करते। यदि धन होता तो किसी पुरुष के हाथ गुरु जी को भेजकर अपनी श्रद्धा की सूचना देते, अन्तिम वार कार्तिक संवत् १९२३ में मथुरा में गुरु जी के दर्शन किये, स्वामीजी कुंभ प्रचार में प्रथमवार सम्मिलित होने चले तो गुरु जी से मिलना उचित समझा एक रसोइया और पांच अन्य पुरुषों सहित आप मथुरा आए, दो मुहरें और मलमल का थान उनकी भेंट किया। आज्ञा मांगी कि मैं कुंभ पर सत्य-धर्म प्रचारार्थ जाता हूं, भागवत खण्डन का पुस्तक भी दिखाया, उस समय विरजानन्दजी को जो प्रसन्नता हुई होगी-वह उनका चित्त ही जान सका होगा। सच्चा शिष्य परोपकारी गुरु की आज्ञा पालन में कटिबद्ध हो और गुरु का हृदय प्रफुल्लित न हो यह संभव नहीं।

स्वामीजी ने अपने नूतन विचारों का वृतांत सुनाया, शंका निवारण किये और डंडी जी ने उनको आशीर्वाद देकर वेदा किया।

शाहवाज़पुर में जब डंडी जी की मृत्यु का समाचार स्वामी जी ने सुना तो आपका चेहरा कुमला गया हृदय में

वैराग्य तथा उदासीनता छागई-कुछ काल मौन रहकर बोले– "आज व्याकरण का सूर्य्य अस्त होगया" शोक को जीता हुआ दयानन्द जो इस घटना से इतना शोकातुर हुआ यह गुरु से अगाध प्रेम तथा श्रद्धा का कारण था।

५–आज कल के पढ़े लिखे दंग थे।

गुरु विरजानन्दजी से पढ़कर और जहां से सत्य विद्या मिली प्राप्त करके स्वामी जी विद्या में इतने कुशल हुए कि वर्तमान में इतना विद्वान होना असंभव कहा जा सकता है, यह उनकी अपूर्व विद्वत्ता का ही परिणाम था। कि उन्हें ऐसे समय में सफलता प्राप्त हुई जब कि विज्ञान तथा पदार्थ विद्या का राज्य था और तर्क वितर्क की स्वतंत्रता थी।

रुड़की में एक दिन स्वामीजी ने व्याख्यान दिया जिसमें अंगरेज़ी फ़िलासफ़ी, डार्विन के मत, अंगरेज़ी शिक्षा प्रणाली का प्रभाव इत्यादि विषयों पर अपने विचार प्रगट किये डार्विन के सिद्धांत का युक्ति पूर्वक खंडन सुनकर अंगरेज़ी पढ़े लिखों की आंखें खुल गईं। वह समझते थे कि रसायन विद्या और तर्क शास्त्र आदि जो हम अंगरेज़ी कालिजों में पढ़ते हैं, प्राचीन समय में कोई नहीं जानता था, परन्तु जब केवल संस्कृत जानने वाले स्वामीजी का शृंखला-बद्ध व्याख्यान सुना, और युक्ति की प्रबलता पर विचार किया तो उनमें से एक पुरुष बोला—"महाराज! हम तो समझते थे यह विद्यायें वर्तमान में निकली हैं"। स्वामी जी ने कहा—"देश की वर्तमान अवस्था पर शोक है, आप

जिस विषय को नूतन आविष्कार मानते हैं उसका नाम लें, मैं आपको प्राचीन पुस्तकों में दिखाऊंगा"। इस पर पृथ्वी के घूमने, सूर्य के चलने, पाताल देश, मेघ, वर्षा, नक्षत्र भूकम्प आदि नाना प्रकार के विषयों पर प्रश्न हुवे और स्वामीजी ने प्रबल युक्तियां देकर सत्य शास्त्रों से उत्तर दिये; संस्कृत वाक्यों का शब्दार्थ सुनते ही श्रोतागण पूर्णतया संतुष्ट हो जाते थे। पंडित उमरावसिंह ने कहा—"पृथ्वी में आकर्षण शक्ति की विद्यमानता का सिद्धांत न्यूटन का आविष्कार है" इस पर स्वामीजी ने सेव के गिरने का सारा वृतांत सुनकर एक श्लोक पढ़ दिया, और उसका अर्थ सुना दिया। वेद मंत्र भी कई बोले और सब को इस बात का निश्चय करा दिया कि इस सिद्धांत का ज्ञान वेदशास्त्र द्वारा हुआ। शिक्षित मंडली ने सच्चे हृदय से वेद के महत्व को स्वीकार किया, सत्य कहा है कि पूर्ण विद्या से ही जगत् में मान्य बनता है।

६—व्याकरण में कुशलता।

रुड़की में स्वामीजी से एक पंडित मिले जो संस्कृत में अपूर्व विद्ववान थे, तर्क में अद्वितीय प्रसिद्ध थे; फ़ारसी अर्बी भाषा भी जानते थे। स्वामीजी ने बहुत सन्मान से उन्हें पास बिठलाया, कई विषयों पर वार्तालाप होता रहा। तत्पश्चात् पंडित ने कहा—"मैंने संस्कृत में एक व्याकरण बनाया है जिसे छपवाऊंगा कृपया आप भी इसे देखें"? स्वामीजी ने पांच सात मिन्ट उसे देखकर कहा—"आपकी योग्यता बहुत

अच्छी प्रतीत होती है प्रचलित संस्कृत को आपने अच्छा अध्ययन किया है, आप क्या काम करते हैं"। वह बोला-"मैं खाली हूं"—(स्वामी) आप मेरे पास आ जायें। आपकी सहायता होगी, वेद विद्या भी आप प्राप्त करेंगे और मुझे भी आप से सहायता मिलेगी।

पंडितजी ने धन्यवाद देते हुवे कुछ कारण बतलाकर कहा—"मैं तुरंत नहीं जासकता"। स्वामी—"जब आसकें आयें, परन्तु आगे को अपना समय किसी उत्तम कार्य में लगायें"।

पंडित—क्या करूं।

स्वामी—इस व्याकरण के बनाने में जो समय खोया किसी आर्ष-ग्रंथ के भाष्य में लगाते तो सर्व-साधारण का उपकार होता।

पंडित—क्या मेरा व्याकरण कुछ नहीं ?

स्वामी—जैसा है वैसा ही है, परन्तु इस से किसी का कोई लाभ नहीं हो सकता। ऐसे व्याकरण सारस्वत, चंद्रिका आदि बहुत बने हुए हैं, आपने नई वार्ता क्या की-जैसे वह अपूर्ण वैसे ही यह भी अपूर्ण, आप कोई बढ़िया काम करें

पंडित—मेरे व्याकरण में संस्कृत के सब नियम यह पूर्ण हैं।

स्वामी—आप अपने व्याकरण से कोई नियम पढ़िये

पंडित—एक नियम पढ़ा, स्वामीजी ने सत्तरह अठारह वेद मंत्र बोले और कहा—"इनमें से किसी पर यह नियम लगावो" परन्तु कहीं भी वह न लग सका।

पंडित—(चिरकाल तक सोच विचार में रहकर) निःसंदेह किसी पर यह नियम नहीं लगता; परंतु वेद का व्याकरण पृथक् हो सकता है, यह प्राकृत संस्कृत का है।

स्वामी—यही तो मेरा आक्षेप है, व्याकरण ऐसा हो, जो सर्वथा काम दे। प्राकृत संस्कृत के लिये एक व्याकरण पढ़ें, वेद के लिये दूसरे की तलाश करें, यह केवल समय को व्यर्थ खोना, सिर दर्दी करना है। तत्पश्चात स्वामीजी ने शास्त्र, इतिहास तथा अन्य संस्कृत पुस्तकों से श्लोक पढ़कर कहा–"अच्छा इनमें से किसी पर यह नियम लगाइये", पंडित जी बहुत चकित और विस्मित से रह गये और स्वामीजी के चरण पकड़ कर बोले "आप समुद्र हो–मुझे इससे पूर्व कभी ऐसा विचार न आया था"।

मैंने यह पुस्तक काशी के पंडितों को भी दिखलाया किसी ने दोष नहीं बतलाया सबने प्रशंसा ही की, परन्तु भेद आप से खुला। अन्त में स्वामीजी ने पाणिनी का एक सूत्र पढ़ा जिसमें उपरोक्त नियम का वर्णन था और कहा–इसे चाहे वेद मंत्रों पर लगावो चाहे प्राकृतक संस्कृत पर कोई विरोध नहीं होगा, यह है प्राचीन ऋषि-कृत पुस्तकों का महत्व, बस ऐसी ही पुस्तकों की टीका लिखो जिससे संस्कृत विद्या की उन्नति हो।

शिक्षा।

(१) विद्या जगत् व्यवहार अथवा टके कमाने के लिये नहीं, किन्तु यथार्थ ज्ञान प्राप्ति के लिये। खान पान आदि के

पदार्थ तो मनुष्यों को मिले ही हुए हैं आत्मा को आवश्यकता दुःख से छूटने की है और उस का साधन यथार्थ ज्ञान है।

(२) इसी प्रकार विद्या का आशा स्वार्थ सिद्धि अथवा मान प्रतिष्ठा पाना आदि नहीं हो सकता, यह तो बिना इच्छा के भी विद्वान् को मिलते ही हैं। विद्वानों को तो लक्ष्य केवल मनुष्यमात्र की उन्नति तथा परोपकार को रखना चाहिये। जहां शिष्य का उद्देश्य केवल यह हो कि मैं टके कमाने के योग्य बनूं और गुरु को केवल वेतन के लिये ही पढ़ाना स्वीकार हो वहां मनुष्य अपने असली उद्देश्य की सिद्धि कदापि नहीं करसकते, किन्तु अवस्था यह होती है कि:-

लोभी गुरु लालची चेला, दोनों खेलें दाव।
भवसागर में डूबते, बैठ पत्थर की नाव॥

(३) वेद सत्य विद्या की खान है, मानवी जीवन सम्बन्धी सर्व-प्रकार के कठिन से कठिन प्रश्नों का उत्तर इसी से मिल सकता है, और इसी से ही सच्चे अर्थों में विद्या प्रचार की यथावत् शैली का पता चल सकता है। परन्तु वर्तमान में वेद का प्रचार नहीं रहा, और सर्व प्रकार की उत्तम मर्यादाएं बिगड़ रही हैं, विद्या का नाम ले लेकर अविद्या फैल जा रही है, और वेद के सच्चे विद्वानों की अनउपस्थिति वर्तमान शिक्षा प्रणाली पर व्यर्थ अभिमान हो रहा है. की अंगुठी बड़े बोल निकाल रही है, लेकिन बात व

"जब ताव दिया जाता है, हो जाता है मुंह फ

(४) गुरु का सन्मान तथा उसकी आज्ञा पालन शिष्य का कर्तव्य है, माता पिता तथा आचार्य्य की ताड़ना अमृत के तुल्य है और वृथा लाड़ प्यार विषवत्, निश्चय गुरु शिष्य की भलाई को उस से अधिक उत्तमता से समझता है और डंड भी देता है, तो शिष्य के सुधार के लिये, अकर्तव्य से हटाना तथा कर्तव्य पर आरुढ़ करना ही उसे अभीष्ट है, इस भाव को भले प्रकार लक्ष्य रखकर गुरु आदि के क्रोध से भी अपनी उन्नति करनी चाहिये ॥

(५) ऋषिगण! अपने स्वत्व को सचाई पर न्यौछावर करते तथा ईश्वर और ईश्वरी ज्ञान के आगे झुके रहते हैं अपने सम्बन्ध में आडम्बर तथा मान प्रतिष्ठा को वह विष-वत् त्यागते हैं, परन्तु साधारण मनुष्य ऐसी मिथ्या बातों में ही उन्मत रहते हैं, इसी कारण ऋषिकृत ग्रन्थ जहां स्पष्ट रीति से वेद मार्ग दरशाते हैं वहां मनुष्यकृत पुस्तक सन्मार्ग से हटाकर कुमार्ग में भटकाते हैं ॥

पांचवां सर्ग, सत्यपरायणता।

मित्र शत्रु कुछ कहें, चिन्ता कभी ना कर ज़रा।
लाभ हानि के विचारों से, रहो हरदम जुदा॥
सुन नहीं जो लोग कहते हैं, कहे जायें सदा।
अपनी धुन में मस्त पालन कर तू बस कर्तव्य का॥
सत्य का, हां सत्य का, उपदेश सब को दान दे।
धर्म का रस्ता बता, अधिकारियों को ज्ञान दे॥

जिस प्रकार मकड़ी अपने भीतर से जाला निकालती और उसी में अपने आपको कैद करती है, उसी प्रकार मनुष्य अपने लिये ज़िम्मेवारियां और बंधन पैदा करता है, स्वयं मकान बना उसमें बन्द रहता और उसकी मुरम्मत तथा रक्षा की चिन्ताएं अपने ऊपर लेता है। आप ही धन कमाता और उसी का रक्षण करता हुआ चोर डाकू आदि से मारा जाता है। ठीक यही अवस्था मनुष्य-कृत मतमन्तार की है। सत्य धर्म का त्याग कर के कितने ही मत मनुष्य ने च[illegible] और अब अपनी ही सारी स्वतन्त्रता से हाथ धो बैठ[illegible] प्रत्येक मनुष्य निज मत सम्बन्धी विचारों के दास[illegible] अभ्यास को अपना स्वभाव ही बना बैठा है। [illegible] सृष्टि में स्वतंत्रता पूर्वक विचरना और कहां प[illegible] मकान में बंद होना। तथापि हम सत्य धर्म के [illegible]

विस्तृत सम्बन्ध को तिलांजली देकर अपने २ मत की चारदीवारी में क़ैद होरहे हैं। गृहस्थ लोग कोई धन के लोभ में फंसे हैं, कोई स्त्री के प्रेम में बंधे हैं, कोई पुत्रों के मोह में निमग्न हैं, और कोई और बन्धनों में जकड़ रहे हैं। यही अवस्था मतमतान्तरों की है, लोभी पुरुष जगत सम्बन्धी धन को असत्य कहकर, चोरी करके अथवा घूंस लेकर येन केन प्रकार जमा कर रहा है, चाहे एक दिन में अग्नि लग जाने से उसका सर्वस्व नाश ही क्यों न हो जाय। इसी प्रकार कहीं शिफ़ाअत तथा स्वर्ग के सबज़ बाग दिखाकर, क्षमा हो जाने के गीत गाकर, धन का लालच दिलाकर, विवाह की आशा से बहका कर जैसे बने दूसरे लोगों को अपने मत की ओर खींचा जाता है, वाइज़ (प्रचारक) लोग मुर्गों को फंसाकर आप दल्लालियां खा रहे हैं। युक्ति विरुद्ध बातें अपने मत में हो, बुद्धि साक्षी देती हो कि यह असत्य है, उनके कपोल कल्पित सिद्ध होने पर मतवादियों को लज्जित होना पड़ता हो फिर भी कुछ परवाह नहीं मानेंगे ने ही मत की, केवल इसलिये कि मनुष्य पूजा तथा व का फंदा गले में पड़ चुका है।

हते हैं कि एक काज़ी साहब ने किसी पुस्तक में पढ़ा, की डाढ़ी लंबी और शिर छोटा हो वह निर्बुद्धि नों बातें अपने पर घटती देखकर विचारा कि ऐसा न हो, मूर्ख कहलाऊं। सोचकर निश्चय र तो बड़ा होने से रहा, परन्तु डाढ़ी को घटाना धीन है, तुरन्त ही ऊपर का भाग हाथ से पकड़

कर नीचे से लैम्प के साथ आग लगादी, ज्यों ही अग्नि की लाट हाथ को लगी, हाथ छूट गया, ठोड़ी झुलसी गई, मुंह का रूप बिगड़ गया, अब आप कहते क्या हैं। सचमुच पुस्तक में सत्य लिखा है, क्योंकि मैंने मूर्खता की है; मतवादी लोग उसी काज़ी की भांति जो कुछ भूल से प्रचलित कर बैठे हैं, अब आप ही उसे सत्य सिद्ध कर देने का भार अपने ऊपर ले रहे हैं। शोक ! क्या अद्भुत परिवर्तन है, जो मानव जाति अपने वास्तविक स्वभाव से सत्य तथा धर्म के तागे में परोई हुई है, वह मतमतान्तरों के निमित्त से मणिकों के रूप में बिखरी प्रतीत होती है। आवश्यकता है कि पुनः वही धर्म्मरूपी तागा सब मणिकों के भीतर से गुज़रे और मनुष्य जाति को माला के रूप में प्रगट करे। ऋषि दयानन्द का यही उद्देश्य था, वह अपना कोई मत नहीं रखता था, न अपने किसी विचार का पक्ष-पाती था॥

जो कुछ उसे असत्य प्रतीत हुआ वह तुरन्त उस के लिए विगाना था और जो सत्य सिद्ध हुआ उसी का उस के चित्त में ठिकाना था, और उसी पर वह न्यौछावर हो को कटिबद्ध था। उसके आत्मा में प्रत्यक्ष था कि वेद ही स विद्या तथा धर्म का पुस्तक है अतः उसने अपनी वाणी त लेख को वेद के ही आधीन रखा, मनुष्यों ने बुरा — अथवा भला, उस के मित्र बने अथवा शत्रु, इस प ध्यान ही न था। उस ने जो सत्य जाना वही म वही मनवाया।

१--ईश्वर मेरी सहायता करेंगे ।

स्वामी जी जब सोरों गये, तो लोगों ने स्वामी कैलाश पर्वत को बुलाया कि आपका यहां वाराह का मन्दिर हैं, और दयानन्द यहां आता है। एक दिन वह सोरू से गंगा स्नान करने गये और गढ़िया में आकर रात रहे, सायं काल को सन्ध्या कर रहे थे, देखा तो एक संन्यासी खड़ा है। पूछा "कोऽस्ति" तू कौन है ? उत्तर मिला-"दयानन्दोहं"। (मैं दयानन्द हूं), इस पर कैलाश पर्वत जी ने उन को सत्कार पूर्वक बैठाया, और वृतान्त पूछा ॥

दयानन्द—आप से कुछ सहायता लेने आया हूं ?।

कैलाश०—कैसी सहायता।

द०—रामानुज, बल्लभ, नेम और माधव इन चार मतों ने सत्यानाश कर रक्खा है हम इनका खण्डन करना चाहते हैं ॥

कै०—निःसंदेह इन्होंने बहुत कुछ वेद विरुद्ध कर रखा है, हम सहायता के लिये उद्यत हैं, इनका खण्डन करना बहुत अच्छी बात है परन्तु आप दो बात हमारी मानें (१) मूर्ति खण्डन न करें इस से बहुत लाभ है, मंदिर बने हैं, अज्ञानी लोग वहां पूजा करते हैं। और सहस्रों की आजीविका चल रही है। (२) पुराणों का खण्डन न करें अर्थात् यह न कहें सारे अथवा कोई भी व्यास ने नहीं बनाये ॥

दया०—इन चार मतों का बड़ा लक्ष्य तो मूर्ति पूजा ही है, इसी धोखे की टट्टी से यह संसार को लूट रहे हैं, अतः इसका तो प्रथम खण्डन होगा, और मूर्ति पूजा के पोषक केवल पुराण हैं इसलिए वह भी साथ ही उड़ेंगे,आप लोगों का कर्तव्य है कि सत्य की रक्षा करो, आपने घर बार त्यागा,शास्त्र अध्ययन किया,संन्यासी नाम पाया परन्तु शोक ! पाखण्ड और अज्ञान में फंसे हो सुख से तकिये लगाये बैठे हो, इस से आपका क्या भला होगा, आप भी अज्ञान में रहोगे, संसार को भी रखोगे,मैं चाहता हूं, पाखण्ड को त्यागो जयपुराधीश राजा रामसिंह आदि शिष्यों को सत्य धर्म पर लाओ, उनके द्वारा धर्म्म संदेश दूसरों तक पहुंचाओ; जिससे तुम्हारा और सब का कल्याण हो।

इस प्रकार स्वामी जी ने बहुत प्रेरणा की, और वह उनको नम्रता से मीठी बातें सुनाकर रोकने का यत्न करते रहे ; आयु में बड़ा होने के कारण स्वामी जी कैलाश पर्वत का सन्मान करते थे, परन्तु जब यह निर्बलता पाई तो स्पष्ट कह दिया :—

"आप राजाओं में मान पाने के लिये आत्मा के विरुद्ध चलते हो, आपको बड़ा पाप लगेगा। सिपाही वा पहिने राज्य नियम को तोड़े तो उसे द्विगुणा डंड होता है इसी प्रकार आप लोग संन्यासी हैं, भगवा पहिन का सत्य का प्रकाश नहीं करते, पश्चाताप करोगे कर चलने को उठे।

कैलाश०—भोजन पाकर ही जाईये ?

दया०—मुझे तुम्हारे भोजन की इच्छा नहीं, न मैं इस के वास्ते आया हूं; आप लोगों ने सत्य की रक्षा में मेरी सहायता नहीं की, ईश्वर मेरी सहायता करेगा।

२—हम तो सत्य के पक्ष पर हैं।

हरिद्वार में गुसाइयों और विशुद्धानन्द जी का झगड़ा होगया, गुसाइयों ने विशुद्धानन्द पर अभियोग चलाया। और स्वामी जी के पास सहायतार्थ आए, उन्होंने कहा—"हम न तुम्हारे न विशुद्धानन्द के; हम तो सत्य के पक्षपाती है। जो वेद में लिखा है, उस के अनुयाई हैं"।

३—चाहे जुरमाना हो हम तो सत्य ही कहेंगे।

फ़र्रुख़ाबाद में जब श्रीगोपाल की कुछ पेश न गई और वह चला गया तो उसका साथी ज्वालाप्रसाद अपनी कुर्सी उठा स्वामी जी के स्थान पर गया मदिरा पिये उन्मत्त हो रहा था, कुर्सी बिछाकर बैठ गया स्वामी जी को बुरा भला कहता और गाली देता रहा, उपस्थित सज्जनों ने पहिले उसे मना किया, फिर कईयों ने उसे खूब मारा और उसकी कुर्सी जला दी। परन्तु स्वामीजी रोकते रहे, कि पागल है; इसे क्यों पीटो, उसने कोतवाली में रिपोर्ट की, परन्तु कुछ न बना। पीछे लाला जगन्नाथ ने स्वामी जी से पूछा—बात हुई, उन्होंने सब कुछ सुना दिया; कि वह मद्य आया और अपशब्द बोलता रहा इन्होंने उसे पीटा, और उसकी कुर्सी जलाई। लाला जी ने कहा—वह

अभियोग चलाने वाला है, आप न्यायालय में बुलाये गय तो क्या कहेंगे ? बोले हम तो यही कहेंगे।

लालाजी ने कहा—इस तरह तो कदाचित् उन्हें जुर-माना होजावे, स्वामीजी ने कहा—चाहे जुरमाना हो, हम तो सत्य ही कहेंगे।

४—हम आपकी बात कब तक मानें।

पटना में एक दिन छोटेलाल ने पूछा—हम आपकी बात कब तक मानें। स्वामी जी ने उत्तर दिया, जब तक हमारी बुद्धि में संनपात आदि रोग न हो मानो और जब हमारी बुद्धि में कोई रोग होजावे तो हमारा कहा प्रमाण न मानो।

५—मैं तो इस अंधेर को नहीं देख सकता।

वृन्दाबन में स्वामी जी के स्वाध्याई और उनकी पाठ-शाला के अध्यापक पं० उदेप्रकाशजी भी मूर्ति प्रचारक थे और स्वामी के सत्य उपदेश से उनकी प्रतिष्ठा दूर हो रही थी, वह इस बात पर बल देते थे, कि मूर्ति खंडन छोड़ दीजिये। परन्तु स्वामी जी ने सच्ची दृढ़ता से उत्तर दिय यदि मैं सच्चा हूं तो मेरे साथ मिल कर मूर्ति निषेध करो, नहीं तो शास्त्रार्थ करलो, मैं तो इस अ नहीं देख सकता, जो गुसाईं आदि मतमता आचार्य्यों ने मचा रक्खा है।

६—मेरे शब्द तो कानों में पहुंच गए।

एकबार काशी में कुछ पुरुषों ने स्वामी को मिठाई आदि की भेंटा की, उन्होंने आश्चर्य्य माना कि कहां ईंटें और कहां मिठाइयां, एक सज्जन ने कहा—महाराज! आप मूर्ति खंडन करते हैं तो पंडित लोग संस्कृत न जानने वालों को कह देते हैं कि स्वामी जी ने आज मूर्ति पूजा को अच्छे प्रकार सिद्ध किया, इत्यादि? यह सुनते ही स्वामी जी ने कहा—अच्छा अब भाषा बोलूंगा। और इस कथन के अनुसार जब कुछ अभ्यास करके शुद्ध अशुद्ध जैसा होसका, भाषा में व्याख्यान दिया, और विपक्षियों ने ईंटें तथा रोड़े चलाये तो आपने कहा—अब चाहो सो करो, मैं प्रसन्न हूं कि मेरे शब्द तो लोगों के कानों तक पहुंच रहे हैं।

७—उस मूर्ति और इस पत्थर में क्या भेद है?

पूना में स्वामीजी ने बड़ी प्रबलता से असत्य का खंडन किया, प्रतिष्ठित तथा विद्वज्जन आपकी विद्या तथा सत्य प्रायणता को भले प्रकार जान गए वह आपकी प्रशंसा करते हते थे, परन्तु मंदिरों के पुजारी तथा ब्राह्मण भी इकट्ठे कर कई मनसूबे बांधते थे, एक बार स्वामीजी ने देखा कि ह एक मंदिर में इकट्ठ हो रहे हैं, भय आदि का पर उन्हें था ही नहीं, मंदिर के सामने शिला पर गये और ऊंची स्वर से उन्हें पुकार कर कहने लगे, ाओ उस मूर्ति में जो भीतर है, और इस पत्थर में मैं हूं क्या भेद है॥

८—हुक्का फैंक कर तोड़ दिया।

मेरठ में एक वार पंडित भागीरथ ने पूछा—आप हुक्का पीते हैं, यह वेद में कहां लिखा है, कुछ वादानुवाद हुआ, तब पंडित बोला—तुम संन्यासी होकर हुक्का पीते हो। स्वामीजी बोले—यदि इस से अप्रसन्न होता है तो ले, यह कहा और हुक्का फैंक कर तोड़ डाला॥

९—महाराजा को प्रसन्न करूं या ईश्वर आज्ञा पालूं।

लाहौर में पं० मनफूलजी ने कहा—मूर्ति पूजा का खंडन न कीजे, इससे लोग अप्रसन्न हैं। यदि आप खंडन छोड़ दें तो जम्बू (कश्मीर) के महाराज भी बहुत प्रसन्न होंगे, स्वामीजी ने भर्तृहरि का वह प्रसिद्ध श्लोक सुनाया, जिस का अर्थ यह है—"नीति निपुण लोग निन्दा करें अथवा स्तुति, धन जावे, अथवा आवे, अभी मृत्यु हो अथवा युग के अन्त तक जीना मिले, धीर पुरुष सतपथ से विचलित नहीं होते यह बोलकर कहा—अब कहिये। जम्बू (कश्मीर) के महाराजा को प्रसन्न करूं अथवा वेद विहित ईश्वर आज्ञा का पालन करूं॥

१०—मैं सत्य का परित्याग नहीं कर सकता।

पं० बिहारीलाल अक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर ने वार्तालाप में कहा कि आपके सब विचार अच्छे और हर प्रकार से

उत्तम हैं, यदि आप मूर्ति पूजा निषेध न करें तो सब आपके अनुकूल हो जायं और आप की आज्ञा मानें। स्वामी बोले—मैं सत्य का परित्याग नहीं कर सकता॥

सरदार हरचरणदास रईस मिलने आये, बहुत मोटा होने के कारण अच्छे प्रकार चल भी न सकते थे। स्वामीजी ने उनके सामने कहा—यह हमारे देश के मुर्दा वली हैं चलने की भी सामर्थ्य नहीं रही, ऐसे लोग देश का क्या शुभ कर सकते हैं॥

११—हम किसी का पक्षपात नहीं करते।

जालन्धर में एक दिन जब कि राजा विक्रमसिंह (जिन की कोठी में डेरा था) बैठे हुए थे, स्वामीजी ने कहा—जो राजा होकर कंजरी (वैश्या) रखता है वह कंजर है, सरदार साहिब ने कहा—हमारे पर भी? बोले हम तो सब को कहते हैं। किसी का पक्षपात नहीं करते, यह धर्म्म की बात है॥

१२—आज हमारे पर भी बरहे।

जालंधर में एक दिन काशी और गंगा का खंडन करते हुए अमृतसर के विषय में कहा—कि हम ने दूर से अमृतसर की बड़ी महिमा सुनी हुई थी, कि इसमें अमृत है। परन्तु जाकर देखा तो स्नान तो कहां, पांव डालने को भी हृदय नहीं चाहता था क्योंकि सिक्ख लोग केशों के बाल भी दीवाली के दिन उसमें जा डालते हैं, सरदार विक्रमसिंहजी

बोले—महाराज आज हमारे पर भी बरहे (बर्षे) । उत्तर दिया—जब व्याख्यान होता है तो निर्पक्षता से सत्य ही सत्य कहा जाता है ॥

१३—धन की अधिकता ।

लाहौर में एक पादरी और एक मिस साहिबा स्वामीजी से मिलने आये, स्वामीजी ने कहा—धन भी उचित सीमा से अधिक होजाय तो अवन्नति का कारण होता है । जैसे कि आर्य्य जाति की अवस्था हुई, धन बढ़ जाने से अंगरेज़ों की भी दिनचरिया बिगड़ती जाती है। हमारा अनुभव है, जिन दिनों हम जंगल में रहते थे, प्रातःकाल ही बहुत अंगरेज़ों को वायु सेवन करते थे, देखते, परन्तु आज कल अंगरेज़ दिन चढ़े उठते हैं ॥

१४—महाराज जम्बू (कश्मीर) का निमन्त्रण ।

रावलपिंडी में श्रीनगर से महाराज का निमन्त्रण आया, परन्तु स्वामी जी ने कहा—हम वहां नहीं जासकते, वह मूर्ति में खचित हो रहा है और इसका खंडन सुनना नहीं चाहता, क्योंकि शतशः मन्दिर बनवा रखे हैं, परन्तु हमने सब से पूर्व इसी का खंडन करना ठहरा, फिर बात कैसे बने। इसी प्रकरण में आपने एक राजा का वर्णन सुनाया ।

वह १५ सेर रुद्राक्ष शरीर पर पहिरे रहता था, वह ५ सेर मिट्टी के गलोले बनाता जाता और ब्राह्मण उस पर जल छोड़ कर बहाता जाता था, हमने उसे कहा—जब तक

तुम हमारा उपदेश न सुनोगे तब तक हम तुम्हारा अन्न ग्रहण न करेंगे। ३० दिन हम वहां रहे तब उसके पंडित से शास्त्रार्थ हुआ, वह कहता था, कि यह रुद्राक्ष गौरीशंकर है मैंने कहा—नहीं। यह एक वृक्ष के बीज हैं। उस समय तो उसने इनका त्याग न किया, पीछे एकवार मिला तो केवल एक ही रुद्राक्ष रखा हुआ था वह धन्यवाद देने लगा कि आपने मेरी इतनी अविद्या दूर की, सोराजा लोग बड़े विचित्र प्रकार से फंस रहे हैं।

१५--केवल वैदिक धर्म को सत्य मानता हूं।

लाहौर में एकवार नवाब नवाज़िश अलीखां के बंगले पर डेरा हुआ, एक दिन आपने यवन मत पर व्याख्यान दिया, नवाब साहिब पास ही भ्रमण कर रहे थे। व्याख्यान के पश्चात् एक पुरुष ने कहा—"महाराज! आपके ठहरने को न कोई हिन्दू स्थान देता है, न ईसाई न मुसलमान नवाब साहिब ने कृपा की तो आप यहां भी खंडन करते हैं। हमें तो भय है वह भी अप्रसन्न होजाएँगे"। स्वामी जी ने कहा—"मैं यहां यवन मत के गुण गाने नहीं आया मैं तो केवल वैदिक धर्म्म को सत्य मानता हूं। और अन्य सब को मिथ्या तथा कपोल कल्पित, जिसको मैं सत्य जानता हूं उसी का उपदेश करता हूं। मैंने देख लिया था, कि नवाब साहिब सुन रहे हैं। मैं जान बूझ कर उनको सत्य धर्म्म के गुण सुना रहा था, नारायण परमात्मा के बिना मुझे किसी का भय नहीं।

१६--समाज मेरी सम्मति के आधीन नहीं।

मिरज़ा गुलाम अहमद ने एकवार स्वामीजी के व्याख्यान के विषय में प्रश्न किये। लाला जीवनदास सकरेटरी लाहौर समाज ने उत्तर देते हुए समाचार पत्र में लिखा कि "यह प्रश्न आप स्वामी जी से करें, वह स्वयं अपने व्याख्यान के उत्तर दाता हैं, आर्य्य समाज स्वामी जी को औरों की भान्ति अपना गुरु नहीं मानता" समाज के अधिकारी उनसे अप्रसन्न हुए और कहने लगे इसका खंडन करो, परन्तु मन्त्री ने स्वीकार नहीं किया। निदान बात स्वामी जी तक पहुंची उन्होंने दोनों पत्र सुनकर व्यवस्था दी, "निःसन्देह मेरे व्याख्यान के सम्बन्ध में समाज से पूछना उचित नहीं, मुझ से उत्तर पूछा जाय क्योंकि समाज मेरी व्यक्ति गत सम्मति के आधीन नहीं अपने कथन का उत्तर दाता मैं हूं"।

१७--धूम्र पान का अन्तिम त्याग।

लाहौर में स्वामी जी राय मेलाराम के तालाब पर निवास रखते थे, एक दिन एक ब्राह्मण कहने लगा कि राजा हरवंशसिंह के मन्त्री राय मूलसिंह के पास आपकी बात होती थी, वह कहते थे, वह स्वामी काहे के हैं, सारा दिन धूम्रपान करते हैं, स्वामी जी ने हंसकर कहा—"ओहो! क्या सारा स्वामीपना इस हुक्क से जाता रहा, लो भाई हमने हुक्का छोड़ा। आगे भी कई वार इस उपाधी से बचने का विचार हुआ सो आज इसे पूरा करता हूं"। उसी समय

हुक्का हटा दिया, और पं० बिहारीलाल को दे दिया और इसके पश्चात् कभी इसका ग्रहण नहीं किया।

१८--भूल तुरन्त ही स्वीकार करली।

मुरादाबाद में पं० नारायणदास स्वामी जी से संस्कृत में बातचीत करता था, अचानक स्वामी जी के मुंह से एक शब्द अशुद्ध निकला, उसने आक्षेप किया स्वामी जी ने स्वीकार कर लिया, कि हां, यह अशुद्धि भूल से मेरे मुंह से निकल गई, साहू व्रजरत्न जी आये तो उस पं०ने फिर कहा-मूर्ति-पूजा की बातचीत में आपने संस्कृत में अशुद्धि की थी और मैंने पकड़ी थी, स्वामी जी ने कहा—हां तुमने भूल बताई थी और मैंने स्वीकार की थी, इस पर उसने अभिमान किया और पुनः २ वही बात कही। स्वामी जी ने तब बुरा मान कर कहा—अरे छोकरे ! अब तेरा वार २ यह कहना ओछापन है, मैं हठ करूं तो अपने शब्द को सत्य सिद्ध कर सकता हूं और तू उसका खंडन न कर सकेगा, परन्तु यह अधर्म है, इसलिये हमने भूल स्वीकार की थी, अब कोई और उपयोगी बात कर।

१९--तुम सब का वेद मत है।

मुरादाबाद के दो तीन पं० शास्त्रार्थ करने आये, स्वामी जी का शरीर दस्तों के कारण दुर्बल था, फिर भी पं० लोग बात करते हुए डरते थे। स्वामी जी ने कहा—कहो भाई घबराओ मत जो पूछना हो सावधान होकर कहो, पं० बोले-महाराज ! आपके सन्मुख हमारी क्या सामर्थ्य है ? यहां

आपके सब शिष्य बैठे हैं हमारी कौन मानेगा। स्वामी जी बोले—तुमको अधर्म्म की बात कहते लज्जा नहीं आती, देखो तुम्हारे सामने हमारा शिष्य जगन्नाथ हमारी बात को कहने मात्र से नहीं मानता और कह रहा है, जब तक आप प्रमाण सहित न बतायेंगे, कभी न मानूंगा। यह लोग हमारी हां में हां मिलाने वाले नहीं। इतने पर भी पं० लोगों का साहस न हुआ, तब स्वामी जी ने सब को कहा—"भाई तुम सब का वेद मत है यदि कहोगे कि हम दयानन्द स्वामी के मत में हैं तो कोई प्रश्न करेगा। दयानन्द और उसके गुरु का क्या मत है? तब उत्तर न दे सकोगे।

२०—पालिसी करना धर्म्म विरुद्ध है।

जब स्वामी जी ने देखा कि थियासोफ़ीकल सोसायटी वाले किसी पालिसी (चाल) पर काम करते हैं। तो उन से सम्बन्ध तोड़ देने लगे। परन्तु समाज के सभासद् चाहते थे कि आप नीति से कार्य्य लें, स्वामी जी ने कहा—मैं अब तुम्हारी बात नहीं मानूंगा, पालिसी करना धर्म्म विरुद्ध है, आगे जयपुर में कुछ महाशयों की प्रेरणा पर हमने वैष्णव मत की अपेक्षा शिव मत को उत्तम सिद्ध किया, तो वहां सब मनुष्यों तथा राज्यगृह के हाथी घोड़ों तक को रुद्राक्ष पहराये गये। अब तक पुराणा कोई आदमी मिलता है और रुद्राक्ष दिखाकर चिढ़ाता है, कि यह वही है जिसके गुण आपने गाये थे। सो अब तो हम कदापि धर्म के विषय में पालिसी का सम्बन्ध न होने देंगे। और केवल सत्य ही कहेंगे।

२१--कोई प्रलोभन असर न कर सका।

उदयपुर के कविराज श्यामदासजी प्रायः स्वामीजी के सत्संग में रहते थे; आपने कई वार स्वामीजी को कहा—आपको राजनीति के अनुसार पालिसी से कार्य्य करना चाहिये, परन्तु उन्होंने माना ही नहीं। महाराज ने भी बहुत वार कहा—आप मूर्ति पूजा का खंडन न करें इससे सर्व-साधारण द्वेषी बन जाते हैं। स्वामीजी ने उत्तर दिया—कुछ ही हो हम ऐसी बातों को नहीं मान सकते। न सत्य को छोड़ सकते न छिपा सकते हैं चाहे कितना ही विरोध हो॥

२२--हमें ज्ञात न था आप ऐसे विद्वान हैं।

एक वार मुरादाबाद में स्वामीजी रोग के कारण पलंग पर लेटे थे, एक वैद्य शुश्रुत के जानने वाले शाहजहानपुर से आये, और भूमि पर बैठ गये। जब वार्तालाप हुआ तो वैद्यराज ने अति उत्तम विद्वत्तापूर्ण वार्ता कही, जिसे सुनते ही स्वामीजी तुरंत ही पलंग पर से उठे; और समीप वर्ती कमरे से स्वयं कुर्सी उठाकर लाये, और आदर से वैद्यजी को कहा—आप यहां पधारिये, हमें ज्ञात न था कि आप ऐसे विद्वान हैं॥

२३--गोहत्या अच्छी अथवा गोरक्षा।

अजमेर में स्वामीजी से गवर्नर जनरल के एजेंट करनल साहिब मिले, स्वामीजी लाला बंशीलाल के बाग में बैठे थे

कि—"गोबध को बन्द करना मेरे अधिकार में नहीं, आप लाट साहब से मिलें वह बन्द करा सकते हैं। यह निःसंदेह उपकार की बात है"। इसके पश्चात साहब ने बड़ा उत्तम प्रशंसा पत्र दिया॥

२४—इंडिया कौंसल में गोरक्षा के लिये यत्न कीजियेगा।

फ़र्रुख़ाबाद में उपकार दृष्टि से स्वामीजी सरिशता तालीम (विद्या-विभाग) के डाइरेक्टर तथा लाट साहब से मिले, और लाट साहब को कहा कि—"आप यहां से विलायत जाकर इंडिया कौंसल में भरती होंगे इसलिये अच्छा हो कि आप भारत की उन्नति के वास्ते गोरक्षा के विषय में यत्न करें। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि जो कुछ मुझ से बन सकेगा अवश्य करूंगा॥

२५—अंगरेज़ को गोरक्षक बना दिया।

दानापुर में पादरी साहब मिले॥

स्वा०—किस विचार को भलाई कहते हैं?

पा०—आप ही कहिये।

स्वा०—हम भलाई उसको कहते हैं जिससे बहुतों का उपकार हो॥

पा०—स्वीकार (ठीक) है॥

स्वा०—गाय से अधिक उपकार होता है, अथवा मांस दोनों बातों का भेद यह है कि गाय तथा बछड़े बछड़ियों

कि करनल साहिब आ गये, आप गेरवे वस्त्रों से बहुत चिढ़ते थे इसलिये एक ब्राह्मण ने कहा—महाराज ! कुर्सी इधर करलो। यह साहब साधु पर बहुत क्रोधित होते हैं, स्वामीजी बोले—होने दो । वह देखते २ आये और स्वामीजी के पास भीतर आगये । ब्राह्मण बोला—देखो महाराज ! मैंने पूर्व ही कहा था। स्वामीजी ने कहा—कुछ चिन्ता नहीं आने दो, और स्वयं उठकर टहलने लग गये। साहब जब आये टोपी उतार हाथ मिला कुर्सी पर बैठ गये और बातें करते रहे।

स्वा०—आप धर्म्म का स्थापन करते हो अथवा खंडन ?

कर०—हमारे यहां भी धर्म्म का स्थापन करना अच्छा परन्तु जिसमें लाभ हो, वह करते हैं।

स्वा०—आप लाभ की नहीं हानि की करते हैं ?

कर०—कैसे ?

स्वामी जी ने एक गऊ के द्वारा सहस्रों मनुष्यों की पालना होने का व्योरा सुनाया जैसा गोकरुणा निधि में लिखा है, और पुनः पूछा—कहिये इस गोवध करने में आपको लाभ है अथवा हानि ?

कर०—होती तो हानि है।

स्वा०—फिर आप गोवध क्यों करते हो ?

यह बात तो आपकी हम को स्वीकार है। आप कल हमारे बंगले पर आवें वहां बात करेंगे॥

अगले दिन पौन घंटा गोरक्षा के विषय पर बात होती रही, साहब बहादुर ने सब कुछ माना, परन्तु यह

के दूध तथा कृषि कार्य्य के द्वारा लक्षों का उपकार होता है, और मांस केवल कुछ मनुष्यों के काम आता है, सारा लेखा सुनाया और पूछा—कहिये गाय का बचाना धर्म्म है अथवा मारना ?

पा०—इससे तो बचाना ही धर्म्म सिद्ध होता है ॥

स्वा०—जो सिद्ध हो उसी पर आचरण करना चाहिये ॥

पा०—हां उसी पर चलना चाहिये ॥

स्वा०—फिर आप गो मांस को छोड़ दीजिये ॥

पा०—मैं प्रतिज्ञा करता हूं, आगे कदापि गो मांस न खाऊंगा ॥

२६--गोरक्षा के सम्बन्ध में विशेष प्रस्तावना ।

बम्बई में गोरक्षा के सम्बन्ध में एक विशेष विधि निकाली, सब प्रतिष्ठित पुरुषों को निमंत्रण देकर सभा की; और गोरक्षा पर ऐसा मनोहर व्याख्यान दिया, कि श्रोतागण गदगद होरहे थे। कहते हैं गोरक्षा के कार्य्य की नींव बम्बई प्रान्त में इसी व्याख्यान से पड़ी, आपने गोरक्षा के लिये एक हृदय वेधक लेख छपवाया और विज्ञापन भी छपवाये जिनमें लिखा था। गोरक्षा के कार्य्य से सहानुभूति रखने वाले सब पुरुष इस फार्म पर जो भेजता हूं सही करके उसे लौटावें, हस्तान्तर मुखिया पुरुषों के हों, जो यह लिखें कि इस ग्राम अथवा बिरादरी के इतने सैंकड़े अथवा इतने सहस्र पुरुषों की ओर से सही करते हैं। जिनकी ओर से जो पुरुष

सही करें, उन सब के हस्ताक्षर कराके अपने पास रखें, इस प्रकार स्वामीजी चाहते थे, कि दो करोड़ के हस्ताक्षर कराके यह विषय पारलीमेंट (राज सभा) तक पहुंचावें।

सब राजों महाराजों तथा देश के सेठ साहूकारों से बड़ा पत्र व्यवहार हुआ और हस्ताक्षर भी प्रत्येक स्थान से सहस्रों के हुए।

२७--भैंसों की वकालत।

उदयपुर में नौरात्रों के दिनों में भैंसे बहुत मारे जाते थे, स्वामी जी ने उदयपुर दरबार से एक बड़ा युक्तियुक्त शास्त्रार्थ किया, आपने एक अभियोग के रूप में कहा—"हमको भैंसों ने वकील किया है। आप राजा हैं, हम आपके सामने मुकद्दमा करते हैं"। सब ऊंच नीच समझाया और कहा कि पुराणी रीतियों को नवीन वस्त्र धारण कराये जा रहे हैं। इसलिये भैंसों का मारना बन्द कर दो, इनके मारने से पाप ही पाप है, पुण्य नहीं यह घोर अन्याय है, इस प्रकार स्वामी जी से मनाई होने पर महाराणा ने इसे स्वीकार किया, परन्तु कहा कि "धीरे २ बन्द हो सकेगा"।

शिक्षा।

१—मनुष्यों को अपने २ विचारों में ही सचाई को बन्द न समझना चाहिये, किन्तु सचाई को अपने भीतर धारण करना चाहिये। वास्तविक सत्य का ज्ञान ईश्वर से ही मनुष्य को मिलता है, ईश्वरीय ज्ञान वेद ही है, जिस से सर्व प्रकार की शिक्षा मिलती है। सत्य का ग्रहण तथा

असत्य का त्याग करने के लिये सर्वदा उद्यत रहना चाहिये। झूठ से बढ़ कर कोई शत्रु और सचाई से बढ़कर कोई मित्र नहीं। जो असत्य कहा जाय अथवा जो बुरा काम होजाय, उस के स्पष्ट कहने वाले पर क्रोध न करो किन्तु उसका धन्यवाद दो और तुरन्त ही उस भूल अथवा पाप से बचने का उपाय करो, जो भी विद्वान हो उसका संमान तथा पूजा करो, इसी प्रकार से गौ आदि पशु जो सभी तुम्हारे लिये लाभकारी हैं, उनकी रक्षा करो। अपनी सम्मति तथा अपने आचार का पक्षपात करना पतित पुरुषों का काम है, स्वभावतया मनुष्य-मात्र का पक्ष एक मात्र सत्य है। यदि स्वार्थ तथा कुमति आदि को त्यागकर मनुष्य केवल इसी नियम पर आचारण करले कि हम तो किसी भी व्यक्ति अथवा व्यक्तिगत विचार को लक्ष्य नहीं रखते, किन्तु सत्य के ही परायण होंगे तो सारा जगत् एकमत होकर स्वर्ग धाम बन सकता है। फ़ार्सी में कहा है कि "रास्ती मूजिबे रिजाए ख़ुदास्त" अर्थात् सत्य से ही ईश्वर प्रसन्न होता है।

छठा सर्ग—निर्भयता।

चाहे दुःखों का पर्वत भी सिर पर पड़े।
यह कदापि असत्य के न आगे झुके॥
कष्ट लाखों मिलें धर्म पर मैं डटूं।
सत्य कहने से ना एक पग भी हटूं॥

सत्य ज्ञान तथा सत्याचरण का फल चित्त की शान्ति है, उसे पाकर मनुष्य को भय और दुःख नहीं रहता, परन्तु जगत् की वर्त्तमान दशा इसके विरुद्ध दुःख और भय का ही दृश्य है, नौकर डर रहे हैं कि हमें घूंस देने वाला उच्चाधिकारियों को हमारे विरुद्ध न लिख देवे, भेद खुल गया तो मारे जायंगे। ऋणि को भय है, कि साहूकार आकर मानहानि न करें। बालक समय खेल कूद में गंवाकर गुरु के सन्मुख जाता कांपता है, कि पाठ याद नहीं दंड मिलेगा।

इसी प्रकार मद्यपि, व्यभिचारी तथा झूठे सबमनुष्य हर समय आत्मा में भय मान रहे है। घातक के हृदय पर हाथ रखो, किस प्रकार धड़कता ह,चोर के मन की ओर दृष्टि दो बिल्ली की आहट पर भी भाग निकलता है कि कोई पकड़ने आया, इन सब से स्पष्ट है कि अज्ञान तथा दुराचार से मनुष्य

कितने दुर्बल, धैर्य्य रहित, तुच्छ हृदय तथा भीरू होते हैं। इसी विचार से एक योग्य पुरुष कहता है कि जितने पुरुष चापलूसी तथा लल्लोपत्तो की बातें करते हैं अथवा छल कपट और पालिसी से कार्य्य सिद्धि करते हैं, निश्चय जानो उनके मन में दुर्बलताएं हैं। सेवक यदि अपने से उच्च अधिकारी की मान बड़ाई करने तथा उसकी प्रशंसा के लिये शब्द जाल रचने में ही लगा है तो निःसन्देह वह कर्तव्य परायण नहीं, घूंस लेने वाला अथवा अनुचित रीति से धन बटोरने वाला है। जो नियम पर आरूढ़ धर्मात्मा और सत्यवादी पुरुष खरी २ मुंह पर सुनाता है, उसका साहस उसके मन की शुद्धता का परिचय देता है, ऐसे पुरुष हमारे शत्रु भी हों तो हमारे अहो भाग्य हैं! एक बुद्धिमान ने क्या ही उत्तम कहा है "कहां है, ऐसा निर्भय, सत्य वक्ता शत्रु जो मेरे दोष मुझे बतावे", सचमुच सत्य कहने में भय न करना विरले ही शूरवीर का काम है। दयानन्द सा सदाचारी विद्वान ही ऐसा आदर्श दिखा सकता है, इस सच्चे तपस्वी ने सत्य कहते हुए बड़े से बड़े पुरुष के सामने भी संकोच नहीं किया, भरी सभाओं में डंके की चोट असत्य का खंडन किया, ऐसे काल में जब कि प्रचलित कुरीतियों तथा पन्थों के विरुद्ध मन में विचार करने का भी किसी को साहस नहीं होता था, यह सब ऋषि के आत्मा की शुद्धता तथा मन और वचन की अनुकूलता का प्रमाण है।

१—भागवत सप्ताह खंडन ।

२४ जनवरी, सन् १९६५ को स्वामी जी ग्वालियर पधारे, यहां महाराजा जियाजीराव सिंधिया ने भागवत सप्ताह की तय्यारी कर रखी थी, कथा का मुहूर्त रियास्त की सर्व सरदार मंडली के सामने निकाला गया, योग्य ज्योतिषियों ने मीन मेष विचारकर चार फ़रवरी का मुहूर्त उत्तम बताया, देश देशान्तरों के पंडितों को तारों द्वारा सूचना दीगई। काशी, पूना, सितारा आदि से चार सौ भागवती पंडित एकत्रित हुए, उनके स्वागत तथा सत्कार का प्रबन्ध बड़ा धूम धाम से हुआ, तीन मंडप बड़ी सुन्दर रीति से सजाये गये, महाराज ने स्वयं कथा बाचने वालों का स्वागत किया, उन्हें रथ में साथ बिठाकर लाते थे, बहुमूल्य वस्तुएं हर समय पंडितों को दान मिलती थीं, जैसे मुहरों की दक्षिणा, सोने की छड़ी, पालकी, बग्घी आदि; जब स्वामी जी के आने की सूचना मिली, पंडित दर्शनों को जाने लगे, और धाराप्रवाह संस्कृत सुनकर स्वामी जी की महिमा गाने लगे। परन्तु भागवत सप्ताह का समाचार सुनकर स्वामी जी के मन में बहुत जोश पैदा हुआ, उन्होंने ज़ोर से इसका खंडन करना आरम्भ कर दिया, गंगाप्रसाद दफ़्तदार आदि पुरुषों को बड़े षट् शास्त्रियों के पास भेजा कि वह दर्शन दें और विचार करें अथवा हमें अपने पास बुलावें, यह सब लोग बापू शास्त्री के पास गये और उसे अपने साथ गाड़ी में लेकर महाराज तक पहुंचे और कहा—"एक पूर्ण ब्रह्मचारी

स्वामी भागवत सप्ताह का खंडन करते हैं। सरकार ने विष्णु दीक्षित जी पंडित को स्वामी जी के पास भेजा जो आकर प्रणाम कर कहने लगे कि :—

"महाराज की ओर से भागवत सप्ताह का महात्म पूछने आया हूं"।

स्वामी—(हंसकर कहा) दुःख और क्लेश के विना इस का कोई फल नहीं चाहे करके देखलो।

महाराज को जब यह उत्तर पहुंचा, हंस कर बोले कि—आप बड़े सामर्थ हैं, चाहे सो कहें, परन्तु अब तय्यारी होली पंडित आचुके, इस लिये बंद नहीं कर सकते।

गोविन्द बाबा ने महाराज से कहा—" ऐसे महात्मा का सम्मिलित होना बहुत आवश्यक है' परन्तु सरकार से निमंत्रण पहुंचा, तो स्वामीजी ने कहा—"**गायत्री का पुरश्चरण होना चाहिये**" परन्तु कथा को अब कौन रोकता था।

यह धूमधाम से होती रही और स्वामीजी भी निर्भयता से खंडन करते रहे, कथा का दृश्य बड़ा ही विचित्र होता था, बड़े बड़े पंडित कथा बाचते और सहस्रों की दक्षिणा पाते। गोविन्द बाबाजी को तो दो लाख रुपया मिला, परन्तु प्रतिदिन कुछ न कुछ विघ्न ही पड़ता रहा। पहिले दिन महाराणी का पांच मास का गर्भपात होगया, दूसरे दिन रावजी शास्त्री के घर में मृत्यु होगई, तीसरे दिन कोठी मंडप के सामने किसी ने सांडको घायल किया और स्वयं भाग गया॥

कथा के कुछ दिन पश्चात् कोतवाल ने रिपोर्ट की

कि नगर में अत्यन्त गर्मी है और प्रजा की बड़ी दुर्दशा है, चार दिन पश्चात् नगर में हैज़ा पड़ गया। मृत्यु के कारण शहर भर में मातम पड़ता गया, और ३० अप्रैल को, कुंवर साहब को यही भयानक रोग हुआ और वह चल बसे, सप्ताह की समाप्ति पर इन्हीं कुंवर साहब को ब्राह्मणों के चरणों में डाला गया था। गोविन्द बाबा ने उसे गोद में लिया और सब ने उसे सौ वर्ष तक जीने की आशीर्वाद दी थी और उस पर शिरवारना की गई थी॥

२—मत समझो मैं अकेला हूं।

किशनगढ़ के राव बल्लभ कुल के सेवक और स्वामीजी बल्लभ कुल के प्रसिद्ध विरोधी थे। खंडन हुआ तो लोग लगे मते पकाने, अन्त में ठाकुर गोपालसिंहजी ३०—४० पुरुषों तथा ५—७ पंडितों को लेकर पहुंचे। स्वामी जी शौच आदि से निवृत्त होकर आये और पूछा, आप लोग कैसे आये?

एक पंडित ने किसी पुस्तक के पत्रे आगे किये।

स्वा०—पढ़ो, हम उत्तर देंगे?

पंडित ने इसे पढ़ा, आशय यह था कि हमारा मत सनातन है, हम सीधे मार्ग पर हैं, हमारा भोजन उत्तम है।

स्वा० जी ने उत्तर दिया तो हल्ला करने लगे। यह देख कर स्वामीजी तख्त पर खड़े होगये और बोले—"मत समझो मैं अकेला हूं किन्तु जानलो कि मैं अकेला तुम सब के वास्ते काफ़ी हूं, तुमको शास्त्रार्थ करना है तो भी उद्यत हूं और शस्त्रार्थ से भी पीछे नहीं," इतने में ३०—४० पुरुष स्वामीजी की सहायता को पहुंच गये और यह लोग खिसकते बने।

३--मगर से भय न माना।

स्वामीजी एक दिन पाओं लटकाय गंगा में लेटे थे, उनके समीप ही एक बड़ा मगर पानी में निकला, साथी ने शोर मचाया और भागा कि एक बड़ा भारी मगर निकला है। परन्तु स्वामीजी जैसे थे वैसे ही पड़े रहे, उनके शरीर अथवा चेहरे से किसी प्रकार का भय न प्रगट हुआ, आपने कहा कि "जब हम उस का कुछ नहीं बिगाड़ते तो हमें कुछ भी नहीं कहेगा"॥

४--क्या भ्रष्टाचार कर रक्खा है ?

कानपुर के दुर्गाप्रसाद जी ने मेम रखी थी, स्वामीजी ने उसे व्यभिचार से बचने का उपदेश किया, और उसे बड़ी निर्भयता से स्पष्ट कहा कि "यह तू ने क्या भ्रष्टाचार कर रखा है"॥

५--तुम लोग हमको बदमाशी दिखलाते हो।

मिरज़ापुर में पहिले तो छोटू गिर आदि ने झगड़ा किया, स्वामी जी की जंघा पर जंघा रखकर बैठ गया और कहने लगा "बच्चा अभी तक तू कुछ नहीं पढ़ा, शिवलिंग का नाम लेकर बहुत अश्लील शब्द कहता रहा परन्तु स्वामी जी की नम्रता तथा विद्वत्ता पूर्ण बातें सुनकर उस के साथी सब सीधे हो गये, और उसे भी उन्होंने भले मानस बनने का इशारा दिया। परन्तु पीछे जब बहुत भीड़ भाड़ होगई और पंडितों से शास्त्रार्थ हुआ तो किसी ने ताली बजा कर पंडितों

को चलने का संकेत किया, स्वामी जी समझे कि हंसी के लिये ताली बजाई है,ललकार कर बोले "किस ने ताली बजाई सावधान! ऐसा करोगे तो मैं अकेला ही सब को मारसकता हूं, तुम हम को बदमाशी दिखालाते हो, किवाड़ बन्द करदो लोग बाहर न जाने पावें ॥

राम प्रसाद मारे डर के कांप कर और हाथ जोड़ कर बोला–"महाराज मैंने चलने का इशारा किया है, हंसी के तौर पर ताली नहीं बजाई, तब स्वामीजी शान्त हो गये ॥

६–यह प्रसिद्ध रिफार्मर दयानन्द है ?

स्वामी जी पटना से मुंगेर जाते थे, रास्ते में जमालपुर जंकशन पर साधारणतया कोपीन पहिरे घुमने लगे। प्रथम कक्षा के वेटिंगरूम में एक अंग्रेज़ अपनी मेम सहित ठहरे थे जो एक असभ्य साधु के सामने घूमने पर क्रोधित होने लगी, और स्टेशन मास्टर को बुलाकर साहिब ने कहा कि "उस साधु को सामने से हटा दो"। स्टेशन मास्टर स्वामी जी का भक्त था, डरता हुआ आया और निवेदन किया। "महाराज! ट्रेन के आने में अभी देर है, उधर तशरीफ़ ले चलिये और कुर्सी पर आराम कीजिये"। स्वामी जी आशय समझ गये और बोले—"शायद साहब ने भेजा है, कि असभ्य साधु को हटा दो, जाओ साहब और मेम को कहदो, हम उस समय के आदमी हैं, जब कि बाबा आदम और माता हव्वा अदन के बाग़ में नंगा घूमने में लज्जा न मानते थे"। यह कहा और घूमने लगे, स्टेशन

मास्टर बड़ी चिन्ता में था कि करे तो क्या करे। अन्त में साहब ने पुनः बुलाकर कहा—कि "साधु हटा नहीं क्या कहता है" बाबू पहिले तो हिचकचाया, परन्तु अन्त में स्वामी जी का उत्तर सुना दिया और कहा—"हजूर यह अपनी मौज के मालिक हैं किसी की बात नहीं सुनते मस्त फ़कीर जो ठहरे"। साहिब ने नाम पूछा, और दयानन्द सरस्वती का शब्द सुनते ही विवश होकर उठ बैठा और बोला—क्या यह प्रसिद्ध रिफार्मर ग्रेट(Great) दयानन्द है? स्टेशन मास्टरः—"हां हुजूर! वही है"। साहिब टोपी उत्तार तुरन्त ही स्वामीजी की सेवा में उपस्थित हुए और आदर सहित सत्कार तथा सलाम करके बोले, बड़े चिरकाल से आपके दर्शनों का अभिलाषी था, आज ईश्वर ने आपके दर्शन कराये। आध घंटा बात चीत करके और रेल में चढ़ाकर साहब बिदा हुए।

७—दोष बच्चों के बच्चों का है।

बरेली में शनीवार को टाउनहाल में व्याख्यान हुआ, बहुत से पुरुषों ने निवेदन किया कि कल रविवार को १ घंटा पूर्व व्याख्यान आरम्भ हो, स्वामी जी ने कहा—मैं २॥ मील दूर ठहरा हूं, और समय मेरा विभक्त होचुका है, इसलिये सवारी का प्रबन्ध हो जाय, तो मैं एक घंटा पूर्व आजाऊंगा, लक्ष्मीनारायण जी कोषाध्यक्ष ने प्रतिज्ञा की, कि गाड़ी पहिले ही पहुंच जायगी, परन्तु टाउनहाल में अगले दिन स्वामी जी नियत समय से पौन घंटा पीछे पहुंचे, लोग देर तक प्रतीक्षा करते रहे, स्वामीजी

पहुंचते ही लाठी दीवार के साथ टिकाकर बोले—"मैं नियत समय पर आने को उद्यत था, परन्तु सवारी न आई, प्रतीक्षा करने के पश्चात् मैं पैदल चल पड़ा, मार्ग में बग्घी पहिले समय पर ही मिली, इसलिये देर होगई, सभ्य जनो! मेरा दोष नहीं है, किन्तु दोष बच्चों के बच्चों का है, जो प्रतिज्ञा पालन करना नहीं जानते, कोषाध्यक्ष साहब जिन्होंने सवारी पहिले लेजाने की प्रतिज्ञा की थी, रुहेलखंड के प्रसिद्ध धनाढ्य पुरुषों में से थे और उन्हीं की कोठी में स्वामी जी ठहरे हुए थे, लेकिन चुपचाप सिर झुकाये स्वामी जी के कथन को सुना किये।

८--सत्य ही कहूंगा, चाहे चक्रवर्ती राजा भी अप्रसन्न हो।

एक दिन स्वामी जी व्याख्यान देते हुए पुराणों की असंभव बातों का खंडन करते थे, पादरी स्काट के अतिरिक्त कलेक्टर और कमिश्नर आदि १५-२० अंग्रेज़ भी उपस्थित थे, स्वामी जी ने जब पौराणिकों की पंचकुंवारी तथा उनके वृत्तान्त का वर्णन किया तो कलेक्टर और कमिश्नर आदि बहुत हंसे और प्रसन्नता प्रकट करते रहे। स्वामी जी ने कहा—देखो पुराणिकों की बुद्धि, द्रोपदि के पांच पति कराके उसे कुंवारी कहते हैं, ऐसा ही कुंती, तारा का भी वर्णन किया। परन्तु कुछ देर पश्चात् पैंतरा बदला, कि पुराणियों की तो यह लीला अब किरानियों की लीला सुनो।

यह ऐसे भ्रष्ट हैं, कि कुंवारी के पुत्र होना बतलाते हैं। और दोष सर्वज्ञ शुद्ध परमात्मा पर लगा कर तनिक लज्जित नहीं होते, यह सुनते ही कलेक्टर तथा कमिश्नर के चेहरे क्रोध के कारण लाल होगये। परन्तु व्याख्यान ज़ोर शोर से होता रहा, और अन्त तक ईसाई मत का खंडन हुआ अगले दिन ख़ज़ानची साहिब कमिश्नर की कोठी पर बुलाये गये। साहिब ने कहा—"अपने पंडित को कह दो, कि अधिक खंडन न किया करें, हम ईसाई लोग तो सभ्य हैं, परन्तु मूर्ख हिन्दू तथा मुसलमान जोश में आये तो व्याख्यान बंद होजायेंगे।

कोषाध्यक्ष ने कहा—स्वामीजी को यह संदेश पहुंचादूंगा, परन्तु न उसे साहस हुआ न और को, निदान एक नास्तिक के ज़िम्मे लगाया कि वह यह संदेश पहुंचावे। परन्तु जब सब आगे हुए तो वह केवल इतना ही कह सका, कि "कोषाध्यक्ष साहिब कुछ निवेदन करना चाहते हैं, इन्हें कमिश्नर ने बुलाया था"। अब क्या था, सारी बला कोषाध्यक्ष के सिर पर टूट पड़ी, कभी सिर खुजलाते कभी गला साफ़ करते, स्वामीजी ५ मिंट तक आश्चर्य्य से देखते रहे फिर बोले—"भाई तुम्हारा तो कोई काम करने का समय ही नहीं है, तुम इसका महत्व नहीं जानते, परन्तु मेरा समय अमूल्य है, जो कहना हो शीघ्र कहो"।

कोषाध्यक्ष—"महाराज! अगर सख्ती न की जाय तो क्या हर्ज है, इससे प्रभाव अच्छा पड़ता है; अंगरेज़ों को

अप्रशन्न करना ठीक नहीं".....यह शब्द अटक २ कर कठिनता से उनके मुख से निकले।

स्वामीजी (हंसकर) बोले—अरे! बात क्या थी जिसके लिये गिड़ गिड़ाता है, मेरा समय व्यर्थ खोया, साहब ने कहा होगा तुम्हारा पंडित खंडन करता है, व्याख्यान बंद होजांयगे इत्यादि। अरे भाई, मैं होआ तो नहीं कि तुझे खालूंगा, उसने तुझ से कहा—तू मुझे सीधा कह देता" होते २ व्याख्यान का समय आया, आप सत्य के बल पर बोलने लगे। पूर्व दिन वाले अंगरेज़ सब उपस्थित थे, केवल स्काट साहब न आये थे। सब चुपचाप सुनते रहे ऋषि ने कहा—"लोग कहते हैं कि सत्य को प्रगट न करो, कलेक्टर क्रोधित होगा, कमिश्नर अप्रसन्न होगा, गवर्नर पीड़ा देगा, अरे! चक्रवर्ती राजा क्यों न अप्रसन्न हो हम तो सत्य ही कहेंगे"।

इसके पश्चात् उस वाक्य को पढ़ा, जिसमें यह कहा था कि :—"आत्मा को न शस्त्र छेद सकता है न अग्नि जला सकती है", गर्जते हुए सिंहनाद से बोले—"यह शरीर तो अनित्य है इसकी रक्षा के लिये अधर्म्म करना व्यर्थ है, जिस मनुष्य का जी चाहे इसे नाश करदे"।

फिर चारों ओर अपनी तीक्ष्ण नेत्र ज्योति डालकर गर्जती हुई वाणी से कहा—"परन्तु वह शूरवीर मुझे दिखाओ जो मेरी आत्मा को नाश करने का दावा करता है। जब तक ऐसा वीर संसार में दिखाई नहीं देता, मैं यह

सोचने के लिये भी उद्यत नहीं कि मैं सत्य को दबाऊंगा अथवा नहीं।

९--बिना सकोच के खरी सुनादी।

स्वामीजी को ज्ञात हुआ कि उनके यजमान खज़ानची साहब ने वेश्या को घर में डाला हुआ है, जब उस दिन खज़ानची आये तो पूछा—"खज़ानची तुम कौन हो" उत्तर मिला। "महाराज आप गुण कर्म स्वभाव अनुसार वर्ण व्यवस्था मानते हैं मैं क्या कहूं" स्वामीजी ने कहा—इस दृष्टि से तो सब वर्णशंकर हैं, तथापि वर्त्तमान लोकाचाल के अनुसार आप अपने आपको क्या कहते हो", वह बोला—"क्षत्री हूं" स्वामीजी ने कहा—"यदि क्षत्री के वीर्य्य से वेश्या में पुत्र उत्पन्न हो, तो उसे क्या कहोगे"। खज़ानची ने सिर नीचा कर लिया, तब महाराज ने कहा—"सुनो भाई हम किसी का पक्षपात नहीं करते, सत्य २ कहेंगे", उसी रात को खज़ानची साहब ने वेश्या को कहीं भेज दिया। इसी प्रकार फ़र्रुखाबाद के सेठ जगन्नाथ का दोष आपने उपदेश करके और खरी २ सुनाकर दूर किया।

१०—वर्त्तमान राज्य में धार्म्मिक स्वतंत्रता।

दानापुर में यवन लोग बहुत विरोध करते थे, इसलिये एक महाशय ने सम्मति दी कि आप मुसलमानों के विरुद्ध कुछ न कहें, उस समय स्वामी जी ने उत्तर न दिया। परन्तु अगले दिन व्याख्यान में यवन मत का भले

प्रकार खंडन किया और कहा कुछ छोकरों के छोकरे हम को मना करते हैं, परन्तु मैं सत्य को क्यों छिपाऊं, जब उनकी चलती थी वह तलवार से खंडन करते थे। अब क्या अंधेर है कि मुझे वाणी से भी खंडन नहीं करने देते। ऐसा अच्छा राज्य पाकर असत्य का पोल खोलने से कैसे रुकसकता हूं, यही तो इस राज्य की बड़ाई है।

एक नगर में एक दिन पूर्व एक व्याख्यान का विज्ञापन दिया गया, कि कल बाईबिल का खंडन होगा। इसलिये व्याख्यान में बहुत से अंग्रेज तथा देशी पादरी आये, जनरल रावर्ट्स साहब भी पधारे, मेरी वाणी में जितनी शक्ति थी, उस से मैंने बाईबिल का खंडन किया और उसका परस्पर विरोध दिखाया। व्याख्यान समाप्त होते ही जनरल साहब बहुत प्रसन्न होकर मिले, हम से आकर हाथ मिलाया और कहा— "निःसंदेह आप निर्भय पुरुष हैं, हमारे सामने जब आपने हमारे मत का इतना खंडन किया तो और किसी से क्या डरते होंगे"

११--आप को जैनी लोग कैद कराने वाले हैं।

लाला भोलानाथ स्वामी जी को सहारनपुर स्टेशन पर मिले और कहने लगे, "महाराज ! जैन लोगों ने आपके पकड़वाने के वास्ते विज्ञापन दिया है। और ताज़ीरात हिंद के अनुसार आपको कारागार में पहुंचाने की ठहराई है।

स्वामीजी बोले–"सोने को जितनी अग्नि दो,वह कुन्दन होगा, स्वामी जी को यदि तोप के मुंह से बांध कर भी कोई प्रश्न करे, कि क्या सत्य है, तो वेद की श्रुति ही वाणी से निकलेगी और अब तो मैंने बहुत जैन ग्रन्थ देख लिये, वह मेरे प्रश्नों का क्या उत्तर देंगे।

१२--अवश्य वहां जाकर उपदेश करूंगा।

स्वामी जी जोधपुर जाने लगे तो आर्य्य पुरुषों ने मना किया, कि वहां न जाईये, वह गंवार देश है लोग वहां के शरारती हैं" परन्तु स्वामी जी ने कहा–"यदि लोग हमारी अंगुलियों के बुत्ते बनाकर जलादें तो भी परवा नहीं, अवश्य ही जाकर उपदेश करेंगे, यदि यह शरीर न भी रहा तो भी चिन्ता नहीं, सत्यार्थ प्रकाश शुद्ध हो ही गया है,और जो कुछ करने को थां सोकर ही चुके हैं। कोई बात करने को नहीं रही," एक और प्रतिष्ठित सज्जन ने जोधपुर जाते समय कहा— "महाराज! वहां ज़रा नर्मी से उपदेश करना वह क्रूर देश है"। उत्तर में कहा—"मैं पाप के जंगी वृत्तों की जड़ काटने के लिये कुल्हाड़ी से काम लूंगा, न कि नापितों के नहेरने से तराशूंगा। मुझे किसी का भय नहीं है"।

१३--अभियोग का भय देकर सत्य को दबाते हो।

स्वामी जी ने सत्यार्थ प्रकाश में जैनमत का निषेध किया, तो वह लोग लगे सभाएं करने, अन्त में एक अनपढ़

जैनी ठाकुरदास गुजरांवाला निवासी मुखिया बना, और वह पूज्य आत्माराम से मिलकर लगा पत्र लिखने। जिन में पहिले तो स्वामी जी पर दबाव डाला कि आपने हमारे विषय में असत्य लिखा है, इसका प्रमाण दीजिये" स्वामी जी ने सारे प्रमाण दे दिये और डंके की चोट कहा—कि मैंने जो कुछ लिखा है, सत्य लिखा है, जैसे चाहो शास्त्रार्थ करलो इस पर दुराग्रह तथा हठ का व्यवहार हुआ, और अभियोग का भय दिलाया गया, परन्तु स्वामी जीने निर्भय होकर कहा—"जो इच्छा हो करलो, कचहरी में चलो तो वहीं देख लेना क्या गती होती है, और किस प्रकार असत्य का खंडन होता है। जैनी लोग कई चालें चलते थे, कभी विज्ञापन देते, कभी प्रसिद्ध करते कि इतना चन्दा मुकाबले के लिये कर लिया है। कभी यह उड़ाते कि स्वामीजी गिरिफ्तार करवा (पकड़वा)लिया जावेगा। परन्तु स्वामीजी यही कहते कि "स्वर्ण को जितनी अग्नि दो अधिक चमकेगा यही अवस्था वैदिक सिद्धान्तों की तथा मेरी है," दो तीन वर्ष पत्र व्यवहार तथा चर्चा रही परन्तु कोई समक्ष में न आया। स्वामीजी दृढ़ता तथा धैर्य्य से निरन्तर सत्य २ सुनाते रहे, बहुत से जैनी आर्य्य समाज की शरण में आये, और उन्होंने अपनी गुप्त पुस्तक स्वामीजी के हवाले करदी

१४--इस वीरता पर राजा भी चकित रह गया।

स्वामीजी तो विद्या तथा सत्य के बल के कारण निर्भय थे ही परन्तु आर्य्य पुरुषों पर भी उनका अत्यन्त प्रभाव पड़ता था, और

वह सब प्रकार के पक्षपात का त्याग करके सत्य कहने में निर्भय तथा उद्यत रहते थे, जयपुर में जब आर्य्य समाज का पहिला वार्षिक उत्सव हुआ तो सब प्रतिष्ठित पुरुषों को निमंत्रित किया गया और हवन तथा उपदेश आदि से सब पर बड़ा उत्तम प्रभाव पड़ा, परन्तु ब्राह्मणों को बड़ा दुःख हुआ वह सब मिलकर महाराज के गुरु के पास गये जो मथुरा से आये थे, २९ आर्य्यों के नाम क्रमशः लिखकर महाराज को पत्र भेजा कि "तू गोपालाजी का भक्त है और यह दयानन्द के सब शिष्य प्रतिमा का खंडन करते हैं, अतः इन सब का भद्र कराकर अपने राज्य से इन्हें निकाल दो और सब जगह विज्ञापन दे दो कि यह लोगों को नास्तिक करते हैं।

महाराज साहब ने ठाकुर गोविन्दसिंह और रघुनाथसिंह को बुलाकर पूछा--यह क्या बात है, रघुनाथसिंह ने सच्चे क्षत्री के सदृश कहा--"महाराज बिना संकोच के इनका भद्र कराके इन्हें निकाल दीजिये। परन्तु मेरा नाम अवश्य ही सब से प्रथम होना चाहिये, क्योंकि मैं इस नगर में स्वामी दयानन्द सरस्वती का पहिला शिष्य हूं। सो कुछ चिन्ता नहीं, अब तक आपकी आज्ञा तथा कृपा से राज्य करते रहे, अब आपकी आज्ञा से इस स्वरूप को धारण करेंगे।

महाराज--क्या तुम भी स्वामी दयानन्द के शिष्य हो?

ठाकुर--मैं इस नगर में उनका पहिला शिष्य हूं। और मूर्ति पूजन को मैं भी नहीं मानता क्योंकि यह वेदोक्त नहीं है, अब जो आज्ञा हो उसका पालन किया जाय?

इस दृढ़ता पर महाराज चकित रह गए और बोले, यह विषय राज सम्बन्धी नहीं है, गुरुजी को किसी ने बहकाया है, स्वामीजी के काम से राज्य की हानि नहीं, मैंने भी उनको सुना है ॥

तब रघुनाथसिंहजी अपनी कचहरी में आये और ठाकुर गोविन्द सिंह जी को कहा–"जब तक यवन और कृष्टान लोग रियास्त से बाहर न निकाले जावें,हमारी सभा को कोई हानि न पहुंचनी चाहिये"। उन्होंने कहा, निःसन्देह बहुत मतों के लोग मूर्त्ति पूजा का खण्डन करते हैं ॥

१५--पांचाल देश के लाट साहब से भेंट ।

लाहौर में लाट साहब स्वामी जी के निवासस्थान पर आये और वार्तालाप में आपने ५ प्रश्न पूछे :—

१–मत कौनसा अच्छा है ?

स्वा० कोई भी अच्छा नहीं।

लाट०–आप कैसे कह सकते हैं, आप तो अपने मत के प्रचारक हैं ?

स्वा०–मैं किसी मत का प्रचारक नहीं धर्म्म का प्रचारक हूं जो वेद है ॥

२ लाट—हम आगे बढ़ें कि नहीं ?

स्वा०—संस्कृत का श्लोक सुनाया जिसका अर्थ यह था कि। क्षत्री-सन्तोष करे तो उसका नाश होता है, और ब्राह्मण सन्तोष न करने से पतित होता है ॥

३ लाट—भारतवर्ष में हमारी चिरस्थाई उन्नति कैसे हो?

स्वा०—वेद, ब्राह्मण तथा गऊ की रक्षा से।

४ लाट—युद्ध की विद्या वेद में है अथवा नहीं ?

स्वा—वेद में सब विद्या हैं, युद्ध के लिये धनुर्वेद है (इसके लिये मनु में से व्यूह बांधने का श्लोक सुनाया जिस से अपने आदमी बच जायं और शत्रु के मरते जायं) ॥

५ लाट—हमारे ईसाई मत की उन्नति है, यदि वेद सच्चा है तो उसको क्यों नहीं मानते ॥

स्वा०—आपकी उन्नति ईसाई मत से नहीं, ब्रह्मचर्य्य का बाईबिल में वर्णन नहीं, परन्तु यूरोप के लोग बड़ी आयु में विवाह करते हैं, स्त्री जाति के अधिकार उनमें स्वरक्षित हैं। इसलिये वहां उन्नति है, यह बातें वास्तव में वेद की हैं। अतः जो वेद पर चले वही उन्नति करेगा ॥

इसके पश्चात् निश्चय हुआ कि स्वामी जी लाट साहब को कोठी पर मिलें, परन्तु स्वामी जी ने यह बचन ले लिया कि मैं वहां बैठकर प्रतीक्षा नहीं करूंगा। तथापि जब तीसरे दिन नियत समय पर गये, और सूचना दी तो लाट साहब के आदमी ने कहा—ड्रेसिंगरूम (Dressing Room, अर्थात् वस्त्र पहरने का कमरा) में हैं, यह सुनते ही आपने गाड़ी लौटाई, परन्तु लाट साहब ने शब्द सुन लिया, और तत्काल दौड़े आए, एक बांह कोट में डाले हुए थे, आकर आपने गाड़ी रोकली और क्षमा मांगी, तब वेद भाष्य के सम्बन्ध में वार्तालाप हुआ, स्वामीजीने कहा कि पं० गुरुप्रसाद तथा स्टीन साहब आदि जिन से सम्मति मांगी गई है वह

वेद के आशय को नहीं समझ सकते, स्टीन साहब स्वयं उच्चारण तक तो कर नहीं सकते।

लाट साहब ने कहा—"हम क्या करसकते हैं, निश्चय तो सम्मतियों (वोटों) पर ही होगा, आप वोट अपने पक्ष में करलें तो हमें कोई आक्षेप नहीं, उस समय तो स्वामी जी के पक्ष में सम्मति होना संभव ही नहीं था, परन्तु सत्य प्रकाश हुए बिना रह नहीं सकता। पं० गुरुप्रसाद पीछे स्टीन साहब को कहते थे कि "शोक उस समय मैंने अनभिज्ञता के कारण विरोध किया यदि स्वामी जी जीवित रहते तो वेद की पढ़ाई पर आप को कभी न रहने देते"।

शिक्षा ॥

सत्य के प्रकाश में सदैव निर्भय होना चाहिये और ऐसा बल मन में उत्पन्न करने के लिये सत्य विद्या तथा धर्माचरण को धारण करना चाहिये, यह निर्भय अवस्था बड़ा द्रव्यशाली होने तथा लोक मान प्रतिष्ठा पर निर्भर नहीं, किन्तु केवल धर्म में दृढ़ रहने पर, सिकन्दर जैसे दिग्विजयी पुरुष को भारत के डंडी संन्यासी ही ने तो नीचा दिखाया, जब निर्भय होकर उसने सिकन्दर के बुलाने पर जाने से इनकार किया और फिर जब सिकन्दर स्वयं आया, तो सिद्ध किया कि उसे सिकन्दर से किसी प्रकार की इच्छा नहीं।

हकीकत जैसे बालक को यवन राज्याधिकारियों ने कितनी ही प्रेरणा की, उस ने निर्भय होकर धर्म की अपेक्षा सबके कथन का तिरस्कार ही किया।

प्रिंस आफ वेल्ज़ मथुरा में आये और डंडी विरजानन्द जी का उनसे मेल हुआ, तो एक उच्चाधिकारी अंग्रेज ने वेद की श्रुति बुरे तथा अशुद्ध उच्चारण से पढ़ी, डंडी जी ने तत्काल ही स्पष्ट कह दिया, न जाने ऐसे पुरुष को वेद पढ़ने का अधिकार किस ने दिया, उदारचित्त अंग्रेज बहुत प्रसन्न होकर बोला–"ऐसा वीर सत्यवक्ता हमने कोई नहीं देखा" इसी निर्भयपद की व्याख्या भर्तृहरि करता है जब वह कहता है, नीतिमान पुरुष बुरा कहें अथवा भला, धन जावे या रहे, अभी भस्म कर दिया जावे अथवा युग के अन्त तक जीवित रहना मिले, बुद्धिमान पुरुष कदापि न्याय अथवा धर्म के पथ से हटते नहीं। यही कृष्ण जी के उपदेश का आशा है, जब वह अर्जुन को समझाते हैं, कि सम्बन्धियों के मृत्यु आदि के विचार से धर्म अथवा कर्त्तव्य पालन से कभी न डोलना चाहिये, यही निर्भयता सुकरात ने दिखाई जब उसने कहा–"प्यारे एथंस् निवासियो! मैं आप का बड़ा संमान करता हूं, परन्तु मैं आपकी अपेक्षा ईश्वर की आज्ञा का पालन करूंगा, जबतक मुझ में प्राण और शक्ति है, मैं ज्ञान के चर्चा को बन्द नहीं कर सकता, अतः हे मेरे देश निवासियो! मैं कहता हूं। चाहे मुझे छोडो अथवा मारो परन्तु इस बात का निश्चय रखो, कि मैं जीवन के उद्देश्य को पलट नहीं सकता; एक वार क्या चाहे मुझे कितनी ही वार इस उपदेश पर प्राण देने पड़े, मैं तय्यार हूं।"

उपरोक्त शब्द मुक्त कंठ से उस लक्ष्य का बोध करा रहे हैं, जो सच्चे धर्म परायण तथा विद्वान पुरुषों को सदैव

दृष्टि गोचर रहते हैं, अथवा जिसे लक्ष्य रख कर मनुष्य सत्य तथा धर्म को धारण करने में सफलता प्राप्त कर सकता है॥

सातवां सर्ग।

छोटी २ मनोरंजक कथाएं।

१—स्वामी जी ब्राह्मणों को प्रेम से कहते थे कि विद्या ही में परिश्रम करो, खीर पूरी के जाने की चिन्ता न करो, विद्या होगी तो खीर पूरी भी अधिक प्राप्त होगी।

२—पुष्कर में स्वामी जी ने पं० नानूराम रईस को कहा कि कंठी बंठी क्यों बांधते हो। वह बोला—जब ब्राह्मणों के बिना कोई संन्यासी न होगा हम भी कंठी त्याग देंगे। (स्वामी जी बोले) यह तो आकाश ही फट गया है, हम से कोई पूछे तो स्पष्ट कहें, कि ब्राह्मण के बिना संन्यास लेने का किसी को अधिकार नहीं।

३—कंठी तुड़वाने पर एक ब्राह्मण क्रोधित हुआ, तो इसके निर्णय करने के लिये वैंकटजी शास्त्री बुलाये गये। वह बोले—स्वामी जी जो कुछ आप कहते हैं, सब सत्य है, परन्तु चलेगी आपकी तब, जब कोई महाराजा आप के साथ होगा।

४—पुष्कर के शिवदयाल ब्राह्मण जब ब्रह्मा के मंदिर में पूजन करते, तो स्वामी जी कहते, अरे शिवदयाल! तेरा

ब्रह्मा मुंह से बोलता है, अथवा तुम्हारे साथ बात करता है, जब वह नगारा बजाता तो कहते चमड़ा कुटने से क्या लाभ ॥

५—पं० गंगाराम को स्वामी जी ने कंठी आदि के खंडन में उपदेश दिया वह बोला, "सत्य तो यह है कि यदि आप एक लाख रुपया लाये होते तो सब ब्राह्मण प्रसन्न होजाते और कहते कि "जय महाराज, दयानन्द महाराज की जय" ॥

६—अजमेर में पादरी लोग शास्त्रार्थ में निरुत्तर होगये, तत्पश्चात् रार्बिसन साहब ने ब्रह्मा के व्यभिचार के विषय में प्रश्न किया, स्वामी जी ने कहा, "क्या एक नाम के अनेक पुरुष नहीं होते, कौन कह सकता है कि यह ब्रह्मा वही थे, महर्षि ब्रह्मा ऐसे नहीं थे, कोई और होगा" साहिब बहुत प्रसन्न हुए और आप को प्रशंसापत्र दिया, कि जो भी अंगरेज इन से मिलेगा बहुत लाभ प्राप्त करेगा।

७—स्वामी जी अजमेर के डिपटीकमिश्नर साहब से मिले तो वार्तालाप करते हुए कहा कि राजा प्रजा का पिता होता है, पुत्र को कुव्यवहारों से रोकना माता पिता का कर्तव्य है, आप राजा हैं, देश में अन्धकार फैल रहा है, मत वादी लोग आपकी प्रजा को लुट रहे हैं, इसका प्रबन्ध कीजिये। उत्तर मिला—धार्मिक विषयों में सरकार हस्तक्षेप नहीं कर सकती, हां यदि कोई विशेष कार्य्य हो तो हम सहायता के लिये उद्यत हैं।

८—नाग पहाड़ के बन से दो युवा तपस्वी स्वामी जी से अजमेर में मिलने आये, वह संस्कृत बोलते थे, एक वार

उन्हों ने साभिमान कहा कि हम बड़े शान्त हैं।

(स्वामी) आपने अभी अहंकार को नहीं जीता।

(तपस्वी) हां जीत लिया।

इस पर स्वामी जी ने एक ब्रह्मचारी को थोड़ा सा इशारा कर दिया, जब वह बाहर निकले तो ब्रह्मचारी ने किसी बात पर उन से विवाद करके उन्हें पकड़ लिया। और मल्ल युद्ध हुआ, एक दूसरे को गिराते रहे, अन्त में स्वामी जी ने उन्हें हटाया और भीतर बुलाकर पूछा—"क्या आपने अभिमान जीत लिया", यह श्रवण करते ही उन्होंने क्षमा मांगी और चल दिये।

९—हरिद्वार में काशी के प्रसिद्ध विद्वान विशुद्धानन्दजी ने "ब्राह्मणोस्य मुखमासीत्" वाले मंत्र के यह अर्थ किये कि ब्राह्मण परमेश्वर के मुख से उत्पन्न हुए हैं। स्वामीजी ने कहा—मुख से तो खगार (थूक) भी उत्पन्न होता है इसके पश्चात इसके सत्य अर्थ बताये।

१०—स्वामीजी ने हरिद्वार कुंभ पर सर्वस्व त्याग व्रत धारण किया,तो यह भी प्रतिज्ञा की कि जब तक हमारी इच्छा पूर्ण न हो, संस्कृत ही उच्चारण करेंगे और गंगातट पर विचरेंगे, इसका समस्त साधु मंडल में चर्चा हुआ सभी कहते कि मूर्ति पूजा और पुरानों का मिथ्या होना अथवा संप्रदायों का खंडन जो दयानन्द कहता है, यह है तो सब सत्य परन्तु खुल खेलना अर्थात् लोकाचार के विरुद्ध चलना अच्छा नहीं।

११—फर्रुखाबाद में पं० मणिलाल ने पूछा—"महाराज !

गंगाजी कैसी हैं", तत्काल उत्तर दिया, "जड़ पदार्थ है", फिर पूछा—'सूर्य्य नारायण कैसा है" ? (स्वामीजी) "जड़ पदार्थ है"।

१२—कर्णवास में एक बार पं० भगवानदास ने ठाकुरों को भोग लगाकर स्वामीजी को भोजन खिलाना चाहा। वह बोले—हम उच्छिष्ट पदार्थ नहीं खाते, इस पर बिना ही भोग लगाये स्वामीजी को उसने भोजन कराया।

१३—अनूप शहर में सूर्य्य पुरी बारम्बार आकर स्वामीजी से प्रश्न करते और उत्तर पाते रहे अन्त में एक प्रश्न हुआ तो स्वामीजी ने कहा—तुम्हारी स्थूल बुद्धि सूक्ष्म विषयों को ग्रहण नहीं कर सकती, जैसे रेत में बिखरी चीनी को हाथी नहीं निकाल सकता, किन्तु चींटी के लिये यह सुगम है।

१४—स्वामीजी जब ताल वास से अनूप शहर जाने लगे, तो एक पुरुष ने कहा, "शहर में भागवत की कथा हो रही है, और तुम उसका खंडन करते हो। कोई रोटी भी न पूछेगा"। स्वामीजी बोले—"हमें इसकी चिन्ता नहीं, हमारी प्रारब्ध हमारे साथ है"।

१५—रामघाट में करुणाशंकर ने मूर्ति पूजा पर शास्त्रार्थ किया, जब संतुष्ट होगया तो कहने लगा, मूर्ति खंडन है तो सत्य, परन्तु उपजीविका के कारण हम छोड़ नहीं सकते। यहां ही नारायण प्रसाद सहायक अध्यापक प्रश्न करके उत्तर पाता रहा, वह कहता था कि आज तक मेरे जो शंका किसी से निवारण न हुए थे वह स्वामी जी ने कर दिये।

१६—रामघाट के भैरोंनाथ स्वामीजी की अत्यन्त प्रशंसा करते थे, कहते थे इनकी विद्या में कोई त्रुटि नहीं, विशुद्धानन्द भी निस्संदेह विद्वान हैं, परन्तु स्वामीजी की बात ही और है वह तो वेद विद्या में अद्वितीय पंडित हैं।

१७—पाठक छन्नूशंकर ने कहा, तुलसी पूजन से आप हटाते हैं फिर भोजन के पश्चात इसे खाते क्यों हैं, स्वामीजी ने कहा—"महात्म्य समझ कर नहीं खाता किन्तु मुंह शुद्ध करने को, जैसे पान खाया जाता है"।

१८—कई स्थानों में प्रश्न होता कि आप शरीर पर रज क्यों लगाते हैं, स्वामीजी कहते इससे जो मच्छर डंग मारता है वह असर नहीं करता।

१९—एक मनुष्य ने कहा, मेरा हाथ देखिये, स्वामीजी ने कहा, दिखाओ,उसने हाथ आगे करके कहा—"इसमें क्या है" ? स्वामीजी ने कहा—"इसमें हाड है,चाम है, रुधिर है, और कुछ नहीं"। एक मनुष्य ने जन्म पत्र दिखाया स्वामीजी ने कहा, जन्म पत्र का क्या प्रयोजन कर्म पत्र श्रेष्ठ होता है।

२०—साधु मायाराम ने स्वामीजी की बहुत निन्दा सुनकर उन्हें कहा "मूर्ति खंडन से आपको क्या प्राप्त है, आनन्द से हमारे सदृश भोजन पाकर निमग्न रहा करो और आराम किया करो क्यों द्वेष बढ़ाते हो"। स्वामीजी बोले—"ब्रह्मानंद वर्तते" हम तो ब्रह्मआनन्द में वर्तते हैं। वेद के प्रचार में जो आनन्द आता है, वह अन्य कहां प्राप्त हो सकता है।

२१—स्वामीजी एक बार कैलाश पर्वत के पास वाटिका वाली कुटिया में आये, वार्ता होते हुए एक हास्यप्रद बात कही कि "कैलाश पर्वत कुटिया में कैसे समा गया", इस पर सब हंस पड़े।

२२—स्वामीजी जहां जाते वार्तालाप, शंका समाधान, व्याख्यान, शास्त्रार्थ के अतिरिक्त संध्या गायत्री का बहुत उपदेश देते और लोगों को सिखलाते, सोरों बदरिया में लगभग दो सौ पुरुष संध्या करने लगे नारायण नाम के एक पुरुष ने इस वृत्तान्त को गंवारी कविता में इस प्रकार वर्णन किया।

स्वामी दयानन्द सरस्वती बाबा, आये ऐसे शास्त्री,
बहुतेरे लड़के कूपढ डोलें, पढ़ावें उनको गायत्री।

२३—ककोड़ा के मेले पर कायमगंज के पं० उमादत्त से शास्त्रार्थ हुआ, जब उससे उत्तर न बन पड़ा तो महाभारत का एक श्लोक बोलने लगा कि देखो, अकुलु भीलिया ने द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर पूजी थी। स्वामीजी ने कहा, वह भीलिया था किसी योग्य पुरुष का प्रमाण दो, उसने दुर्योधन का प्रमाण दिया तो कहा, मूढ़ दुर्योधन का वाक्य अप्रमाण है।

२४—ककोड़ा में एक वैरागी स्वामीजी को मिला जो ब्राह्मणों के पुत्रों को उच्छिष्ट खिलाता और उनसे सेवा कराता था, वह विद्यार्थियों को जिनके हाथ गोमुखियों में थे यह जाप कराता था, कि "हरि भजो सब छोड़ो धन्धा", स्वामीजी ने कहा—यह कैसे होसकता है, सब सत्य व्यवहार

कैसे छुड़ाते हो किस २ को छोड़कर हरि नाम भजें, भोजन को अथवा नासिका, जिह्वा या अन्य किसको ? वह विचारा निरुत्तर रहा।

२५—स्वामीजी ने कायमगंज आते ही प्रश्न किया कि यह क्या है, उत्तर मिला—'शिवालय" स्वामी जी ने कहा तुम लोग तो कहते हो शिवालय कैलाश है शिव वहां ही रहते हैं, इसलिये यह तो सराय है।

२६—जो हवन में जौ डालते, उनको स्वामीजी कहते जौ तो पशुओं का खाजा है, आप खायपुरी, देवतों को खिलायें जौ, जो अमृत पीने वाले हैं।

२७—एक मनुष्य ने कहा—सत्यनारायण की कथा पर रुपये की मन्नत मानते हैं तो कार्य्य सिद्ध हो जाता है। स्वामीजी बोले—हम पांच रुपये सत्यनारायण की कथा के दिखाते हैं कि लाखपति हो जावें, क्या हो जायंगे ? इस पर वह चुप हो गया।

२८—जन्म अष्टमी के विषय में स्वामीजी कहते थे, इस दिन खीरे से पत्थर निकालते हैं, और खीरे को देवकी का उदर ठहराते और फिर उसे खा भी जाते हैं मानो ठाकुर की माता का पेट चीर कर खा जाते हैं। कैसा अन्धेर है।

२९—फ़र्रुख़ाबाद में सुखवासी लाल साध कढ़ी और भात लाया और स्वामीजी ने इसे खाया, ब्राह्मण कहने लगे, तुम भ्रष्ट हो गये, कि साधु की रोटी खाई। स्वामी जी बोले—भोजन दो प्रकार से भ्रष्ट होता है एक तो दुःख देकर प्राप्त किये गये धन से जो अन्न लाया जावे, दूसरे भोजन में

अथवा उस पर कोई मलीन वस्तु पड़ने से, इनकी परिश्रम की कमाई है इसमें दूषण नहीं।

३०—एक पंडित ने कहा आप लोगों को यज्ञोपवीत कैसे धारण कराते हैं, शुक्र अस्त हो गया है, स्वामीजी बोले—हमें शुक्र के अस्त से क्या, हमारा अस्त नहीं हुआ।

३१—फर्रुखाबाद में गढ़ी के नवाब साहिब ने प्रश्न किया, कि क्या कोई ऐसी विद्या है जिससे अन्य स्थान का वृत्तान्त ज्ञात हो जावे? स्वामीजी ने कहा—योगी गुप्त बातों की इच्छा नहीं करते, सब से गुप्त ब्रह्म सत्ता है, उसको जानना योगी का मुख्य उद्देश्य है, और वह योग विद्या है।

३२—एक बार स्वामीजी घाट पर जल में पैर लटकाये पड़े थे, लड़कों ने देखकर कहा—यह मोटा आदमी क्या पड़ा है, इसको मारो, ऐसा ही हुआ वह रेत के गोले उनकी ओर फैंकते रहे और स्वामीजी चुपचाप सहन करते रहे, परन्तु जब कुछ रेत उनके नेत्र में पड़ी तो उठकर चले गये।

३३—जब कोई कहता कि आप से बड़ा विरोध और अत्याचार होता है, तो स्वामीजी कहते, मैंने असत्य खंडन का कार्य्य आरम्भ करने से पूर्व ही विचार कर लिया था, कि विरोध अवश्य होगा। परन्तु मैंने ईश्वर आश्रय पर यह भार उठाया है, दूसरे अंगरेज़ी राज की बड़ी सहायता है, यह राज न होता तो ब्राह्मण मुझे मरवा डालते।

३४—कन्नौज में विरोधियों ने स्वामीजी को बारंबार

संदेश भेजा कि मूर्ति खंडन न करो, नहीं तो हम मार देंगे। एक बार हरिशंकरजी ने यह संदेश एकान्त में उन्हें सुनाया। स्वामीजी बोले—हमारे मारने से मत डरो, दो चार का मूंड तोड़ने को तो हम सामर्थ हैं, अधिक का समूह हो तो सरकार में सूचना देकर पकड़वा देंगे। इसी कारण हम खुले मैदान में पड़े रहते हैं। ओट में नहीं रहते कि कोई ऊपर से पत्थर न डाल दे।

३५—स्वामीजी किसी भिखारी के मस्तक पर श्रीतिलक देखते तो कहते, कि मस्तक पर तो श्री (दौलत) है, और मांगता है भीख।

३६—एक बार पं० लोग महादेव की मूर्ति पर बिलपत्र चढ़ाकर आये। स्वामीजी ने पूछा कहां गये थे, उत्तर मिला, बिल पत्र चढ़ाने। स्वामीजी बोले—इससे तो ऊंट को खिलाया होता तो उसका चारा हो जाता, पत्थर पर चढ़ाने से क्या लाभ।

३७—एक ब्राह्मण भैरों पर फूल पत्र चढ़ाने आया, स्वामीजी ने कहा—"आप खाओ, खीर लड्डू भैरों को दो फूल पत्ते। उसके पास कैलाश पर तो जाओ, यहां तो पाषाण है," ब्राह्मण क्रोध करके बोला—तुम भैरों की निन्दा करते हो, अभी थोड़े दिन हुए भैरों की सवारी निकली संतरी ने मैगज़ीन (किले) के बुर्ज पर से टोका, भैरों ने कोप कर सिपाही को उठा दरया में दे मारा, राज्याधिकारी ने सूचना पाकर आज्ञा दी कि इस ओर का पहरा उठा दो, इसकी आवश्यकता नहीं, यहां भैरों स्वयं रक्षक हैं।

स्वामी जी ने कहा—भैरों ने नहीं फैंका होगा, निद्रा के कारण ऊंघ कर गिरा होगा, यदि वह सचमुच जागती जोत है तो हमें उठाकर फैंक दे, हम तो नित्य प्रति उस का खंडन करते हैं। वास्तव में यह बात मिथ्या है, कुछ दिन पश्चात् वह मूर्ति मंदिर तथा थड़े सहित गंगा की लहर से स्वयं गिर पड़ी और कटकर दरया में लोप होगई तब लोगों ने और मूर्ति वहां रखदी।

३८ कई स्थानों में ऐसा होता कि लोग विरोध करते, शास्त्रार्थ में उनके कथन का खंडन करते, परन्तु जब पीछे आपस में बातचीत करते तो कहते, कहता तो संन्यासी सत्य है, परन्तु इस से सब की आजीविका मारी जाती है। यदि यह मूर्तिपूजा खंडन न करते होते तो वर्तमान में उन्हें ब्रह्मा का औतार कहना उचित होता। और यदि यह किसी एक मत का खंडन करते तो कोई इनके सामने न ठहर सकता जिसे चाहते नष्ट कर देते।

३९—भस्म लगाने वालों को स्वामी जी कहते थे, यदि इस से मोक्ष होती है, तो खर रात दिन भस्म में लेटा करता है क्या उसकी मोक्ष होगई, चक्रांकितों के विषय में कहते थे कि हम मांस नहीं खाते, परन्तु छाप गर्म कर मनुष्य शरीर पर लगाते और उसी पानी का चरणामृत लेते हैं। अतः यह मनों मांस खाते हैं।

४०—कानपुर के शास्त्रार्थ के पश्चात एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि महाराज! चार सौ ब्राह्मण एकत्रित हुए, क्या इतने में से किसी को आप ने विद्वान नहीं पाया, बोले एक

लक्ष्मण शास्त्री विद्वान है, परन्तु मुद्रका के वशीभूत होरहा है।

४१—स्वामी जी ने कैलाश पर्वत को कानपुर में संदेश भेजा कि आकर समझलो, वह बोला हम शूद्र के मकान में नहीं जाते (स्वामी जी कायस्थ के यहां ठहरे हुए थे) स्वामी जी ने कहा ऐसा ही है, तो म्लेछ के राज में रहते क्यों हो ?

४२—कानपुर में पं० हृदय नारायण जी स्वामी जी के श्रद्धालु और प्रेमी भक्त थे, उन्होंने पूछा कि आप कब जायंगे, बोले—हम नहीं कह सकते। मुंशी गंगासहाय ने एक दिन कहा—महाराज जब जाने लगें मुझे बता देना, स्वामी जी ने कहा ऐसा नहीं होसकता नहीं तो हम घर वालों से क्यों पृथक् होते। हमारा कार्य्य ऐसा नहीं जैसा लोग कहते हैं, हे अमुक पुरुष प्रसन्न रहना और हम को मिलते रहना, यह बातें मोह की हैं, हम नहीं करेंग।

सो जब स्वामी जी जाने लगे बिना सूचना दिये भस्मी रमा पुराणा लंगोट लगा चल पड़े। नया लंगोट, लोटा आदि सब कुछ वहां ही छोड़ गये।

४३—काशी नरेश ने जब सुना कि एक महात्मा आये हैं जो मूर्तिपूजन का खंडन करते हैं, तो उन्होंने स्वामी जी को बुलाया, परन्तु वह बोले हम नहीं जायंगे, राजा साहब की इच्छा हो तो यहां आकर निर्णय करलें, राजा साहब तय्यार हुए, परन्तु खुशामदी लोग इस मेल के विरुद्ध थे, उन्हों ने कहा आप राजा, वह मस्त फ़कीर, मेल नहीं होगा। तथापि राजा साहब ने एक अच्छा मालीदा स्वामी जी के लिये

भिजवाया और भोजन आदि का भी ध्यान रक्खा, फिर राजा साहब ने स्वामी निरंजनानन्द से पूछा कि दयानन्द कहता है कि वेद में मूर्तिपूजा और रामलीला नहीं, उसने कहा, वेद में तो सचमुच नहीं, लोक रीत है। राजा जी को आश्चर्य्य हुआ उन्होंने और चौबे को आज्ञा दी कि ॥) आने प्रति दिन स्वामीजी के पास लेजाया करो और जो भोजन वह चाहें करा दिया करो, वह यह कहते थे कि यदि दयानन्द मूर्ति खंडन न करता तो हम उसे गुरु मान लेते और अपने हाथ से उन पर छतर चढ़ाते ॥

४४—स्वामीजी के मधुर भाषण और उसके उत्तम प्रभाव पड़ने की कई मनोरंजक घटनाएं हैं। काशी में राम मिश्र स्वामी महामहोपाध्याय दक्षिणी पंडित थे, उसे बड़ा अभिमान था कि एकवार मैं स्वामी जी को मिलूं तो उनके विचार ठीक करदूं। परन्तु यह उसे स्वीकार न था कि उनका मुंह भी देखे इसलिये कि वह मूर्ति की निन्दा करते और ब्राह्मणों को कठोर शब्द कहते हैं। अन्त में निश्चय किया कि रात को मिलूंगा, सो एक रात आया और आते ही जोश से बोला कि शास्त्रार्थ का साहस है तो मेरे नियम स्वीकार करो, परन्तु मैं ऐसे पतित से देव भाषा में बात न करूंगा, (स्वामी) आप बैठ तो जायं, पहिली शर्त तो मैं समझ गया कि आप मुझे संस्कृत बोलने की आज्ञा न देंगे, परन्तु संस्कृत शब्द तो बोलने देंगे? अच्छा और नियम कहिये, (पंडित, उठकर जोश से) एक छुरी बीच में रखी जावे, जो हारे उस की नाक काट ली जावे, मैं यह छुरी लेकर आया हूं। (स्वामी

हंसकर) मुझे स्वीकार है, परन्तु नाक विचारा तो शास्त्रार्थ नहीं करेगा, बल्कि बाणी करेगी, अतः एक बात मेरी भी मानिये, कि एक दूसरी छुरी रक्खी जाय जिस से हारने वाले की जिह्वा काटली जावे, और आपको स्वीकार होगा तो नाक भी काटली जावेगी, सब बात हंस २ कर और बड़ी नम्रता से स्वामीजी ने की, परिणाम यह हुआ कि १०-१५ मिनट में ही राममिश्र जी स्वामीजी के मित्र बन गये और पीछे सदा आते जाते रहे।

४५—संस्कृत के एक बड़े प्रसिद्ध विद्वान स्वामी रामनिरंजनजी को किसी ने सूचना दी, कि एक महात्मा दयानन्दजी आये हैं, जो मूर्ति पूजा का खंडन करते हैं। उन्होंने आगे पीछे देखा कि कोई अन्य पुरुष तो नहीं सुनता और कहा—"कहता तो सत्य है। परन्तु आयु में छोटा और जगत् व्यवहार से अनभिज्ञ प्रतीत होता है"।

४६—इलाहाबाद कुंभ प्रचार में स्वामीजी आचार्य्यों से कहते थे, मस्तक शृंगार की अपेक्षा उपासना द्वारा आत्म शृंगार किया करो, आडम्बर रचना महात्माओं का काम नहीं, तिलक आदि की माया तुमने कैसी रच रखी है, वह उत्तर न दे सके तो बोले। शोक महांशोक! तिलक आदि बनाने में लोगों की रुची है, योगाभ्यास में नहीं, मूर्ख जितना काल तिलक लगाता रहा, गायत्री जप क्यों न किया, एक आचार्य्य बोला, यदि आप हमारे देश में होते तो भूमि में गाड़ कर मार देते, स्वामीजी हंस पड़े और बारम्बार उसे बिठाकर योगाभ्यास की शिक्षा देते रहे।

४७—स्वामीजी जब मिरज़ापुर में थे, रात के दो बजे ही गंगातट पर जाकर शौच स्नान से निवृत हो, ३ बजे निवासस्थान पर समाधि लगा ईश्वर ध्यान में बैठ जाते। एक रात्री को २ बजे जाते थे कि "सी बोल्ड साहब" के कारखाने वाला सिपाही ऐसे लम्बे शरीर वाले को देखकर बहुत डरा और साहब को जाकर सूचना दी, वह लाल्टैन लेकर आये और स्वामीजी को देखकर संतरी को कहा—यह जिस समय आवें आने दो कोई रोक टोक न करे।

४८—एक मनुष्य ने प्रश्न किया कि यह जीवात्मा परमेश्वर है या नहीं ? स्वामीजी ने कहा—यह बात सूक्ष्म है, तुम इसे समझ नहीं सकते, इस पर एक पंडित ने श्लोक पढ़कर कहा—जल भी विश्नु, स्थल भी विश्नु, इत्यादि। स्वामीजी बोले—यदि अर्थ यह है कि जल स्थल विश्नु ही विश्णु है तो आप लोग शौच भी उस पर जाते और पेशाब भी उस पर करते हैं, जिससे बड़ा दोष लगता होगा। इस पर वह चुप होगया।

४९—स्वामीजी अनूप शहर में एक दिन प्रातःकाल शौच स्नान के लिये गंगा तट पर थे, सैंकड़ों पुरुष पूर्णमासी का दिन होने से पित्रों को जल देने आये। स्वामीजी ने अवतार तथा मूर्ति खंडन का उपदेश दिया और कहा—अरे मूढ़ों ! जल में जल मत डालो, यदि डालते हो तो किसी वृक्ष की जड़ में डालो, ताकि लाभ तो हो।

५०—पटना में एक दिन स्वामीजी दिशा जंगल को गये थे, उनकी अनुपस्थिति में रसोइये ब्राह्मण का चाचा चौके

के पास आकर उससे पूछने लगा,कि आप लोग तो स्वामीजी के भोजन पाये पश्चात ही जीमते होगे ? वह बोला, हां, इस पर उसने कहा चौका तो फिर झूठा हो जाता होगा, लकीर आदि का नियम कर लिया करो। स्वामीजी आकर कुल्ला, स्नान, ध्यान आदि से निबट कर रसोई पाने लगे तो उस दिन चौके के बाहर ही बैठ गये, रसोइया बोला,महाराज यह क्यों ? तो कहा,हमें यहीं देदो, हमें यह डर तो नहीं कि कोई बिरादरी से पृथक कर देगा।

५१—पं० राजनाथ शर्म्मा तिवाड़ी को स्वामीजी का विद्याबल तथा सत्य का प्रचार देखकर उत्कण्ठा हुई कि मैं भी ऐसे महात्मा की संगत में रहूं और अपना जन्म सफल करूं। उसने प्रार्थना की तो स्वामीजी ने कहा—कुटुम्बियों से सम्मति करलो। वह बोला—महाराज ! वह कब आज्ञा देंगे, किन्तु कहेंगे कि स्वामी तुम्हें बहका कर फ़कीर बना लेगा, बातचीत होकर और उसकी प्रबल इच्छा तथा श्रद्धा को देखकर स्वामीजी ने स्वीकार किया, प्रथम दिन स्वामीजी की आज्ञानुसार राजनाथ ने भोजन बनाया, तत्पश्चात् स्कूल से नाम कटवाने और अपनी वस्तुएं लाने गया, मास्टरों को कहा—मैं अब स्वामीजी से विद्या पढ़ूंगा। उन्होंने उसका बहुत उत्साह बढ़ाया कि धन्य भाग हैं तेरे जो स्वामीजी ने तुम्हें पढ़ाना स्वीकार किया, सायं काल को डिपटी सोहनलाल ने उसे पूछा—क्या स्वामीजी के पास जाओगे ? बोला—कल प्रातःकाल जाऊंगा। उन्होंने कहा—अभी जाओ और दूध तथा मिसरी साथ ले जाओ। उत्तर मिला—

रात्रि का समय है, घोर अन्धेरा है, दो अढ़ाई कोश की दूरी, मार्ग में पानी, अकेला कैसे जाऊं। डिपटी साहब ने कहा—ऐसे भीरू हो,तो स्वामीजी के संग में कैसे रह सकोगे। निदान वह दूध मिसरी लेकर चला, रास्ते में बूंदें पड़ने लगीं, अन्धेरा भी अधिक था, इसलिये वह डरने लगा । आगे चला तो और ही आपत्ति आई, एक बड़ा सर्प पानी से निकल सड़क पर आया, यह भयभीत होकर पीछे दौड़ा । परन्तु उधर एक और सर्प प्रतीत हुआ, तब तो अत्यन्त घबरा गया कि न इधर के रहे न उधर के ! देर तक खड़ा रहा । अन्त में निश्चय करके स्वामीजी की ओर चल दिया । और सर्प के निकट जा आंख बन्द कर छलांग मार उस पर से कूद गया । जब बहुत कष्ट सहने के पश्चात् बाग़ में पहुंचा, तो स्वामीजीने पूछा—आते हुए भय तो प्रतीत नहीं हुआ ? बोला —महाराज ! हूआ । स्वामीजी ने कहा—क्या सर्प देखा, कहा—सत्य है । तब स्वामीजी इस अवेरे आने पर प्रसन्न हुए और कहा, वर्षा ऋतु में प्रायः सर्पादि निकलते हैं, अन्धेरे में न चलना चाहिये ।

५२—स्वामीजी के पास कौमुदी का नाम लेते, तो वह उसे कुमति कहते, दुर्गा पाठ को मुर्गा पाठ, पुजारी का अर्थ करते 'पुजा-अरी' अर्थात पूजा का शत्रु ।

५३—मुंगेर में एक दिन कहार ने गंगा पर जाकर एक टाल वाले से सूखी लकड़ी मांगी, कि स्वामीजी की रसोई करनी है । वह बोला—हम नहीं जानते कौन स्वामी हैं, लौटा, तो स्वामीजी ने राजनाथ को कहा—इसे जूते

लगाओ, यह लकड़ी के लिये भिक्षा मांगने गया था राजनाथ ने आज्ञा का पालन किया, तब स्वामीजी ने दोनों को समझाया कि कभी भिक्षा मांगोगे तो दोनों को निकाल देंगे। इसके पश्चात् वह टाल वाला स्वयं लकड़ी का भार उठा लाया, और प्रणाम किया। स्वामीजी ने कहा—तुम से किसने मांगा है हम नहीं लेते, वह बोला—महाराज! हम से अपराध भया है, हम इस कहार को न जानते थे। जब यह चला आया, तो पता लगा कि आप चार दिन से पधारे हैं। निदान बहुत आग्रह होने पर स्वामीजी ने लकड़ी स्वीकार करली।

५४—भागलपुर में एक बनिया दो तीन दिन दूध अन्न आदिक भिजवाता रहा, उसकी इच्छा थी कि मेरे पुत्र हो। स्वामीजी उसके कहे बिना उसके व्यवहार से ही जान गये, और तीसरे दिन उसका अन्न लौटा दिया, कि हम गर्ज़ वाली भिक्षा का ग्रहण नहीं करते।

५५—भागलपुर में एक दिन ३०-४० देशी और अंगरेज़ पादरियों, और मौलवियों से वार्तालाप होता रहा, स्वामीजी का उपदेश सुन कर एक बंगाली ब्राह्मण बहुत रोने लगा कि शोक! आप जैसे पं० हमें नहीं मिले अन्यथा हम ईसाई क्यों होते, हम स्कूल में पढ़ते थे, पादरियों के प्रश्नों का उत्तर घर आकर मांगते तो संतोषजनक न मिलता था।

५६—पहलीवार स्वामीजी बाबू केशवचन्द्रसेन से मिले तो एक मनोरञ्जक वार्ता हुई, बाबू जी स्वामीजी से बातें करते रहे, परन्तु नाम आदि का पता न दिया था, अन्त

में पूछा—"क्या आप केशवचन्द्रसेन से मिले हैं" स्वामीजी ने कहा–"हां मिला हूं"। बाबू बोले–"वह तो बाहिर गये हुए थे आप कब मिले"। कहा–"मैं मिलचुका" दो तीन बार यही कहने के पश्चात् कह दिया "तुम ही तो केशवचन्द्र सेन हो"। प्रश्न हुआ–"आपने कैसे पहचाना" स्वामीजी ने कहा–"जो बातें आपने कहीं दूसरे की हो ही नहीं सकतीं"॥

५७—एक बार केशवचन्द्र सेन ने कहा–"मैं शोक करता हूं, वह (दयानन्द) वेदों के पं० अंगरेजी भाषा नहीं जानते, यदि जानते होते तो बिलायत जाने के लिये मेरे मन पसंद साथी होते"। प्राचीन फ़िलासफ़ी के विद्वान् के मन में अभिमान न था, अतः उसने अंगरेज़ी के हिन्दुस्तानी व्याख्यान वाचस्पति को उत्तर दिया, कि मैं भी ब्रह्म समाज के लीडर के संस्कृत न जानने पर वैसा ही शोक प्रगट करता हूं, जो भारतवासियों को उस भाषा के द्वारा एक सभ्य संप्रदाय की शिक्षा देना चाहता है, जिसको वह समझते भी नहीं।

५८—कानपुर में एक दिन पं० हेमचन्द्र ने पूछा–"इतने बड़े २ पं० विचारने आये हैं, क्या सब की भूल है, कोई कुछ नहीं जानता, एक आप ही ठीक कहते हैं"। स्वामीजी हंसकर बोले–"सत्य तो बहुत लोग जानते हैं, परन्तु आजीविका बंद होजाने के कारण स्पष्ट नहीं कहते"।

५९—अलीगढ़ का पं० मेहरचन्द लोगों को कहा करता था, कि स्वामी दयानन्द अलीगढ़ आवे तो मैं शास्त्रार्थ में

दो मिनट में उसे चुप करादूं । परन्तु जब वह आये तो सामने नहीं आया, स्वामीजी ने कई वार बुलाया–परन्तु उसने यह बहाना बनाया कि हम प्रतिमा खंडन करने वाले का मुख तक नहीं देखना चाहते"। स्वामीजी ने कहा–"यदि ऐसा है तो पर्दा बीच में डाल दो, यह न करो तो किसी दीवार की ओट में दोनों ओर हम बैठ सकते हैं, परन्तु माने कौन।

६०—अलीगढ़ में स्वामीजी महादेव के मंदिर के पास फ़र्श पर बैठे थे। कौल का एक शीघ्र बोधी पं० आया और मंदिर के चबूतरे के ऊपर बैठकर शास्त्रार्थ करने लगा, लोगों ने कहा–बैठो तो सभ्यता से, परन्तु उसने नहीं माना। स्वामी जी ने कहा—कुछ बात नहीं, बैठने दो, ऊपर नीचे से बड़ाई नहीं, देखो, वह कव्वा वृक्ष पर बैठा है, वह पं० जी से भी ऊंचा है, इससे क्या होता है।

६१—स्वामी बिरजानन्द के विद्यार्थी पं० हरिकृष्ण वृन्दावन में मिले तो स्वामीजी ने पूछा, वह गुठली वाला (रुद्राक्षधारी) कृष्णानन्द देखा है? वह बोले--स्वामीजी आप कहते तो सत्य हैं, परन्तु ६० वर्ष का राम निकलता ही निकलेगा। जो अविद्या में फंसे हैं इतनी जल्दी निकल नहीं सकते।

६२—वृन्दावन में स्वामीजी बड़ा शोक करते थे, कि सेठ लक्ष्मीनारायण ने मंदिर पर इतना रुपया लगा दिया जिससे न लोक का भला न परलोक का। क्या ही अच्छा होता कि

पाठशाला पर इतना रुपया लगता और वेद तथा संस्कृत का प्रचार होता।

६३—बृन्दाबन में शास्त्रार्थ तो किसी ने नहीं किया, हां पं० गण नित्य प्रश्न बना २ कर लाते थे,परन्तु संमुख आकर चुप रह जाते थे। स्वामीजी फिर २ कहते, जो संदेह हो निवृत्त करलो, परन्तु उत्तर मिलता था। महाराज! आप सब सत्य कहते हैं, हम पापी पेट के मारे सत्य नहीं कह सकते।

६४—बनारस में लाला माधोदास के बाग़ से नित्यप्रति फूलों की टोकरी उनके घर जाती थी, एक दिन स्वामीजी ने कहा–"यह कहां जाती है" बोले–"ठाकुरों के लिये घर में जाती है"। स्वामीजी ने कहा–"शोक! आपने अब तक मूर्तिपूजा नहीं छोड़ी, यदि यह फूल बूटों से लगे रहते तो सुगन्धी अधिक देते, दूसरे पंखड़ियां खात का काम देतीं। यदि गुलदस्ता बनाकर मकान में रखते तो भी लाभ होता, परन्तु यहां तो सर्वथा निष्फल हैं।" लाला जी ने कहा–"हमारे यहां सब मूर्तिपूजक हैं, न भेजें तो डेढ़ रुपये के पुष्प नित्य प्रति बाज़ार से मूल लें, फिर आज्ञा कीजिये हम क्या करें"। स्वामीजी बोले–"ऐसी अवस्था में तो कठिन ही है"।

६५—स्वामीजी ने बनारस में एकवार लाला माधोदास के गृह पर निवास किया, लालाजी उन दिनों राजा साहब से मिले, तो पं० ताराचरण तर्क रत्न ने उन्हें कहा—आपने अपने दोनों लोक बिगाड़ लिये, जो दयानन्द को ठहराया।

तुम्हारा तो मुख देखना भी पाप है । अच्छा हो कि अभी जाकर उन्हें निकाल दो, यही तुम्हारा प्रायश्चित है। लाला जी ने कहा—मैं आप से शास्त्रार्थ करने नहीं आया, यदि करना हो तो मेरे मकान में आओ। अन्यथा मुझे आप से प्रयोजन नहीं। परन्तु देव योग से ऐसा हुआ कि फिर जब स्वामी जी बनारस आये तो राजा ने बग्घी भेजकर स्वामी जी को बुलाया, उन से गले लगकर मिले और बहुत आदर सत्कार किया, ताराचरण जी उपस्थित थे, वहीं लाला माधोदास ने कहा—ईश्वर का धन्यवाद है, आज मेरे दोनों लोक बनगये। कि महाराजा और आप दोनों उसके अनुयाई होगये जिससे मुझे हटाते थे।

६६—स्वामी जी अहमदाबाद (गुजरात) गये तो आप को एक बड़े सेठ लेने आये उन्होंने दो तीन लाख रुपया लगवाकर मंदिर बनवाया था, रस्ते में लगे उसकी प्रशंसा करने, परन्तु स्वामी जी ने इस पर शोक प्रगट किया, और गाड़ी में हाथ मार कर कहा—इतना रुपया तुमने एक पत्थर पर लगवाया। यदि विद्या प्रचार में लगाता, तो वेद पढ़े ब्राह्मण जगत् का उपकार करते ऐसी ही मूर्खता से हमारी यह दुर्दशा है कि वेद जर्मन से मंगाये जाते हैं, तब पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त होता है।

६७—बम्बई में पंडित रामलाल ने स्वामी जी से शास्त्रार्थ किया, जिस में सभापति ने आखिर साफ़ सम्मति प्रकाशित की, कि पं० रामलाल मूर्ति को वेदोक्त सिद्ध नहीं कर सके। किन्तु प्रयाग में जब यही पंडित जी वैदिक

यन्त्रालय के मैनेजर से मिले तो उस से उनकी बात चीत इस प्रकार हुई :—

मैनेजर—आप संस्कृत के विद्वान् हैं और भी हैं इसी प्रकार स्वामी दयानन्दजी हैं, वह भी चारों वेदों को मानते हैं, फिर क्या कारण है कि आपकी सम्मति नहीं मिलती, या तो स्वामी जी का कहा मानो, या उनको रद्द कर दिखाओ।

पंडित—स्वामीजी संन्यासी और विरक्त पुरुष हैं वेद शास्त्र का उन्होंने सब अध्ययन किया है, उनकी बुद्धि निर्मल है वह सामर्थ हैं और सत्य कहते हैं, किन्तु हमें सौ बन्धन हैं सत्य कहें तो अभी चर्चा हो जावे, हमारे कहने से फ़ायदा (लाभ) तो कुछ भी न होगा, हां ! हमारी आजीविका मारी जावेगी।

मैनेजर—क्या स्वामी जी सत्य कहने से मान नहीं पा गये, फिर आप क्यों अधर्म की आजीविका करते हैं।

पंडित—संसार की ऐसी ही प्रवृति है, इस प्रकार स्वामी जी का ही निर्वाह हो सकता है, हम गृहस्थियों का नहीं।

६८—बम्बई में एक बार बहुत सी स्त्रियां सन्तान की इच्छा से आईं, कई सेठ साहूकार बैठे थे, स्वामी जी ने कहा—लड़का सिवाय बैरागियों के और कोई नहीं दे सकता। मेरे पास नहीं। सेठ बहुत लज्जित हुए और वह स्त्रियां चली गईं।

६९—खण्डन से नाराज़ (अप्रसन्न) हुए लोग गालियां देते, तो स्वामी जी कहते कि ईश्वर भक्ति का प्रचार करते

हुए धर्म विरोधियों की गालियों से मैं प्रसन्न होता हूं, अप्रसन्न नहीं।

७०—फ़ैज़ाबाद में ईसाइयों से शास्त्रार्थ हुआ, वह निरुत्तर हो गये, प्रणाम करके कहने लगे कि हमें यकीन (विश्वास) है, आप जल्द हमारे मतानुयायी हो जावेंगे, स्वामी जी ने कहा, यह तो परम असम्भव है, हां! आप देखेंगे कि थोड़े ही समय में बहुत से ईसाई वैदिक धर्म की प्रशंसा करते हुए वेद अनुयायी होंगे।

७१—मथुरा का एक चौबा स्वामीजी को दिल्ली में मिला और उन्हें मिट्टी देने लगा, स्वामी जी ने पूछा, यह कैसी है, कहा कृष्ण जी ने बालकपन में यह खाई थी।

स्वामी—उन्हों ने बालकपन में ऐसा किया होगा, परन्तु बुद्धिमान पुरुषों को ऐसा योग्य नहीं, थोड़ी देर पश्चात् स्वामी जी बोले, हमने सुना है तुम्हारी स्त्री रूपवती और चतुर है। इस पर वह क्रोध करने लगा, (स्वामी) अरे! तू कोई बड़ा आदमी नहीं फिर भी तुमने बुरा माना, तो विचारो कि कृष्ण जी के सन्मुख उनको पराई स्त्री से दूषित करते अथवा उनकी स्त्री का स्वरूप वर्णन करते तो वह तुम से क्या वर्ताव करते।

७२—लुधियाने में पादरी बैरी साहिब ने कहा कि कृष्ण जी के ऐसे कार्य सुनकर उन्हें महात्मा कहना उचित प्रतीत नहीं होता, स्वामी जी बोले कि यह दोष असत्य हैं उन्होंने ऐसा नहीं किया, किन्तु जब बुद्धि यह मान

लेती है कि ईश्वर का आत्मा कबूतर के रूप में एक मनुष्य पर उतरा, तो इसे मानने में कठिनाई ही क्या है।

७३—एक पंडित ने अपने साथी को कहा कि दुष्ट है, इसका मुख देखना उचित नहीं, चलो, स्वामीजी बोले, मेरे मुख में तो कोई विशेष चिन्ह नहीं जिसे देखो, यदि घृणा है तो मेरे पीछे खड़े होजाओ और मेरी केवल बात सुनो।

७४—लुधियाने में आपने भूत का खंडन किया और एक दृश्य दिखाया, जिस मकान में रहते थे उसके दोनों ओर जलता दीपक रखवाया और फिर कहा—इसको बुझा दो, वह बुझ गया तो कहा दूसरे को भी बुझा दो। जब उसे बुझाया तो पहिला जल उठा और जब पहिले को बुझाया तो दूसरा जल उठा, अन्तर दोनों में दस बारह गज़ का था, कई बार दिखा कर कहा यह विद्या की बात है भूत कोई नहीं।

७५—लाहौर में शिवनारायण अग्निहोत्री ने एक पुष्प भेंट किया, तो बोले क्यों तोड़ा, (अग्निहोत्री) आपके लिये लाया हूं (स्वामी जी) बहुत बुरा किया। (अग्निहोत्री) किस तरह (स्वामी जी) प्रथम तो जितना काल स्वभावतयः इसने सुगन्ध फैलाना था उस से पहिले इसे तोड़ा (द्वितीय) वैसा ही लगा रहता तो बहुतों को लाभ होता (तृतीय) स्वयं गिरता तो सूखकर गिरता और दुर्गंध न फैलाता, किन्तु खाद बन जाता।

(७६) स्वामीजी भाई दितसिंहजी से वार्तालाप कर रहे थे अग्निहोत्री जी बीच में बोल उठे कि स्वामीजी से उत्तर नहीं

आया, इस पर स्वामीजी ने कहा भला कहिये कि हमने क्या कहा ? अग्निहोत्री ने कुछ बताया, तब (स्वामीजी) क्यों भाईजी हम ने यही कहा ?

(भाईजी) नहीं यह नहीं कहा, पंडितजी ने सुना नहीं।

(स्वामी) फिर अग्निहोत्री से, अब बताइये भाईजी ने क्या कहा था, शिवनारायण ने फिर कुछ बताया, किन्तु भाईजी बोले, मैंने भी यह नहीं कहा, तब स्वामीजी ने उन्हें समझाया कि बिना समझे तथा विचारे सम्मति न दिया कीजिये।

(७७) एक दिन अग्निहोत्री बोले, स्वामीजी सामवेद में उल्लू की कथा है, स्वामी जी ने उससे कहा कदापि नहीं, परन्तु उसने हठ किया, तो स्वामीजी ने सामवेद हाथ में दिया और कहा निकालिये कहां है। (अग्निहोत्री) पत्रे उलट पलट कर बोला, इसमें तो नहीं मिलती। तब उपस्थित सज्जनों ने उन्हें बहुत लज्जित किया।

(७८) लाहौर में स्वामीजी ने व्याख्यानों में कहा, हम जानते हैं, वैदिक धर्म प्रचार का यह महान कार्य हमारे इस जीवन में पूर्ण नहीं होगा, परन्तु इसमें नहीं तो दूसरे जन्म में हम पूर्ण करेंगे।

(७९) एक पुरूष ने कहा, आप संन्यास के विरुद्ध कार्य करते हैं पूछा क्या, तो बोला, शिव की निन्दा।

(स्वामीजी) मैं निन्दा नहीं करता, किन्तु वास्तविक शिव की महिमा जितनी मेरे मन में है अन्य किसी के मन में न

होगी, हां ! तुम्हारा पत्थर का शिव जो मंदिर में है, न पूजा का पात्र है न मैं उसे मानता हूं।

(८०) अमृतसर में पादरी क्लार्क साहिब ने कहा, आओ हम और आप एक मेज़ पर भोजन पायें, (स्वामीजी) लाभ क्या ? (पादरी) मित्रता बढ़ेगी, (स्वामीजी) शय्या और सुन्नी मुसलमान परस्पर विरोधी हैं आप और रोमन कैथोलिक वाले एक मेज़ पर खाते परन्तु मन से एक दूसरे के शत्रु हैं, पादरीजी निरुत्तर हो गये।

(८१) स्वामीजी कहते थे कि हिन्दू तो छोटीसी चुहिया को पूजते हैं परन्तु मुसलमान बड़े मूर्ति पूजक हैं, जो बिल्ली को पूजते हैं, आपका आशय सालिग्राम की मूर्ति और मक्के के बुत से था।

(८२) जालंधर में कई पुरुषों से मृतक श्राद्ध विषय पर वार्तालाप हुआ, स्वामीजी ने सिद्ध किया, कि पिता, पितामहा, प्रपितामहा, नाम है चौबीस, छत्तीस और ४८ वर्ष के ब्रह्मचारियों का, मृतकों का नहीं, एक मंत्र भी पढ़ा, जो पिंड की वेदी बनाते हुए पढ़ा जाता है। प्रयोजन उसका यह है कि भूत प्रेत उसके निकट न आवे यह मंत्र पढ़कर लकीर फेर देते हैं, परन्तु विचारते नहीं कि मक्खी तो इसके पढ़ने से उड़ नहीं सकती भूत प्रेत कैसे हटेंगे, यह विचार कपोल कल्पित हैं। कुछ पुरुषों ने पंडित शिवराम को वार्तालाप के लिये आगे किया, स्वामीजी ने उन्हें कहा, कि निर्पक्ष होकर कहिये, पितृ शब्द जीवित के अर्थों में आता है अथवा मृतक के। उसने कहा महाराज व्याकरण अनुसार

तो जीवित के लिये आता है, पालना और रक्षा करना जीवित का ही काम है। (स्वामीजी) यही तो मैं कहता हूं, यह नहीं कहता कि जीते को तीर और मरे को खीर।

(८३) जालंधर में एक करामाती साधु से वाद विवाद हुआ, सर्दार बिक्रमासिंह के मन से उसका धोखा तथा प्रभाव दूर करने को स्वामीजी ने पोल खोल दिया, वह कहता था मेरे पास कुछ नहीं, आकाश अथवा जिन्नों से पदार्थ मंगाता हूं, परन्तु स्वामीजी ने उसकी तलाशी लेकर उसके चूतड़ों से पंसेरी निकाल दी।

(८४) आर्य समाज लाहौर के अधिवेशन में उपनियमों पर विचार होता था, सभा ने प्रार्थना की, आप भी सम्मति दीजिये। (स्वामीजी) मैं अंतरंग सभा का सभासद नहीं, अतः यह मेरा अधिकार नहीं, बहुत कहा गया, परन्तु आप ने अपनी सम्मति दी नहीं, जब तक उन्हें पहिले सभासद न बनालिया गया।

(८५) जम्मूं से एक वकील महाशय रावलपिंडी आये, नमस्कार कर मुट्ठीचापी करते और एक २ अंग पर हाथ लगा कर उसका नाम पूछते रहे, अंत में कहा, कि जब इन का हस्त, पाद, नासिका नाम है तो दयानन्द किस का नाम है, स्वामीजी ने उत्तर दिया, कि जिस प्रकार एक २ जोड़ का नाम पहिया, धुरा आदि और समूह का नाम गाड़ी है वैसे ही अंग तो हाथ आदि हैं, और सबका समूह दयानन्द है।

(८६) जेहलम में स्कूल के मुख्य अध्यापक बोकनयन साहिब ने एक लैकचर के पश्चात खड़े होकर कहा, "ओ बाबा, ओ बाबा ! तू जो इन अंधों (ब्राह्मणों) की डंगोरी छीनता है इसके बदले इनको देता क्या है" । स्वामीजी ने कहा, "मैं वेद देता हूं तथा योगाभ्यास" ।

(८७) जेहलम में कुछ हिन्दुओं ने परस्पर मता पका कर प्रश्न किया,कि स्वामी जी आप ज्ञानी हैं अथवा अज्ञानी ? आशय यह था कि ज्ञानी कहेंगे तो अभिमान का दोष देंगे, और अज्ञानी कहेंगे तो हमारा यह उत्तर होगा कि जो स्वयं अज्ञानी है, वह दूसरों को क्या शिक्षा देगा । परन्तु जब स्वामीजी ने उत्तर दिया, सब चकित रह गये । आप ने कहा, मैं कई विषयों में ज्ञानी हूं और कईयों में अज्ञानी, जैसे दुकानदारी, व्यापार,अंग्रेज़ी,फ़ारसी आदि में अज्ञानी हूं और संस्कृत तथा धर्म की बातों में ज्ञानी ।

(८८) मुलतान में ब्राह्मणों के विषय में व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने कहा, "हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मणों को न मानो, किन्तु यह कहते हैं कि जो ब्राह्मण कर्म धर्म करता हो उसको मानना चाहिये, हम यह नहीं कहते कि ब्राह्मण को गोदान मत दो, किन्तु यह कहते हैं कि गौ वैतरणी से पार नहीं उतार सकती । ऐसा कहना मिथ्या है, हां ! ईश्वर निमित्त ब्राह्मण को गो दान देना पुण्य और पृथक बात है । यदि मैं सात वर्ष यहां रहूं तो चारों वेदों की टीका करूं । ब्राह्मणों के बच्चों को एक पाठशाला में पढ़ाऊं, वह भीख मांगना छोड़ देवें, फिर देखें वह क्या बन जाते हैं ।

(८६) शराब के सम्बन्ध में स्वामीजी कहते थे कि मदिरा पान करने वाला ऐसा होता है जैसा पक्षी पिंजरे में रख कर नीचे आग लगा दी जावे । मांस विषय पर बात चलती तो कहते कि मैं मांस नहीं खाता जिस का जी चाहे, मल्ल युद्ध करले । स्वाद मसाले का है मांस का नहीं,न मांस कुछ बल देता है ।

लड़कियों के टक्क लेने वालों के विषय में कहते थे यह ऐसे हैं जैसे कोई वेश्या के टक्क लेता हो, वह तो थोड़े लेते हैं परन्तु यह एक बार ही बहुत से गिना कर रखवा लेते हैं ।

(९०) मुलतान में आर्यसमाज की स्थापना हुई, तो ब्रह्मानंदजी ने हंसी से कहा कि सात ही मैम्बर हैं । स्वामी जी बोले कि मुसलमानों के पैग़म्बर की तो केवल एक ही स्त्री सहायक थी और उसने इतनी उन्नति की, हमारे तो फिर भी सात पुरुष सहायक हैं ।

(९१) एक ब्राह्मण रेशमी छाता लाया, और स्वामीजी के पास रख दिया, उससे प्रश्न हुआ तो उसने कहा कि आपके लिये लाया हूं । स्वामीजी ने कहा, "सुनो भाई, हम फ़क़ीर हैं, हमें न सरदी सतावे न गर्मी । यह जाकर किसी नटवे को दें, जो लाहौरी जूता पहिन कर गलियों में घूमा करे, हमें ऐसी वस्तु नहीं चाहिये ।

(९२) किसी ने प्रश्न किया, आपकी सम्मति में मैक्स-मूलर साहिब की योग्यता कैसी है ? उत्तर दिया, वह वेद विद्या में केवल एक बच्चासा है, जब तक कोई गुरु शिक्षा न देवे, वह सायन और महीधर का अनुकरण करना कदापि

न छोड़ेगा। उसको अभी तक वेद के भौतिक अर्थ भी ज्ञात नहीं हुए,अध्यात्मिक अर्थ तो वह अब जान ही क्या सकेगा।

(९३ अमृतसर में गुरुदासपुर स्कूल के मास्टर मुरलीधरजी मिलते रहे, एक दिन उन्होंने प्रार्थना की, "महाराज मुझे गुरु मंत्र दीजिये! स्वामी जी ने कहा, "हमारा यही गुरु मंत्र है कि जो सत्य हो उसी को मानो और जो असत्य हो उस को छोड़ दो।

(९४) किसी ने प्रश्न किया कि बात क्या है कि वेश्या का नाच गायनादि हो, तो सारी रात जागते रहें, निद्रा आती ही नहीं, परन्तु ईश्वर कथा में थोड़े ही काल पश्चात निद्रा आ जाती है। स्वामीजी ने उत्तर दिया, "हरि कथा मखमल के बिछौने की न्याईं है उस पर निद्रा न आये तो और कहां आये। और वेश्या नाचादि कांटों वाली भूमी के सदृश है उस पर निद्रा कहां।

(९५) लाहौर में स्वामीजी ने वर्णन किया, "कि आप लोग तो मुझे बड़ा मोटा और हृष्ट पुष्ट समझते हैं परन्तु मैं पहिले की अपेक्षा बहुत दुर्बल हूं, तुम्हारी चिन्ताओं ने मुझे बहुत शिथिल कर दिया है। एक साधु उनके साथ आया हुआ था, उसने कहा, "सचमुच जिन दिनों स्वामीजी गंगा तट पर रेते में पड़े रहते थे तब इससे बहुत अधिक मोटे ताज़े थे शोक! अब इनके शरीर की वह अवस्था नहीं है।

(९६) स्वामीजी के पास बांके बिहारीलाल क्लर्क था, जो स्वभाव का सड़ियल और कठोर वाणी वाला था,

परन्तु स्वामीजी सदैव उससे भी उदारता और प्रसन्न वदन रीति से वर्ताव करते थे, जब वह नौकरी छोड़कर जाने लगा, तो शेष वेतन की बाबत स्वामीजी ने उसे एक नोट दिया, वह तब बोला कि इस पर सही करदो! यह शब्द ऐसी स्वर में कहे, कि अपरिचित पुरुष उसे बड़ी धृष्टता समझे, परन्तु स्वामीजी ने नोट पर "दयानन्द" लिख दिया, वह फिर उसी प्रकार बोला, यह तो लिखा ही नहीं कि किसको दिया, तब स्वामीजी ने लिखा, "बिहारीलाल को दिया", वह कहने लगा, बिहारीलाल तो इनका नाम है, मैं तो बांके बिहारीलाल हूं। स्वामीजी हंस पड़े और बोले, "ले भई! क्रोध न कर, यदि टेढ़ा बने बिना तुम्हें शान्ति नहीं आती तो साथ "बांके" (टेढ़ा) का शब्द भी लिख देते हैं।"

(९७) रुड़की में स्वामीजी ने कर्नल आलकाट की चिट्ठी सुनाई जो अमेरिका से आई थी, उससे ज्ञात होता था कि उनकी रुचि वैदिक धर्म की ओर बढ़ी हुई है। तब अनुमान पचास पुरुष उपस्थित थे। स्वामीजी ने कहा, "शोक विदेशी तथा अन्य मतवादियों को हमारे धर्म के अन्वेषण की यह लगन हो और हम यहां के बासी तथा अपने आप को आर्य सन्तान कहने वाले कानों में रुई डाले बैठे हैं।

(९८) पूर्वोक्त पत्र को एक मज़हबी सिक्ख भी ध्यान पूर्वक सुन रहा था, यह सफ़रमैना की पलटन का आदमी था और श्वेत वस्त्र पहने था, कम्पू का चिट्ठीरसां आया तो उसे देखकर रौला मचाने लगा और उसे मारने को दौड़ा, और चिल्लाकर बोला, "अरे नीच दुष्ट! तू इस महान पुरुष

कि समीप ऐसी धृष्टता से आ बैठा है जो सारे जगत में विख्यात हो रहा है, उस समय ज्ञात हुआ कि वह मज़हबी है, वह उसी समय अत्यन्त लज्जित होकर पृथक जा बैठा, उस चिट्ठीरसां ने उसे निकाल देने का यत्न किया, परन्तु स्वामीजी ने अत्यन्त मृदु शब्दों तथा स्नेह पूर्वक कहा, कि इससे थोड़ीसी भूल हुई परन्तु दण्ड अधिक मिल चुका है, अब इसे कुछ न कहना चाहिये, वह नेत्रों में नीर भरकर रुदन करता हुआ बोला, मैं किसी को हानि नेहीं पहुंचाता, सब से पीछे जूतियों में अलग बैठा हूं. स्वामीजी ने चिट्ठी रसां को कहा, ऐसा अत्याचार तुम को उचित नहीं, ईश्वर की सृष्टि में सब एक से हैं। तुम मुसलमान हो, प्रति दिन उपदेश सुनते हो कोई तुम्हें घृणा की दृष्टि से नहीं देखता, फिर इसके पीछे क्यों पड़े हुए हो।

६६—स्वामी जी मेरठ में प्रातःकाल नंगे शरीर बड़ा दंड धारण किये दर्या पर जाते थे, एक दिन पहरे वाला सिपाही सड़क पर खड़ा था वह एक ग्रांडील लम्बे मनुष्य को आता देखकर डर गया, उसके होशहवास उड़ गये। और वह समझा कि कोई जिन्न अथवा देव है,एक ओर हटने लगा था कि वह देव सड़क पर आने लगा, बस फिर क्या था, धड़ाम से पृथिवी पर गिर पड़ा, स्वामी जी दया करके उठाने को बढ़े परन्तु वह और घबराया, अन्त में कुछ पुरुष उसे खाट पर उठाकर थाने ले गये, चेतनता आने पर उसे विदित हुआ कि जिनको देखकर मैं भयभीत हुआ हूं वह तो बड़े महात्मा हैं,तब दर्शनों को आया और आगे को नित्य

प्रातःकाल उन्हें प्रणाम करता रहा।

१००—एक मनुष्य ने हनुमान के दर्शन किये और दण्डवत कर हाथ जोड़े, स्तुति की, स्वामी जी ने कहा—अरे! इतना समय तूने यह सब कुछ किया, परन्तु शोक वह तुम से कुछ नहीं बोला और हमसे तू बोला भी नहीं, परन्तु बिन बुलाये तुझ से बोलते हैं, उसने कहा—हनुमान का बोलना और मनुष्य नहीं समझते हैं।

स्वामी जी ने कहा—क्या हम लोगों से हनुमान डरते हैं जो तुम से गुप्त बोलते हैं।

१०१—हरिद्वार कुंभ पर जो पंडित और साधु आये, उन में से स्वामी जी ने तीन पुरुषों को योग्य समझा और तीनों को ही प्रेम भरा पत्र भेजा कि जो कुछ मैं कर रहा हूं, उसको आप सब जानते हैं कि सर्वथा सत्य है। परन्तु इतने विद्वान होते हुए, प्रसिद्ध होकर क्यों सत्य को स्पष्ट नहीं कहते। सुखदेव गुरु जी तो पत्र लाने वाले पर अप्रसन्न हुए और कहने लगे हमारे पास उसका पत्र न लाया करो, सारा जगत् उसके विरुद्ध है, विशुद्धानन्द आदि अन्य पुरुषों ने भी पत्र का उत्तर न भेजा।

१०२—एक यवन ने किसी हिन्दू को कहा, तुम बुतप्रस्त हो, स्वामी जी बोल पड़े, यह छोटा बुतप्रस्त है परन्तु तुम बड़े बुतप्रस्त हो, जो तूर पर्वत को पुजते हो, संग असवद तथा ताज़िये पूजते और मृतकों से मुरादें मांगते हो॥

(१०३) हरिद्वार में एक डिपटी साहब ने कहा, कि यह हरिद्वार और हरकी पौड़ी क्या है? (स्वामीजी) हरकी पौड़ी

नहीं, हाड की पौड़ी है. सहस्रों मन हड्डी यहां पड़ती हैं, डिपटी) हरकी पौड़ी पर ही स्नान तथा दान की क्या विशेषता है। (स्वामीजी) यह प्रथा पंडों ने चलाई है, लोग हर स्थान में स्नान करलें तो पंडे दक्षिणा कहां से लें, आपके अजमेर में भी मुजावर कहते हैं, न इधर चढ़ाओ न उधर किन्तु इन ईंटों में चढ़ाओ ख़ाजा साहब यहां ही घुसे हैं।

(१०४) हरिद्वार कुंभ पर एक दिन प्रातः काल जंगलात के कन्सरवेटर, मेरठ के कमिश्नर, सहारनपुर के कलेक्टर तथा अन्य बहुत से बड़े २ पुरुष उस खेमे के नीचे आखड़े हुए जिस में स्वामी जी व्याख्यान देते थे, उनके पूछने पर एक पुरुष ने बतलाया कि स्वामीजी ईश्वर ध्यान में हैं वह बोले क्या उनको सूचना देसकते हो? उत्तर मिला अभी नहीं, आप कुर्सियों पर बिराजें, वह बैठे रहे, जब निबट कर पधारे तो बहुत वार्तालाप हुआ, सब अंगरेज अत्यन्त प्रसन्न हुए और पुलिस का प्रबन्ध कर गये कि किसी प्रकार का कष्ट न होने पावे, यह भी कह गये, कि जो आवश्यकता हो सूचना दीजिये पूरी कर देंगे, उन्हें विदा करते हुए स्वामीजी ने कहा "शोक! आप लोग फूट के समय भारतवर्ष में आये, यदि उन्नति के समय आते तो देखते कि यहां कैसे २ शूरवीर योद्धा विद्यमान थे, फिर उनकी विद्या और बल की प्रशंसा करते।

(१०५) स्वामीजी हर समय काम में लगे रहते थे, परन्तु जब थोड़ा अवकाश मिलता तो मनुष्यों की मन्द अवस्था तथा पतन के विचार आपके मस्तिष्क में घुमते, एक

दिन आप बैठे २ लेट गये और कुछ काल पश्चात उठकर और ठंडा श्वास लेकर कहा, कि "विधवा और गऊकी आह से ही यह देश रसातल को पहुंचा"।

(१०६) विरोधी पुरुष सदैव धोखा देकर स्वामीजी के प्राण हरण की चेष्टा रखते थे, और स्वामीजी भी यह जान कर जहां तक बनता सावधान रहते थे, एक दिन हरिद्वार में दो नांगे साधू सिर पर जटाजूट आये और स्वामीजी के पास रह कर पढ़ने की इच्छा प्रगट की, स्वामीजी ने कहा कि हमारे साथ रहना नहीं होसकता, और दृष्टान्त देकर समझाया कि स्वामी शंकराचार्य्य के साथ दो जैनी शिष्य होकर रहने लगे, जिन्होंने अवसर पाकर विषयुक्त भोजन से उन्हें मार डाला।

(१०७) हरिद्वार कुंभ की समाप्ति से तीन चार दिन पूर्व एक व्याख्यान में कहा कि परभी के दिन वबा(हैजा) पड़ेगी। इसके कारण बड़े उत्तम रीति से वर्णन किये जिन्हें सुनकर सब विद्वान तथा डाक्टर भी आश्चर्य्य होते थे। अन्त में आपने कप्तानों को सम्बोधन करके कहा कि आपके डाक्टर वैद्यक से सर्वथा अनभिज्ञ हैं वह उलटा प्रजा का नाश कर रहे हैं। डेढ़ मील पर टट्टियां बनवाई हैं, वह भले चंगे यात्रियों को रोगग्रसित करती हैं, जिसे लघुशंका शौच जाना हो, उसे बहुत देरी लगती है और उसकी गर्मी मस्तिष्क में चढ़ जाती है, और जब शरीर के भीतर यह अवस्था हो तो बाहिर की अशुद्ध वायु बहुत शीघ्र ही अपना अधिकार जमा लेती है। इस प्रकार बहुतों के जीवन

आपके कानून के भेंट होरहे हैं, कृपया यात्रियों पर दया करो, सड़क से थोड़ी दूर झंडियां लगा दो, जहां यात्री शौच आदि से निपट सकें और यह जो गंगा के मैदान में भट्टे लगा कर विष्ठा को जलाते हैं, इससे भी वायु अशुद्ध होती है, अतः उचित प्रबन्ध कीजिये।

(१०८) कुछ साधु झंडे को चंवर करते थे, स्वामीजी ने कहा तुम लक्कड़ पंथी हो अविद्या के जाल में न फंसो, यदि तुम्हारे में कोई वृद्ध हो तो उसकी सेवा करो।

(१०९) एक दिन व्याख्यान में एक वृद्ध ब्राह्मण बोल पड़ा कि स्वामी तेरा गला काटलूं और अपना भी, तूने हमारी बहुत हानि करी और आजीविका नष्ट करदी, पुलिस आदि उपस्थित थी, परन्तु स्वामीजी ने कहा इसे कुछ न कहो, केवल इतना करदो कि व्याख्यान में विघ्न न डाले।

(११०) हरिद्वार कुंभ पर मणिरामजी और उनके गुरु बड़े अभिमान से पहुंच कर बोले कि स्वामीजी आप ऊंचे चौकड़ी लगाए बैठे हैं और हमारे बैठने को स्थान भी नहीं, स्वामीजी के सिर पर एक मक्खी बैठी थी, बोले, "भाई मैंने तो मक्खी को भी अपने सिर पर बैठा रक्खा है, यदि आपके लिये स्थान होता तो अवश्य यहां बैठा लेता"।

(१११) मेरठ में एक दिन स्काट साहब ने कहा— महाराज! सुना जाता है, स्वामी शंकराचार्य्य अपने आत्मा को अपने शरीर से निकाल दूसरे के शरीर में प्रविष्ट कर देते थे। स्वामीजी बोले इतना तो हम भी कर सकते हैं, कि सारी जीवन शक्ति को सारे शरीर से खींच कर एक अंग

में एकत्रित कर देवें ऐसा कि शेष भाग शरीर का निर्जीव प्रतीत हो,अभ्यास छोड़े बहुत काल हुआ फिर भी जब कहो करके दिखा सकता हूं, यह भी कहा–अपने बच्चाओं के लिये योग करने को मैंने स्वार्थ जाना है इसलिये उसे छोड़ सत्य का प्रचार करता हूं। परन्तु जब मैं मध्यम कोटीका अभ्यासी भी इतना कर सकता हूं तो एक पग आगे बढ़ने पर अन्य शरीर में आत्मा का प्रवेश कर सकना असंभव प्रतीत नहीं होता, रहा यह कि शंकराचार्य्य ने ऐसा किया कि नहीं यह ऐतिहासिक घटना है, मुझे स्वयं इस विषय में कुछ ज्ञान नहीं होसकता।

११२—मुरादाबाद में स्वामीजी ने वेद के महत्व पर व्याख्यान दिया, जिस में बहुत उत्तम उपदेश दिये, साथ ही राजा और प्रजा के कर्तव्य का वर्णन किया, कलेक्टर साहब व्याख्यान श्रवण कर रहे थे, स्वामी जी जानते थे कि इनको शिकार का बहुत व्यसन है, इसलिये शिकारादि व्यसनों का प्रबल रीति से खण्डन किया, समाप्ति पर साहब बहादुर ने स्वामी जी की बड़ी प्रशंसा की, और कहा कि जैसा स्वामी जी ने उपदेश दिया है, यदि राजा और प्रजा का ऐसा वर्ताव होता तो राजविद्रोह (ग़दर) कदापि न होता जो कुछ आपने कहा निस्संदेह सब सत्य है।

११३—मुरादाबाद में जिस दिन आर्य्य समाज की स्थापना हुई, उस दिन मोहन भोग भी अधिक बनवाया गया, परन्तु वेदी खुले स्थान पर थी, वर्षा होजाने से हवन न होसका, बहुत काल पश्चात् स्वामी जी ने कहा—

अब हवन तो थोड़ी सी सामग्री का मकान के भीतर कर दो और मोहन भोग उपस्थित सज्जनों को थोड़ा २ देदो, और कुछ पूरी कचौरी बाजार से मंगा दो। क्योंकि सब को क्षुधा सता रही हैं, परन्तु जब मोहन भोग बांटा गया तो बाज़ारी लोगों ने यह प्रसिद्ध कर दिया कि स्वामी जी ने हलवे में थूक दिया और सब ने खाया है। स्वामी जी और राज-पुरुष यह सुनकर हंसे कि मूर्खों में ऐसी ही बातें होती रहती हैं। परन्तु दूसरे लोग पंचायतें और बिरादरियां करके आर्य्यों को पृथक् करते फिरे।

११४—मुरादाबाद में सलोनो(रक्षाबंधन) के दिन बड़े २ वृद्धों को रक्षा बंधवाय देखकर स्वामीजी हंसे कि तुम वृद्धों ने क्यों रक्षा बंधन बांधा है। तुम जानते नहीं कि आज के दिन इस देश में क्या होता था, फिर उनके पूछने पर कहा—आज के दिन राजे बड़ा यज्ञ करते थे, और पाठशाला के सब विद्यार्थियों के हाथ में राजा की ओर से रक्षा बंधन बांधा जाता था कि राजपुरुष तथा प्रजा सब उनकी रक्षा करें।

शोक! अब पेट भरने के वास्ते तुम धागे बंधवाते फिरते हो!

११५—बरेली में पादरी स्काट साहब से बड़ा उत्तम शास्त्रार्थ हुआ, बीच में उपहास्ययुक्त बातें भी होजाती थीं। एकवार पादरी जी ने कहा—मैं अमुक बात स्पष्ट तो कर देता हूं परन्तु लिखी न जावे, स्वामी जी बोले जो कहोगे लिखा जायगा, तब पादरी साहब का क्लर्क बोला—स्वामी जी पादरी साहब की बात मान जाइये! उत्तर मिला आप

का काम लिखना है, सम्मति देना नहीं।

पादरी साहब बोले—स्वामी जी आपकी सी सब कहते हैं, हमारी सी एक ही कहता है तो आप रोकते हैं, स्वामी जी ने कहा—"न्यायी की सी सब कहते हैं, अन्यायी की सी कोई नहीं कहता" ॥

११६—स्वामीजी घोड़ा गाड़ी पर चढ़कर व्याख्यान देने आर्यसमाज की ओर जारहे थे। एक कुत्ता भौंकता हुआ बड़े ज़ोर से घोड़े के पीछे दौड़ा और थोड़ी दूर जाकर रह गया, स्वामीजी ने कहा इसमें इतना ही सामर्थ्य था। घोड़े के बराबर किस प्रकार आ सकता, इसी प्रकार कपोल कल्पित ग्रंथ मानने वालों का सामर्थ्य है व भी प्राचीन मत मानने वालों के संमुख किस प्रकार शास्त्रार्थ कर सकते हैं।

११७—एक दिन फर्रुखाबाद के रईस तथा आनरेरी मजिस्ट्रेट बाबू दुर्गाप्रसादजी से वार्तालाप हुआ, जब म्यूनिसिपैलिटी और उसके मैम्बरों का विषय छिड़ा तो स्वामीजी ने पूछा—"क्या आप मुकद्दमों में न्याय करते हैं? (बाबू) हां महाराज! (स्वामीजी) राजा का कर्तव्य है कि पक्षपात लेशमात्र भी न करे, और अन्याय कभी न करें" (बाबू)—महाराज! मुझ से जहां तक हो सकता है, विचार पूर्वक कार्य्य करता हूं। परन्तु मन की बात क्योंकर जान सकता हूं। (स्वामीजी)—जब तक पूर्ण विद्या और विज्ञान तथा दूसरे के मन की बात जानने की सामर्थ्य न हो किसी को न्याय करना उचित नहीं, यदि इतनी सामर्थ नहीं तो न्याय क्यों करते हो। बाबूजी निरुत्तर होगये।

११८—दानापुर में एक बाबूजी ने कहा—स्वामीजी यद्यपि आपका कथन सत्य है। परन्तु लोग न मानेंगे तो आप क्या करेंगे। स्वामीजी बोले हमारा काम इतना ही है, कि हमारे कथन को लोग सुनलें और जब उसको पूर्णतया सुन लेंगे तो वह सुई की न्याईं अंदर चुभ जायगा। निकालने से नहीं निकलेगा। यदि उनका मित्र अथवा सम्बन्धी एकान्त में पूछेगा तो स्पष्ट कहेंगे कि सत्य है।

११९—दानापुर में ठाकुरप्रसाद स्वर्णकार ने एक स्त्री के होते हुए दूसरा विवाह कर लिया था, एक दिन उसने स्वामीजी से कहा—मुझे योग की विधि बतायें, स्वामीजी बोले—"एक विवाह और करलो, फिर तुम्हारा योग ठीक हो जायगा"। यह सुनते ही वह चुप रह गया।

१२०—एक मनुष्य ने फूल तोड़ा, स्वामीजी ने कहा—"बहुत बुरा किया", उसने कहा—"क्या आपकी मोरछल से मक्खी को दुःख नहीं होता"। कहा—हिंसक प्राणियों के हटाने में तुम्हारे जैसे मनुष्यों ने बाधा डाला, ऐसे निर्बल तथा भीरू पुरुष युद्ध क्षेत्र में क्या करेंगे।

१२१—दानापुर में एक बार जोन्स साहब सौदागर कई पादरी तथा अंगरेज़ स्त्रियों सहित स्वामीजी से मिले और निवेदन किया कि कुछ उपदेश दीजिये। उत्तर मिला—हम तो नित्य कहते ही हैं, आज आप ही कुछ संभाषण करें; परन्तु निश्चय अन्त में यही हुआ, कि स्वामीजी बोलें—तब स्वामीजी उनसे क्रमशः मनवाते गये कि ईश्वरी पदार्थ मनुष्य मात्र के लिये एकसे हैं, और इसी प्रकार धर्म भी

सब के लिये एक ही है, तत्पश्चात् धर्मजिज्ञासु की कथा सुनाई कि किस प्रकार मतवादि लोग उसे अपनी २ ओर खींचते हैं और एक २ मत के विरुद्ध नौसो निनाणवे साक्षियां हैं परन्तु जो वास्तव में धर्म है जैसे सत्य का बोलना, चोरी न करना इत्यादि इस पर सब सहमत हैं। अतः सच्चा धर्म सब का वही है, जिसके विरुद्ध कोई साक्षी नहीं दे सकता। तब जोन्स साहब बोले—आप इस रीति से यह बातें वर्णन करते हैं कि उनके विरुद्ध कहते बन नहीं पड़ता, परन्तु फिर आप छूतछात क्यों करते हैं हमारे साथ खा क्यों नहीं लेते। स्वामीजी ने फ़रमाया हम साथ खाने न खाने में धर्म नहीं मानते, यह तो लोक चाल है। क्या आप अपनी कन्या का बिवाह देशी ईसाई से कर सकते हैं, और करें तो इससे प्रसन्न होंगे। पादरी "नहीं"। स्वामी--धर्म के विचार से नहीं करते अथवा रिवाज से। पादरी--अपनी बिरादरी के रिवाज से। स्वामीजी बस हम भी खाने में लोकाचार के कारण संकोच करते हैं परन्तु धर्म मान कर नहीं।

१२२—दानापुर में एक मनुष्य दुर्गा अवस्थी बिरादरी के भय से लैकचर में न जाता था, और जाता तो चोरों की न्यांई बाहर खड़ा रहकर सुनता और फिर चला जाता, उसकी प्रबल इच्छा थी कि स्वामीजी के मुख से कुछ सुनूं। एक दिन उसे पता लगा कि स्वामीजी प्रातःकाल ही निकल जाया करते हैं, तब उसने ऐसा किया कि एक रात पहिले ही मार्ग में जाकर बैठ रहा, जब स्वामीजी नहर के किनारे २

लौट कर आते थे, यह उनके पीछे २ हो लिया । स्वामीजी ने पूछा-तुम कौन हो और क्या चाहते हो । उसने अपनी सारी वृथा सुनाई कि मैं बिरादरी के भय से व्याख्यान में नहीं आता, आप से वार्ता करना चाहता हूं । इतने में स्वामीजी बंगले पर पहुंच गये । और कहा—तुम्हारा प्रयोजन क्या है, वह बोला महाराज मेरी यही श्रद्धा है कि आप अपने चरण को मेरे मस्तक पर लगा दीजिये । स्वामीजी ने कहा—इसका क्या फल होगा । और बात हो तो कहो नहीं तो हम जाते हैं । फिर किसी समय आकर पूछ लेना । उसने कहा—अवश्य ही किसी समय आऊंगा, परन्तु इस समय मेरी यही श्रद्धा है, जब बहुत आग्रह देखा, तो स्वामीजी ने कहा—इससे होगा तो कुछ नहीं । परन्तु यदि तेरी यही इच्छा है तो ले और अपने पांव का अंगूठा उसके मस्तक पर लगा दिया ।

१२३—बनारस में एक दिन विदुषी बाजीबढ़ नगरी ने करनल अलकाट, मैडम ब्लैवटसकी और अन्य अंगरेज़ पुरुष स्त्रियों के सामने कहा—कि महाराज ! विरोध से आपको लोग बुरा कहते हैं, स्वामीजी ने कहा—हमको इससे सहनशीलता आती है, उनके चमार कहने से हम चमार थोड़े ही होगये, हमारा काम उपदेश करना है । और संसार का उपकार करना, न कि उनकी बातों पर जाना ।

१२४—काशी में बाबू पृथ्वीसिंहजी और स्वामी विशुद्धानन्दजी की बातचीत हुई तो स्वामीजी ने माना कि सचमुच पं० दयानन्द का वेद भाष्य सत्यार्थ दर्शाने के

कारण मानने के योग्य है, परन्तु लोगों के सामने मैं ऐसा नहीं कह सकता यदि कहूं तो सारी प्रतिष्ठा जाती रहे और नशे पानी में त्रुटि हो, इसी प्रकार स्वामी विशुद्धानन्द और बाल शास्त्री की जब एकान्त में बात होती तो कहते, जो कुछ दयानन्द कहता है, सब सत्य है, परन्तु करें क्या, हम भी ऐसा ही कहें तो लोग हम को छोड़दें और हम से वैर रखें। फिर हमारी आजीविका कैसे चले।

१२५—एक दिन काशी के विद्वान एक पं० को १०००) (एक हज़ार)रुपये का ग्राम संकल्प में मिला। उसी दिन आर्य्य दर्पण के सम्पादक मुंशी बख़्तावरसिंह से उनका मेल हुआ तो मुंशीजी ने उनसे स्वामीजी के विषय में उनकी सम्मति पूछी। पं० जी बोले—"स्वामीजी कहते तो हैं सत्य परन्तु हम क्या करें इसको (पेट खोलकर और उसकी ओर इशारा करके) देखो अभी एक जायदाद मिली है, आनन्द करते हैं, स्वामीजी की तरह कहने लगें तो फूटी कौड़ी भी न मिले, फिर घर बैठे कैसे जीविका चले, भाई! हमको पेट सच नहीं कहने देता।

१२६—फर्रुख़ाबाद के जाइंट मैजिस्ट्रेट ने कैम्प फ़तेगढ़ में योग के विषय में प्रश्न किया, स्वामीजी ने इसकी व्याख्या की और कहा—आप लोग जो मांस मदिरा का सेवन करने वाले हैं, योग नहीं कर सकते! यदि आप करना चाहें तो रोटी और मूंग की दाल खानी चाहिये।

१२७—मैनपुरी में स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में भारतवर्ष के प्राचीन काल का अच्छे प्रकार चित्र खींचा,

कलेक्टर तथा जज आदि बहुत अंगरेज भी आते थे, जब व्याख्यान हो चुके, तो एक मुसलमान मिरज़ा आबदअली बेग ने बहुत धन्यवाद दिया और कहा—"यह जो कहते हैं, कि दूर देशों के पुरुष यहां पढ़ने आते थे, यह तब ही था जब महाराज जैसे महात्मा लोग थे, अब कौन आ सकता है"।

१२८—मिरज़ा आबदअली बेग प्रसिद्ध न्यैयायक थे, वह स्वामीजी से कई बार एकान्त में मिलते रहे, प्रथम वार आध घंटा पीछे वह यह कहते हुए निकले कि "बस न्याय की स्वामीजी ने हद्द कर दी।

एक महाशय ने कहा—"कुछ बतायें तो", तब बोले—"जो प्रसन्नता और आनन्द मुझे आज की वार्तालाप में आया, पहिले कभी न आया था, मैं तो उनसे बात भी नहीं कर सकता, जो पूछता हूं, उसी का युक्ति युक्त उत्तर देते हैं"।

१२९—फ़ीरोज़ाबाद के स्टेशन पर स्वामीजी को सैकंड क्लास में बैठा देखकर स्टेशन मास्टर समझा कि यह साधु भूल कर यहां चढ़ा है, आगे पकड़ा जायगा। इसलिये एक बाबू से कहलवाया कि वह गाड़ी से निकल जावे। स्वामीजी हंस पड़े, तब स्टेशन मास्टर क्रोध करके बोला—हंसता क्यों है, गाड़ी से बाहर होजा! यह कहकर चल दिया। स्वामीजी ने पर्वा न की, इतने में स्टेशन मास्टर को किसी ने कहा—इस गाड़ी पर बड़े महात्मा पं० जाते हैं। जब पूछा कहां हैं? तो उसने स्वामीजी की ओर हाथ उठाया। यह सुनते ही वह बाबू स्वामीजी के पास आकर क्षमा मांगने लगा, परन्तु स्वामीजी ने कहा—तुम ने हम से कुछ

नहीं कहा, हम ऐसी बातों पर बुरा नहीं मनाते।

१३०—डेरादून जाते हुए सहारनपुर स्टेशन पर स्वामीजी को कुछ पुरुष मिले, एक ज्योतिषी ने कहा—मैं प्रश्नों के उत्तर देता हूं, स्वामीजी बोले—उत्तर क्या देता है, दैवयोग से कोई न कोई बात तो सच्ची हो ही सकती है। ज्योतिष तुम्हारा जब सच्चा हो कि १०० प्रश्नों का एक साथ उत्तर दो, और वह सब सच्चे हों, यदि कुछ सत्य और कुछ असत्य हो तो ज्योतिष तो उड़ गया, क्योंकि गणित के नियम सदा सत्य होते हैं।

१३१—आगरे में स्वामीजी एक बड़ा गिरजा देखने गये एक पुरुष ने कहा—पगड़ी उतार लीजिये। स्वामीजी बोले—हमारी सभ्यता में पगड़ी का पहिरना सन्मान का चिह्न है यदि चाहो तो जूती उतार कर जावें, उत्तर मिला, जूता और पगड़ी दोनों उतार कर जाइये। स्वामीजी ने कहा—"ख़ैर! हम बाहिर से नज़र मार लेते हैं। सो वह बरामदे से ही मूर्तियां देखकर चले आये"।

१३२—एक वार अंगरेज़ी के किसी देशी विद्वान ने योग और उसकी सिद्धियों के विषय में प्रश्न किया और कहा—मैं इसे सर्वथा असत्य मानता हूं। स्वामीजी ने फ़रमाया क्या तुम समझते हो, कि हम इतना भारी काम बिना योग के ही कर रहे हैं। इन शब्दों से उस के संशय निवृत्त होगये और वह आर्य्यसमाज का प्रेमी बन गया।

१३३—स्वामीजी रायपुर राज में महाराजा के महिमान थे, उन दिनों राणीजी का देहान्त होगया, एक प्रतिष्ठित

पुरुष ने कहा—कि आप भी महाराज के पास शोक प्रगट कर आवें। कहा–कि "भाई! मैं ने तो सब संसार से सम्बन्ध त्याग दिया है, किसी का मरना और जीना मेरे वास्ते एक बराबर है, मैं न शोक करता हूं न हर्ष, अपना तो केवल धर्म और उपदेश से काम है, और बस"।

१३४—उदयपुर में स्वामीजी ने महाराज को मनुस्मृति पढ़ाते हुए कहा—स्वामी धर्मानुकूल आज्ञा देवे तो पालन करनी चाहिये अन्यथा नहीं। एक रईस बोले—यह हमारे राजा हैं यदि आज्ञा देवें और हम अधर्म समझ कर न मानें तो यह हमारी जागीर जबत करलें। स्वामीजी ने कहा—कुछ परवाह नहीं, धर्म के लिये धन अथवा भूमि चली जाय तो अधर्म के खाने और अधर्म करने से मांगकर खाना अच्छा है।

१३५—उदयपुर में स्वामीजी बात करते थे, एक ईसाई बीच में बात काटकर बार २ कहता रहा, "मेरा प्रश्न सुनो", स्वामीजी ने कहा—बात होले तब बोलना, परन्तु वह अपनी ही कहता गया। तब स्वामीजी ने उपस्थित सज्जनों को कहा—आप कुछ काल ठहरें और उसे कहा बोल—तेरा क्या प्रश्न है? उसने कहा—"हम कहां से आये हैं? कहां हैं? और कहां जांयगे"? स्वामीजी बोले—"सुनो तुम पोल, से आये हो, पोल में हो और पोल में जाओगे"। वह कहने लगा—हैं, हैं!। स्वामीजी ने कहा—किनारे बैठकर सोच तेरा उत्तर मिल गया।

१३६—उदयपुर में स्वामीजी ने बड़ा भारी यज्ञ कई दिनों तक कराया और आज्ञा दी कि नित्य प्रति हवन हो।

राज्याधिकारियों ने उत्साह से इसका पालन किया। हवन होकर कुंड सारे राज महिलों में घुमाया जाता था, जब तक महाराज सज्जनसिंह जीते रहे नित्य प्रति हवन होता रहा। परन्तु जब उनका देहान्त होगया, और महाराज फ़तेसिंह गद्दी पर बैठे तब लोगों ने उन्हें कहा कि वह हवन करते थे, इसलिये कालवश होगये, तब से हवन बन्द होगया।

१३७—एक वकील साहब वाटिका में स्वामीजी से बातें करते थे, बीच ही में कहने लगे कि यह जो अच्छे २ घरानों की सुन्दर रूपवति स्त्रियां वैश्या बन जाती हैं इसका क्या कारण है, स्वामीजी ने कहा—हमें ऐसे भड़वेपन की बातें अच्छी नहीं लगतीं किसी और से पूछना।

१३८—मूर्ति पूजकों को स्वामीजी कहते थे, कि तुम लोग शक्तिमान ईश्वर की ओर पीठ कर के मूर्ति पूजते हो, वास्तव में तुम ईश्वर को कुछ नहीं समझते, किन्तु उस की निन्दा करते हो।

१३९—जोधपुर में फ़ैज़ुल्लाखां राज कर्मचारी ने कहा—कि स्वामीजी यदि मुसलमानों का राज होता तो आपको लोग ज़िन्दा न छोड़ते और आप ऐसे व्याख्यान न कर सकते। स्वामीजी ने कहा—मैं भी उस अवस्था में वैसी ही कार्य्यवाही करता, अर्थात् राजपूतों की गर्दन थाप देता और वह तुम्हारी अच्छी प्रकार गत बनाते।

१४०—यह देखकर कि राजा लोग वेश्या रखते हैं, स्वामीजी ने कहा—हिन्दू राजों के दुराचार से ऐसी दुर्दशा है कि वह कब की नष्ट भ्रष्ट होचुकी होतीं जो कुछ इनका

बाकी है, केवल उनकी राणियों के पतिव्रत धर्म की सत्ता है। राजों के कुकर्म पर होता तो कब का बेड़ा डूब जाता।

१४१—एक पुरुष ने कहा—स्वामीजी आप तो ऋषि हैं। बोले—"ऋषियों के अभाव में मुझे ऋषि कह रहे हो, अन्यथा यदि मैं कणाद ऋषि के समय में होता तो उस काल के विद्वानों में भी मेरी योजना कठिन थी"।

१४२—एक विद्यार्थी ने कहा—महाराज ! एक पं० मुझ से उलझ कर आपकी निन्दा करने लगा, तब मैंने भी उसको वैसे ही उत्तर दिये। स्वामीजी क्रोधित होकर बोले—तेरा यह काम किसी प्रशंसा के योग्य नहीं हो सकता, जब यह जगत् ब्रह्मा विष्णु आदि की निन्दा से नहीं चूका तो मैं क्या वस्तु हूं, उसकी निन्दा तू सुन न सका, तेरे जैसे पुरुष से कभी जगत् भलाई की आशा नहीं हो सकती।

१४३—स्वामीजी जब कभी सुनते कि हमारा अमुक पं० गया मैं मूंछ मंड़वाकर पिंड़ परदान कर आया तो तुरन्त समाजों को सूचना देते कि यह पूरा पोप है, इसका उपदेश नहीं सुनना, असर न करेगा।

१४४—स्वामीजी की इच्छा थी कि भारत के सर्व प्रान्तों में प्रचार करके विलायत में धर्म का डंका बजावे। उन्होंने अंगरेज़ी पढ़ना भी आरम्भ किया था परन्तु शोक ! मृत्यु ने सारी इच्छाओं को बीच में ही रखा।

१४५—बज़ीराबाद में विपक्षियों ने ईंटे फैंकीं तो एक स्वामीजी के माथे पर लगी, और कुछ रुधिर निकला। परन्तु उन्होंने इस पर तनिक भी ध्यान न दिया न किसी

को करने दिया, रूमाल से माथे को पूंछा और अपने कार्य्य पर आरूढ़ रहे।

१४६—बम्बई में एक संन्यासी से मूर्ति विषय पर शास्त्रार्थ हुआ वह अपने पक्ष को प्रबल जानता और उसके विरुद्ध मानता नहीं था। परन्तु स्वामी ने उसे यह कहकर चुप करा दिया, कि मैं जैसा कहता हूं, उसके अनुकूल करता भी हूं तुम मूर्ति पूजा सिद्ध करते हो तो पाषाण पूजते क्यों नहीं।

१४७—स्वामीजी स्त्री-शिक्षा का प्रचार करते तो कहते लोग इस पर भान्ति २ की शंका उठाते हैं, परन्तु इनकी विचित्र गति है, जो बात इनमें एक बार चल जाय फिर उसका छूटना कठिन है इसी प्रकार एक बार स्त्री शिक्षा का काम चल पड़ा तो फिर कोई रोक न होगी।

१४८—स्वामी जी ने प्रचार का दौरा आरम्भ करने से पूर्व अपने मन को भलेप्रकार उद्यत किया कि वह सारी आपत्तियों तथा विपत्तियों के विरोध को सहन करे। कुटिया के सामने वृक्ष था उसे पूर्वपक्षी और अपने आपको उत्तर पक्षी बनाया और वैदिक धर्म के प्रतिपादन में जो आपत्तियां तथा संशय होसकते हैं, उनका निवारण किया। वृक्ष एक आपत्ति का प्रश्न उपस्थित करता था, और स्वामी जी उसका खंडन करते थे। इसी प्रकार मन को पक्का करके धर्म के युद्धक्षेत्र में आये थे।

द्वितीय खण्ड

देवासुर संग्राम

पहिला सर्ग

यज्ञ में विघ्न।

जगत युद्धक्षेत्र है, यहां का प्रत्येकवासी बड़ा योद्धा है, देव और असुर दो दल प्रत्येक मनुष्य, देश तथा काल में प्रत्येक मनुष्य को दृष्टिगोचर होते हैं। वेद में इसका स्थूल दृश्य सूर्य्य तथा मेघ के युद्ध में दिखाया है, जो अन्तरिक्ष में जारी ही रहता है। बादल सूर्य्य के प्रकाश को छिपाता, घटाएं बांध २ कर उसकी रश्मियों को पृथिवी पर पहुंचने से हटाता और अंधकार फैलाता है, सूर्य्य अपनी तीक्ष्ण किरणों के बाणों से उसे बींधता और छिन्न भिन्न कर जल के रूप में उसे गिराता और पृथिवी पर प्रकाश द्वारा अपना राज्य जमाता है॥

राजा के प्रबन्ध में अन्याई तथा दुष्ट लोग और हिंसक पशु बाधा डाल रहे हैं, उनसे प्रजा को बचाने के लिये राजा अपने न्याय नियम तथा सेना आदि से दण्ड देकर उनका नाश करता है॥

गले सड़े अथवा दुर्गंधयुक्त पदार्थ और मल आदि शरीर की आरोग्यता तथा बल पर आक्रमण कर रहे हैं, प्रतिक्षण वह अन्न जलादि को बिगाड़ने में लगे हैं। सूर्य्य अपनी किरणों तथा अग्नि अपनी प्रज्वलित लाटों से उन्हें छिन्न भिन्न करके अन्तरिक्ष में कहीं का कहीं भगा कर पहुंचा रही है, और उनके स्थान में सुगन्धीयुक्त, रोगनाशक तथा पुष्टिकारक पदार्थों के प्रमाणुओं की स्थापना कर रही है॥

गुरु सत्य उपदेश से असत्य के बंधन तोड़ने में लगा है, आचार्य्य विद्यादान से शिष्य की अविद्या का नाश कर रहा है। सारांश यह है कि भले और बुरे का सत्य और असत्य का संग्राम जहां चाहो देखलो॥

वाह्य जगत में ही नहीं, प्रत्येक मनुष्य के हृदय में दो दल काम कर रहे हैं। जन्म जन्मान्तरों में जो अच्छे संस्कार धर्म के एकत्रित हुए, गुरु तथा अन्य सभ्य जनों के सत्संग से जो प्राप्त किया, ब्रह्मचर्यादि तप से, जो गुण कर्म का अभ्यास किया यह सब अच्छी वृतियों का दल एक ओर है, परन्तु वाह्य विषय रूप, रस, गंध आदि नेत्र, रसना, नासिका आदि इन्द्रियों के द्वारों से भीतर आक्रमण करते हैं। उन में आसक्त हुआ मन (नफसे इम्मारा) काम, क्रोध आदि के संस्कारों की सेना को लिये दूसरी ओर है। यह आसुरी सेना कई मनुष्यों को अत्यन्त पतन तक भी पहुंचा देती है, परन्तु अन्त में ज्ञान के खड्ग से आत्मा उसका दलन कर देता है।

किसी भी विषय को विचारें तो एक ख्याल उठता है, दूसरा उसका खंडन करता है। फिर और युक्ति पूर्व विचार के पक्ष में सूझती है, यह सब संग्राम ही तो है।

कोई मनुष्य इस युद्ध तथा प्रयत्न से बच नहीं सकता, अत्यन्त भूल है उनकी जो सुखार्थ के ही स्वप्न लेते रहते हैं। यह आलस्य, यह निकम्मापन, केवल आसुरी दल को ही पुष्टी देता है, और वह निःशंक हमारे सुख सम्पत का नाश करता है। अतः पुरुषार्थ हीन होना छोड़ो, युद्धक्षेत्र में कटिबद्ध होकर डट जाओ! संग्राम से बचना न तो संभव है, न उचित है। हां, कर्तव्य है तो यह कि देव दल में सम्मिलित होकर आसुरी संप्रदाय का ताड़न अपना उद्देश्य बनाओ, यही मुख्य शिक्षा ऋषि दयानन्द ने अपने जीवन में आपके सन्मुख रक्खी, उसके वेद उपदेश रूपी प्रकाश को रोकने के लिये मतवादियों ने कितने विघ्न डाले। ऋषि ने बहुतेरा समझाया कि सत्य को सुन कर :—

हौसला दिल में रखो सहने का।
क्यों बुरा मानते हो कहने का॥
सत्य ही सत्यवादी कहते हैं॥

परन्तु कौन सुनता था—लोगों ने मिथ्या बातें उड़ाई, बड़ों छोटों को उसे मिलने से रोका, उसकी सुनने से रोका उसकी सहायया करने से रोका, उसको ठहराने से रोका, उसको काम करने से रोका, उसके स्वांग बनाये, उसे कटु बचन कहे, उस पर ईंटे फेंकीं, उसे पत्थर मारे। परन्तु

क्या ऐसे किसी भी विघ्न से सत्य का प्रचार बन्द हुआ ? नहीं कदापि नहीं।

पाठक गण ! निम्न लिखित घटनाओं को विचार पूर्वक पड़ताल करो।

उसके पश्चात् ऋषि की कृतकार्य्यता को सामने रखो, और फिर बताओ, कि देवबल का क्या महात्म्य है।

१--महाराज रामसिंह जी को मिलने न दिया।

जयपुराधीश शैवमत के अनुयायी थे, और वैष्णव संप्रदाय के खंडन में शास्त्रार्थ करा रहे थे। उनके कर्मचारी बक्सीराम व्यास आदि की इच्छा थी कि स्वामी जैसा विद्वान् हमारे पक्ष में होजावे तो बड़ी सफलता हो, यह विचार लेकर व्यास जी स्वयं पहुंचे, जब स्वामी जी ने न माना तो कई बड़े पुरुषों द्वारा यत्न किया। अन्त में महाराज से मिलने के लिये स्वामीजी को लाये और उन्हें राजराजेश्वर के मंदिर में ठहराया, स्वामी जी ने मूर्ति को नमस्कार करना ही न था, सो न किया, जब महाराज को सूचना देने व्यास जी गये तो किसी ने कह दिया कि इन्हें दाख़ल कराया तो तुम्हारा सारा कार्य्य बिगड़ जायगा। यह तो सर्व प्रकार की मूर्ति को उखेड़ना चाहते हैं। व्यास जी ने भी उनके मूर्ति को नमस्कार न करने से ऐसा ही निश्चय कर लिया, बस फिर क्या था बिना सूचना दिये ही आकर कह दिया, कि महाराज बाहिर गये हैं, फिर पधारिये।

स्वामी जी असली बात को ताड़ गये और यह कह कर चले आये कि हमें महाराज से क्या प्रयोजन है । इसके पश्चात् गवर्नर जनरल के एजेंट स्वामी जी से मिले, तो उन पर बड़ा प्रभाव पड़ा । और महाराज रामसिंह वाली घटना सुनकर उन्हें बहुत शोक हुआ, यहां तक कि उन्होंने महाराज को लिखा, शोक ! ऐसे वेदवक्ता विद्वान् से आपने बात न की, महाराज ने इस पत्र को पढ़ा तो बहुत पश्चाताप हुआ, और उन्होंने अचरोल वाले ठाकुर रणजीतसिंहजी से बारंबार निवेदन किया कि जैसे हो स्वामी जी से मिलाओ, उनका मुझे पूर्व ज्ञान न था सो स्वामी जी अजमेर आये तो ठाकुर ने महाराज को सूचना दी, महाराज के भेजे व्यास बक्सीराम ने आकर निवेदन किया, कि स्वामी जी आप महिलों में पधारें महाराज दर्शन करना चाहते हैं । (स्वामी) व्यास जी आप जानते हैं, मैं महिलों में जाने की कुछ भी इच्छा नहीं रखता यदि संभाषण करना हो तो किसी समय महाराज यहां ही पधारें । यह उत्तर सुनकर महाराज ने फिर ठाकुर जी पर ज़ोर दिया, और उन्होंने बहुत प्रतिष्ठित पुरुषों के साथ स्वामी जी से बलपूर्वक प्रार्थना की, तब स्वामी जी ने स्वीकार किया और महिलों में पधारे । परन्तु हुआ फिर भी वही,एक चेले ने आकरकहा कि महाराज रणवास में पधार गये हैं, अभी आना न होगा,स्वामी जी जान गये कि स्वार्थी किस प्रकार अत्याचार करते हैं । सब लोग तुरन्त ही चले आये, इस घटना से स्पष्ट है कि विपत्ति लोग राजों तक को वश म करके सत्य के प्रचार में कितने बाधक होते थे ।

२—कोतवाल को गांठ कर विघ्न डाला।

कानपुर में प्रेट के मैदान में बाबू क्षेत्रनाथ वकील ने शामियाना लगवाया, और स्वामी जी के व्याख्यान की डौंडी पिटवादी, कोतवाल ने जो विपक्षियों से मिल रहा था, पहिले ही आकर कहा कि मजिस्ट्रेट को सूचना दिये बिना आपने डौंडी कैसे पिटवाई, बलवा हुआ तो कौन प्रबन्ध करेगा(क्षेत्रनाथ) आप (कोतवाल) मैं प्रबन्ध तो पीछे करूंगा, पहिले साहिब को सूचना देता हूं। यह कहते ही घोड़ा दौड़ा साहिब की ओर गया, बाबू जी भी पीछे गये, परन्तु साहिब उन्हें पहिले मिला, क्योंकि वह उन दिनों फौजदारी दफ्तर के मुख्य अधिकारी थे, जब अंग्रेजी में सब कुछ बताया गया तो साहिब ने कहा, "हमने सुना हुआ है। दयानन्द बड़ा विद्वान हैं रिपोर्ट देने की कुछ आवश्यकता नहीं, अवश्य उनका लैक्चर कराओ, केवल इतना कह देना कि ज़रा नर्म बोलें"—साथ ही कोतवाल को आज्ञा की कि शीघ्र जाकर प्रबन्ध करो! स्वामीजी का व्याख्यान होने लगा, तो विरोधियों ने उनके निकट ही शामियाना गाड़कर मोहन गिर से ऐसे २ वचन कहलाये कि स्वामी जी झूठा है। अंग्रेजों ने भेजा है, किरानी करने आया है इत्यादि, इसके अतिरिक्त ईंटें फैंकीं एक पत्थर तो स्वामी जी के निकट ही पड़ा, तब प्रतिष्ठित पुरुष स्वामी जी को अपने साथ लेगये और कोतवाल की शरारत जानकर व्याख्यान बन्द कर दिया।

३—स्वांग बनाकर मान हानि की।

पूना में स्वामी जी ने १५ अति उत्तम प्रभावशाली व्याख्यान दिये, जिन से सर्व साधारण के विचारों में विचित्र प्रकार का परिवर्तन होने लगा और अन्त में बहुत से मनुष्यों की रुचि वैदिक धर्म्म की ओर होगई। स्वामी जी की यहां बड़ी मान प्रतिष्ठा हुई। एक दिन उन्हें हाथी पर बिठाकर नगर में फिराया गया। यह दृश्य स्वार्थियों के हृदयों को तीर की न्याईं बींध गया, वह आपे से बाहिर होगए, और मन्सूबे बनाने लगे, यहां तक कि दो तीन निर्धन तथा नीच पुरुषों को आगे किया, गधे का स्वांग बना उसे बाज़ार में फिराया, अपने जाने उन्हों ने इस कार्य्यवाही से स्वामी जी का मान घटाना चाहा। परन्तु कराली अपनी दुर्गति, उन पर अभियोग चल पड़ा और जो दो मूर्ख अगुआ बने थे, उन्हें ६ और ९ मास का कारागार मिला और शेष पुरुष खुशामदें और मिन्नतें करते, सिफ़ारशें कराते, और क्षमा प्रार्थी होते फिरे।

४—पहिले मन्दरों को गिरा दीजे।

दिल्ली दरबार के अवसर पर महाराज जम्बू (कश्मीर) के राज्याधिकारी बाबू नीलाम्बरजी तथा दीवान अनन्तराम जी स्वामीजी से मिले और उन्होंने परस्पर निश्चय किया कि महाराज से स्वामीजी को मिलाया जावे, बहुधा मनुष्यों का विचार था कि उन्हें महाराज ने स्वयं इसी प्रयोजन के

लिये भेजा था। स्वामीजी ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार किया परन्तु पंडितों के बहकाने पर महाराज का विचार स्थिर न रहा और यह मेल न हो सका। इसके पश्चात जब स्वामीजी पंजाब में आए तो महाराज ने फिर स्वामीजी को निमन्त्रण देना चाहा, परन्तु पंडितों ने कहा कि उनको बुलाना ही है तो पहिले मन्दरों को गिरा दीजियेगा। पं० गणेशदत्तजी शास्त्री धर्म्म शास्त्र के जज (Judge) थे उनके विचार कुछ काल पश्चात् बदल गए तब आप कहते थे कि शोक! हम लोगों ने दोनों वार महाराज को रोक दिया।

५--शोक! एक मत न होगए।

अनपढ तथा स्वार्थी पुरुष तो स्वामीजी के सार्वभौमिक मिशन में बाधा डालते ही रहे, परन्तु पढ़े लिखे तथा प्रसिद्ध परोपकारी सज्जन भी कई विशेष कारणों से मनुष्य मात्र में सत्य धर्म्म का प्रचार होने में रोक बनते रहे, दिल्ली दरबार के अवसर पर स्वामीजी ने सारे प्रसिद्ध धार्मिक लीडरों का एक अधिवेशन (जोड़ मेल) कराया; मुन्शी कन्हैयालाल अलखधारी, बाबू नवीनचन्द्र राय, बाबू केशव चन्द्रसेन, मुन्शी इन्द्रमुन, आनरेबल,सय्यद अहमदखां, बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामुण तथा स्वामीजी सम्मिलित हुए स्वामी जी ने कहा कि हम लोग सब एक मत होजावें और एक ही रीति से देश का सुधार करें तो आशा है कि देश, सुधर सकता है, इसके साथ ही भले प्रकार सिद्ध किया, कि वेद

सारे भूगोल के लिये सांझे और सब से सच्चे तथा युक्ति और तर्क के अनुकूल हैं, और बहुत बल पूर्वक एक मत होने के विषय में समझाया। परन्तु शोक! बहुत वार्तालाप होने तथा लगभग सारी बातें सत्य मान लेने के पश्चात भी हमारे मुखिया पुरुष सहमत न हो सके।

६--निवास आदि के लिये स्थान न लेने दिया।

बीसियों स्थानों में विरोधी जन यहां तक ओछापन तथा तुच्छता प्रगट करते कि जिस स्थान में स्वामीजी ठहरते अथवा व्याख्यान देते, यह उसके स्वामी को प्रेरना करते और बहुत बल देते कि स्वामी को निकाल दो, अथवा उसके व्याख्यान बन्द करदो। सहारनपुर में पहिले तो चित्र गुप्त के मन्दर से जवाब दिलाया गया, फिर जब राय कन्हैयालाल के शिवालय में व्याख्यान हुए तो यहां भी ब्राह्मणों और पुजारियों ने मालिक को बहकाया कि ऐसे मकान में स्वामी का ठहरना उचित नहीं। प्रथम तो उसने किसी की न मानी परन्तु एक दिन श्रीमती मंगला धर्म्म पत्नी राय कन्हैयालाल वहां आई; तो स्वामीजी ने अपने नियमानुसार उस स्त्री की ओर ध्यान न किया जिसे उसने बहुत बुरा मनाया, उधर ब्राह्मणों ने उसे बहुत तंग किया तब उसने लखपतराय ब्राह्मण को भेजा कि स्वामी को चला जाने को कहदो; उसने बड़ी नम्रता तथा सभ्यता से निवेदन किया कि मुझे लोग बहुत तंग करते हैं, यह मंदर है और आप मूर्ति पूजा का

खंडन करते हैं, इसी से लोग मेरे पीछे पड़े हैं आपको कष्ट न हो तो किसी अन्य स्थान का प्रबन्ध करलें । स्वामीजी तुरन्त ही असबाब उठवा राम बाग़ में आ विराजे ।

लाहौर में भी ऐसा ही हुआ, स्वामी जी दीवान रत्नचन्द की बाटिका में निवास करते थे पहिले तो ब्राह्मण लोग तथा उनके चेले चांटे लोगों को व्याख्यान सुनने से रोकते रहे, फिर स्वयं प्रथक् स्थान पर उपदेश का प्रबन्ध करके उपस्थिती घटाने का यत्न करते रहे इस से भी कुछ न बना तो दीवान रत्नचन्द के पुत्र दीवान भगवानदास को उकसाने लगे कि स्वामी मूर्ति का खंडन और ब्राह्मण तथा देवताओं की निन्दा करता है इस लिये उसे निकाल दीजे, दीवानजी ने मान लिया और स्वामी जी के हितैषी सज्जन परस्पर विचार करके उन्हें डाक्टर रहीम खां की कोठी में ले गए ॥

७—बज़ीराबाद में विपक्षियों का अत्याचार ।

बज़ीराबाद में बड़ेजन समुदाय की उपस्थिति में स्वामी जी व्याख्यान दे रहे थे, प्रभाव अति उत्तम पड़ रहा था कि एक पुरुष झुंझलाकर उठा और चीख़ मार कर बोला, कि "जो व्याख्यान सुनेगा हिन्दु का बीज न होगा" ॥

इस पर ब्राह्मण तथा उनके अनुगामी तो चले गए परन्तु फिर भी जन समुदाय बड़ी संख्या में डटा रहा । यहां के प्रसिद्ध ब्राह्मण तो स्वामीजी का आगमन सुनते ही नगर छोड़कर भाग गए थे । तथापि लोगों ने १००) मुद्रिका पर एक वासुदेव नाम पंडित को मनाया, उस ने सिर पर लंबे

बाल रखे थे, पागल सा प्रतीत होता था और भीख मांगा करता था, शास्त्रार्य के समय जन संख्या और भी अधिक हो गई और यद्यपि विचार बहुत होता रहा, तथापि पुलिस का प्रबन्ध न होसका, परिणाम यह हुआ कि जब वासुदेव निग्रहस्थान में आगया अर्थात् बारंबार कहने पर भी असली मंत्र पेश न करसका तो विरोधी लोग कोलाहल तथा दंगे की सोचने लगे। इतने में एक १०, १२ वर्ष का बालक छी: छी: ! करता हुआ सुनाई दिया, स्वामी जी ने कहा, अनुचित चेष्टा करता है, इसे चुपकरा दो, ला० लद्धाराम साहनी इंजिनियर ने उसे एक दो छड़ी मारीं अथवा उसे चुपकराने को केवल छड़ी दिखाई, बस फिर क्या था विपक्षियों को बहाना मिल गया, उन्होंने झट स्वामी जी तथा इंजिनियर साहब पर हल्ला बोल दिया, परन्तु वज़ीराबाद तथा जेहलम के आर्य्य समाजियों ने उनके आक्रमणों को रोका और दोनों महानुभावों को बचाया, निवास स्थान समीप ही था इस लिये पुस्तक संभाल सब सुरक्षित वहां पहुंच गए, लोगों ने ईंटें फैंकीं, पत्थर मारे, परन्तु यह द्वार बंद किये बैठे रहे, स्वामी जी का क्लर्क विहारी लाल उन्हें समझाने गया तो लोगों ने उसे बहुत मारा, जब स्वामी जी को यह ज्ञात हुआ वह लाठी लिये बाहिर निकले और बड़ी गर्जती हुई आवाज़ से ज़ोर से ललकार मारी जिस पर सब भाग ते बने ॥

८--एक दिन ईंटों के स्थान में पुष्प वर्षा होगी।

अमृतसर में ला० गागरमल रईस के भाई स्वामी जी से वार्तालाप करते थे, किसी विषय में स्वामी जी ने उन्हें कह दिया कि "तुमको क्या ख़बर है," इतने से वह अप्रसन्न हो गए और आकर हिन्दू सभा में कहा—"मैं स्वामी के पास गया था इसका क्या प्रायश्चित है," इसके अतिरिक्त शास्त्रार्थ के लिये बहुत विचार होते रहे, परन्तु बना कुछ नहीं। स्वामी जी अपने नियमानुसार चैलेंज देते रहे, कोई समझ में न आया तो चलने की तय्यारी करने लगे, तब विपक्षियों ने कहना आरम्भ किया कि हम शास्त्रार्थ करेंगे। इस पर समाज ने पुनः चैलेंज दिया कि जो आता है आए और नियम निश्चय करले, परन्तु विपक्षियों ने क्या किया कि स्वयं ही स्थान नियत कर विज्ञापन दे दिया और कई नियम लिख दिये, स्थान ऐसा लिखा जहां कोई जाने न दे और इस पर तुर्रा यह कि स्थान नियत तो किया आप और प्रबन्ध की जिम्मेवारी लिख दी समाज की, इसके अतिरिक्त यद्यपि दिखावे को विज्ञापन दे दिया तथापि कहते यह फिरे कि शास्त्रार्थ करेंगे भी नहीं और लोगों को यही प्रतीत होगा कि मानो उद्यत ही बैठे हैं, यह सब कार्य्यवाई थोथी सी थी, इस लिये समाज ने उन्हें आप ऐसे उचित स्थान की सूचना दी जहां पर उन्हें कोई आक्षेप

नहीं हो सकता था, तय्यारी सर्व प्रकार से उत्तमता से हुई, चारों वेद पबलिक को दिखाए गए और स्वामी जी ने व्याख्यान दिया, अन्त में पंडित गण आए तो सही, परन्तु जैकारों और शोर आदि से आकाश सिर पर उठा लिया। चार पंडित कुरसियों पर बैठे, शास्त्रार्थ के नियम उनके हाथ में दिये गए, पंडित पढ़ कर बोले, "भय्या! हम भी आपको नियम लिख कर भेजेंगे और आपके मंगवालेंगे," यह वार्ता होती थी, कि पंडितों के साथी ईंट, रोड़ा मारने लगे, प्रत्येक रोड़ा स्वामी जी की ओर फैंका जाता था परन्तु इर्द गिर्द और पुरुष होने से वह बच जाते थे, अच्छे २ प्रतिष्ठित पुरुषों को रोड़े लगे, किसी के रुद्र बहा, किसी के चोट आई, अवस्था बड़े बलवे तथा दंगे की प्रतीत होती थी, लोग जानों से तंग आ रहे थे, परन्तु अन्त में शान्ति हो गई। सारे लोग इस विचित्र घटना पर आश्चर्य्य करते थे। परन्तु स्वामी थे जो बड़े सन्तोष से कहते थे कि "समय आएगा, जब इन रोड़ों के स्थान में पुष्प वर्षेंगे"।

१--तुमने वृथा कष्ट उठाया।

लाहौर में मच्छीहट्टा के पंडितों ने एका करके कुछ गुंडे नियत किये कि जाकर स्वामी को बेइज़्ज़त करो, एक हितैषी को इसका पता लग गया, वह रात के ९, १० बजे स्वामी जी को बताने आया, वह उस समय पलंग पर लेटे थे, उसकी सारी वार्ता सुनकर बोले, तुमने वृथा कष्ट उठाया मुझे ऐसे लोगों से तनिक भी भय नहीं, मेरे पास

बड़ा मोटा लट्ठ रहता है, उसी समय बिछौने के नीचे से निकाल कर दिखाया और कहा १०, २० आदमियों के लिये मैं अकेला ही समर्थ हूं, इस बात की चिन्ता न करो।

१०—मेरठ में धार्म्मिक संग्राम।

स्वामी जी जहां जाते, वहीं विरोधी लोग उचित अनुचित हर प्रकार से उन्हें कष्ट देते और स्वामी जी अकेले ही सारे विघ्नों को दूर करते रहे। मेरठ में मौलवी अबदुलगनी और अबदुल्ला ने एक ओर पृथक् पत्र व्यवहार शास्त्रार्थ के लिये किया, दूसरी ओर ईसाइयों ने चर्चा की तीसरी ओर धर्म्म रक्षिणी सभा ने शोर मचाया और चौथी ओर नगर के धनी पुरुषों तथा पंडितों ने विरोध का बीड़ा उठाया। परन्तु स्वामी जी ने किसी भी व्यक्ति तथा सभा के विरोध को विचार में न लाकर एक मास निरन्तर प्रचार किया, व्याख्यान दिये, शंका निवारण किये, शास्त्रार्थ के लिये बहुत लंबा पत्र व्यवहार किया और दृढ़ता से सत्य की ओर सब लोगों को खींचा। यद्यपि पत्र व्यवहार में ही समय गंवाकर पंडितों ने शास्त्रार्थ न किया तो भी उनके पत्रों के लेख तथा उन नियमों से जो स्वामी जी अथवा उन्हों ने लिखे यह भले प्रकार स्पष्ट हो गया कि सभा में स्वामी जी से शास्त्रार्थ करना वास्तव में किसी को अभीष्ट न था केवल मौखिक जमा खर्च ही सब भुगता रहे थे। फिर जब और लोगों से शास्त्रार्थ हुए अथवा धर्म्म प्रचार का काम हुआ तो कुछ पुरुषों ने बड़ी विचित्र २

मिथ्या रिपोर्टें सरकार तक पहुंचानी आरम्भ कीं और कहा कि स्वामी को मेरठ से निकाला जावे, यहां उसके व्याख्यान न हों इत्यादि; परन्तु सरकार धार्म्मिक कामों में क्यों हस्तक्षेप करने लगी थी, परिणाम यह हुआ कि इस ओर से भी सब को निराश होना पड़ा और स्वामी जी के पुरुषार्थ तथा सत्य के प्रभाव से मेरठ में बड़े समारोह से आर्य्य समाज स्थापित हुआ, जिसके एक दम १०० मैम्बर होगए।

११--जाली पत्र लिख कर रोकना चाहा।

अजमेर के कुछ भद्र पुरुषों की प्रेरणा पर स्वामी जी ने वहां जाना स्वीकार कर लिया और यह समाचार सारे नगर में विख्यात हो गया। स्वार्थी पुरुषों को भय हुआ कि अब भांडा फूटा, और तो कोई उपाय न सूझा एक जाली पत्र स्वामी जी को लिखा, कि महाराज! समर्थदान जी ने बुलाया था, परन्तु जो चंदा यहां लिखा गया था उसके वसूल होने की आशा नहीं, लोग समर्थदान से अप्रसन्न होगए हैं, अब पक्का प्रबन्ध करके फिर लिखेंगे अभी न आइये, समर्थदान जी नहीं चाहते कि अपने हाथ से आप को रोकने का पत्र लिखें, स्वामी जी ने समर्थदान के नाम पत्र लिखा, कि आप चिन्ता न करें हमें आपका प्रेम भले प्रकार विदित है कुछ दिन के पश्चात आजावेंगी कोई बात नहीं, इस पत्र से सारी कलई खुल गई और स्वामी जी को

सूचना दी गई कि इसका लेखक जुगलकिशोर केवल कल्पित नाम है यहां काम की सब तय्यारी भले प्रकार हो चुकी है, आप अवश्य ही शीघ्र पधारिये; अतः स्वामी जी गए और अजमेर में धर्म्म का नाद बजा।

१२--स्वामीजी के विषय में झूठी अफवाहें।

रुड़की के पं० उमरावसिंहजी से एक पंडित ने एक बार पूछा—"स्वामीजी कहां है"? उन्होंने कहा—"अजमेर है"। उसने कहा—"जयपुर नहीं गये"? उमरावसिंहजी ने कहा—"जहां तक मैं जानता हूं नहीं गये" परन्तु पं० ने पुनः कहा—"संभव है गये हों" तब उमरावसिंहजी ने पूछा—कि "क्या आपको कोई समाचार मिला है" उसने बताया—"मेरठ से एक ब्राह्मण आया है, वह कहता है स्वामीजी जयपुर में क़ैद होगये हैं" पं० जी ने उसी समय उस ब्राह्मण को बुलाया जिसने बताया कि जयपुर से एक ब्राह्मण मेरठ आया था, वह अपनी आंखों देखी बात बताता था। स्वामीजी ने जयपुर आकर मृत्तक श्राद्ध आदि का खंडन किया, राजा का भाई उन्हीं दिनों काल वश हुआ था इसलिये उसे बुरा लगा। और उसने स्वामीजी को उन के साथियों सहित बंदी गृह में डाल दिया, लोगों ने उन्हें छुड़ाने का बहुत यत्न किया परन्तु सब निष्फल गया, यह सुनते ही उमरावसिंहजी को अत्यन्त खेद हुआ उन्होंने अजमेर समाज को तार दी, परन्तु उत्तर न आया, जिससे चिन्ता और भी बढ़ी, सायंकाल को दूसरा तार दिया,

परन्तु कोई समाचार न मिला, निदान अगामी दिन प्रातः काल वापिसी तार दिया, तो उत्तर मिला, कि स्वामीजी जयपुर गये। इससे तो उस ब्राह्मण के कथन की सत्यता का पूर्णतया निश्चय ही होगया, और उसी समय स्वामीजी को जयपुर तार दिया गया, परन्तु सारी चिंता दूर होगई, जब सायंकाल को स्वामीजी का उत्तर आगया कि मैं जयपुर में आनन्द पूर्वक हूं। उस समय निश्चय हुआ कि विपक्षीजन क्या २ मिथ्या बातें स्वामीजी के विषय में उड़ाते हैं। इसी प्रकार रीवाड़ी में स्वामी जी को किसी भद्र पुरुष का पत्र मिला कि मैंने सुना था कि आप काल वश होगये हैं, और इसीलिये मैं बड़ा शोकातुर था, परन्तु अब आपके जीवित होने का समाचार पाकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई है। इसके पश्चात् स्वामीजी हरिद्वार गये, तो महाराज जम्बू तथा कश्मीर का पत्र लेकर एक पुरुष आया, और उसने कहा—कि महाराज को किसी ने लिख दिया था कि स्वामीजी का देहान्त होगया।

१३--नाम के भूखे क्या २ करते रहे।

(क) हरिद्वार कुम्भ पर जब श्रद्धाराम ने किसी प्रकार दाल गलती न देखी तो एक विचित्र नीति से काम लिखा, गोपाल शास्त्री आदि को साथ मिलाया और कुछ साधुओं को यह पट्टी पढ़ाई कि तुम सभा में आकर कहो, कि हम स्वामी दयानन्द का उपदेश सुनकर पतित होगये थे। अब हमारा प्रायश्चित कराइये, सो ऐसा ही हुआ उन्होंने दो

सहस्र मनुष्यों के समूह में यह वार्ता कही और सारे मेले में इसका विज्ञापन दिया गया, परन्तु जब सारी कार्य्यवाई होचुकी तो गोपाल शास्त्री को बड़ा पश्चाताप हुआ कि मैं कैसा पापी हूं जो ऐसे पाखंडियों के साथ मिलकर अत्याचार कर रहा हूं तब वह उनसे पृथक होगया, उसने "विद्या प्रकाशक" पत्रिका में लेख छपवाकर सारा भांडा फोड़ दिया, उसने यह भी लिखा कि सभा के सामने जो साधु और ब्राह्मण खड़े किये गये थे वह स्वामीजी को मिले भी कभी न थे, और थे भी बनावटी साधु, यदि कोई अभियोग चलाता तो बहुत गुप्त भेद खुलते, सारांश यह है कि श्रद्धाराम लोगों को धोखा देकर अपनी प्रसिद्धि करता रहा, और आप ही समाचार पत्रों में अपने काम का विज्ञापन देता रहा, परन्तु ऐसे पुरुष के विरोध से स्वामी जैसे विद्वान के काम में क्या विघ्न पड़ सकता था।

(ख) चतुरभुज नाम का एक पं० कई स्थानों में जाकर स्वामीजी के विषय में वाही तबाही कहता था, उसके दुर्भाषण के कारण स्वामी जी के शत्रुओं ने भी उसे कई स्थानों में से निकाल दिया. एक दो स्थानों में उसने यवनों को साथ मिलाकर विरोध किया और एक नगर में बहुत से मनुष्यों को एक मकान के भीतर एकत्रित किया और प्रतिष्ठित पुरुषों के द्वारा स्वामी जी को बुलाकर फ़साद खड़ा करना चाहा। परन्तु किसी भी अवसर पर उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। बनारस में उसने पं० जुगलकिशोर को अपने साथ गांठा और विचार किया कि कोई ऐसी अद्भुत चाल चलें

जिस से सभा भी प्रसन्न हो जाय, और हमारा नाम धर्मात्माओं में विख्यात हो, इसके अनुसार उसने एक विज्ञापन नगर में लगवाया और सभा में पढ़कर सुनाया, यह विज्ञापन चार पुरुषों की ओर से था॥

आशय यह था "हम दुर्भाग्यवश दयानन्द सरस्वती के पास वेदार्थ जानने को गये, परन्तु उन से हमने नाना प्रकार की वेद विरुद्ध बातें सुनीं तब हमने काशी की ब्रह्मामृत वर्षिणी सभा के सब विद्वानों से अपने संदेह निवृत किये और अपने वैदिक गुरु पं० जुगलकिशोर जी के उपदेश से यथाविधि प्रायश्चित कराया और विश्वेश्वर आदि देवों का दर्शन करके हम वेद अभ्यास की उच्चता प्रगट करते हैं, और प्रतिज्ञा करते हैं, कि निज गुरु निरदिष्ट मार्ग से पृथक् न होंगे॥

जब सभा में यह विज्ञापन पढ़ा गया तो उपस्थित लोगों ने प्रसन्न होकर इन चारों के दर्शन करने चाहे, एक महाशय बाबू नारायण जी ने पूछा-कि विज्ञापन देने वाले कहां हैं। पं० क्रोधित होकर बोले, हम उनको अगली सभा में लेते आवेंगे। परन्तु विज्ञापन केवल बनावटी था सारी कार्य्यवाई केवल दिल लगी और ढोंग थी चारों को लायें तो कहां से लायें, लगे इधर उधर लड़कों को सिखलाने कि हमारे साथ चल कर ऐसा २ कह देना। परन्तु कौन माने और लोगों में घृणित बने तथा अपयश पावे। अन्त में पं० जी केवल एक पुरुष को दूसरी सभा में लाये, उसका नाम पूछा

गया तो वह बोला–"रामकृष्ण" परन्तु विज्ञापन में लिखा था,"रामप्रसाद दोबे" बनावटी नाम स्मरण न रहा इस लिये भूल गया, फिर उस से प्रश्न हुआ कि तुम स्वामी जी के पास गये थे वह बोला "कदापि नहीं"? बस फिर क्या था। पं० जुगल किशोर की अच्छी कलई खुली, लोगों ने कहा आपने ऐसा मिथ्या विज्ञापन क्यों छपवाया, तब वह क्रोध में आकर कुछ का कुछ कहने लग गया, यह वाक्य भी उस के मुखसे निकला कि जिसने दयानन्द का मुख तक देखा हो वह हिन्दू का बीर्य्य नहीं। बाबू नारायण सिंह ने कहा–"शास्त्रार्थ में महाराज काशी नरेश, विशुद्धानन्द, बालशास्त्री आदि सहस्रों हिन्दू उपस्थित थे, आप यह गाली उन्हें देते हैं" इस प्रकार जुगल किशोर की बड़ी दुर्गति हुई और अन्त में सभाने उस के विषय में विचार करके उसे सभा से निकाल दिया। निकलते समय उसने बहुत बावैला मचाया, मार पीटतक नौबत पहुंचने वाली थी, परन्तु ईश्वर की कृपा से शान्ति ही होगई और इस प्रकार पं० चतुर्भुज की बुद्धिमत्ता ने जुगलकिशोर को यह दिन दिखाया॥

(ग) आगरे में भी चतुर्भुज ने जहां तहां शोर मचाया व्याख्यान में वह हर समय कह देता कि कोई आर्य्य हो तो उठ जाय, हम न उन्हें अपना व्याख्यान सुनाना चाहते हैं। और न उन का मुख देखना न अपना उनको दिखाना, बुद्धिमान पुरुषों में वह बहुत तिरस्कृत होता, परन्तु स्वामी जी कहते थे, वह ऐसी करतूत के विना रह नहीं सकता।

अपनी आजीविका के लिये सब यत्न कर रहा है यहां उसने एक पुरुष को बाजे के साथ शहर में फिराया कि, उसने पहिले स्वामी जी का व्याख्यान सुनकर कंठी तोड़ डाली थी, और अब प्रायश्चित कराया है ॥

एक और हरदयाल नाम का ब्राह्मण एक आर्य्य समाजी पुरुष के पास है, ७ रु० मासिक पर हिन्दी पढ़ाने पर नौकर था, उससे भी विज्ञापन दिलाया कि मैं आर्य्य समाज का पं० हूं। परन्तु शास्त्रीजी के उपदेश से प्रायश्चित कराके आर्य्य समाज से पृथक होता हूं, सब लोग दयानंद के जाल से बचें, परन्तु लोग जानते थे, कि न हरदयाल समाज का सभासद है न उपदेशक, इसलिये असत्य का पड़दा फ़ाश हुआ, और चतुर्भुज को मारे लज्जा के दुर्गति कराके भागना पड़ा।

१४--द्वेषाग्नि में जल भुन गया।

स्वामीजी चित्तौड़गढ़ में थे, कि एक स्वामी जीवन गिरीजी भी आये, पहिले शास्त्रार्थ का विचार हुआ, परन्तु राज कवि ने इसे रुकवा दिया, इसलिये कि दोनों उन्हीं के द्वारा आये थे, जीवनगिरिजी इससे बहुत प्रसन्न हुए कि चलो मुफत में मान रख लिया, परन्तु जब देखा राणा साहब स्वामीजी का बड़ा सन्मान करते हैं, उसे बहुत क्लेश हुआ, दो मास पीछे जब स्वामीजी लगे तो महाराज ने बग्घी भेजकर बड़े आदर सत्कार स्वामीजी को किले में बुलाया, और शीघ्र ही फिर आने

लिये प्रार्थना की, यह देखकर उसे और भी दुःख हुआ, परन्तु जब महाराज ने ५००) रुपया और अन्य राज्याधिकारियों ने २००) रु० स्वामीजी के भेंट किया और सब राज्याधिकारी बड़े सन्मान के साथ स्टेशन तक उन्हें पहुंचाने गये, तब तो वह द्वेषाग्नि में पूर्णतया जलभून ही गया जो मन में आया कहता रहा, और फिर झट चलने देने को तय्यार होगया, राणा साहब को जब यह समाचार मिला, यद्यपि वह उससे मिले नहीं, उन्होंने ५००) रु० उसको भी भिजवाये, परन्तु वह क्रोध से जला हुआ था रुपया न लिया और कहा तुम ने दयानन्द का मान किया है हम नहीं लेते। इसी क्रोध में बहुत कुढ़ता हुआ वहां से चला गया।

१५--सच्चे वेद भाष्य का विरोध।

अनपढ़ लोगों तथा किसी विशेष मत के पक्षपातियों ने ही विरोध नहीं किया, किन्तु बहुत पढ़े लिखे भी सत्य के प्रचार में बाधाएं डालते रहे, वेद पर महीधर तथा सायण आदि भाष्य जो आजकल मिलते हैं, उनसे वेद पर कई प्रकार के कलंक लगते हैं, उनमें यथार्थ अर्थ है नहीं, केवल गत रीति से शब्दों का अर्थ कर दिया है, जो तर्क से नहीं होता, न किसी भी देश के विचारशील पुरुषों आकर्षण कर सकता है, स्वामीजी ने वेदों का सच्चा भाष्य किया और मन्त्रों के ऐसे अर्थ लिखे जो युक्तियुक्त तथा तर्क से सिद्ध थे। राज्याधिकारी तथा कर्मचारी सब के

विचार उनसे न मिलते थे, और स्वामीजी का प्रत्येक कार्य्य निराला तथा अनूठा समझा जाता था, तथापि आपने अपने कर्त्तव्य का पालन किया और गवर्नमैंट की सेवा में प्रार्थना पत्र भेजा कि मेरा भाष्य कालिजों में पढ़ाया जावे, गवर्नमैंट वैदिक धर्म तथा वेदार्थ को तो जानती ही न थी, केवल जाबते का काम कर सकती थी, इसलिये सेनेट के मैम्बरों से सम्मति मांगी गई, वह विचारे वेदार्थ की सच्ची विधि को जानते ही न थे, केवल यह देखकर कि स्वामीजी का भाष्य महीधर आदि के अर्थों से नहीं मिलता इसके विरुद्ध रिपोर्ट करदी, स्वामीजी ने पुनः उत्तर सहित प्रार्थना पत्र भेजने की हिम्मत की, समाचार पत्रों में भी आन्दोलन हुआ परन्तु बंगाल, संयुक्त प्रान्त, बनारस, मदरास सब स्थानों से स्वामीजी के विरुद्ध ही सम्मति मिली, शास्त्रार्थ अथवा सत्य असत्य निर्णय की सच्ची विधि सरकार के विचार ही में न आई, और इसलिये वह एक वास्तविक लाभकारी विचार के महत्व को जान न सकी, और यह शुभ इच्छा पूर्ण न हुई, तथापि स्वामीजी अपना भाष्य छपवाते गये और ईश्वर की कृपा कि सब विघ्नों के होते हुए आप भाष्य दिन प्रतिदिन अधिक से अधिक लोक मा हुआ जाता है।

शिक्षा।

सफलता की कुंजी मनुष्य का अपना ज्ञान तथा सो चार ही है, बाहिर का जगत् अपने अनुकूल हो अथ

प्रतिकूल इससे सफलता का सम्बन्ध नहीं यदि बाहर की अवस्था अनुकूल न हो तो कृतकार्यता देर से होगी, परन्तु होगी अवश्य और इसका महत्व और भी बढ़ जायगा। जितनी कठिनाई से विजय प्राप्त होती है, उतनी ही वह उच्च कोटी की गिनी जाती है, जो काम सुगमता से होजाते हैं, वह मनुष्य की बड़ाई का भी कारण नहीं बन सकते। खाना पीना आदि से कोई महान् पुरुष नहीं कहलाया, इसलिये बुद्धिमान पुरुष विघ्नों अथवा कठिनाइयों की ओर दृष्टि नहीं देते, उन्हें धुन है तो अपने कर्त्तव्य पालन करने की, विघ्नों को वह परछाईं की न्याईं व्यतीत होने वाला समझते हैं, कठिनाइयों से डोल जाने वाले वास्तव में अपने कर्त्तव्य के महत्व को अनुभव नहीं करते, कृषिक ऋण लेकर भी अन्न अनाज भूमि की खुली छाती पर दाना २ करके बखेर आता है, हल चलाना, नलाई करना, पानी देना, और महीनों प्रतीक्षा करना वह तप हैं, जो अन्त में उसे पक्की पकाई खेती देते हैं। अपने आप पैदा होने वाले घास विघ्न डालते हैं, ले तथा ओले, खेतियों का नाश करते हैं। कुसमय वर्षा ा हानि पहुंचती है। परन्तु फिर भी जगत् को पालन के वास्ते अन्न मिलता ही आरहा है, धर्म का प्रथम धृति है, दृढ़ता तथा धैर्य्य ही प्रत्येक कार्य्य की ता में ज्ञान और सदाचार का सच्चा सहायक होती है। ी दयानंद ने विद्या, सदाचार और धृति तीनों को जीवन में प्रत्यक्ष कर दिखाया. इसीसे उसके जीवन

में आर्य्यसमाज की स्थापना और उन्नति हुई और इसीसे उसके पश्चात् भी समाज का सम्बन्ध जगत् विस्तृत होरहा है। विघ्न तब भी रहे और अब भी हैं, सूर्य्य जब से हैं, तब से ही बादल विघ्न कारक रहे हैं। परन्तु नैमित्तक और साधारण से विघ्नों के कारण सूर्य्य का नाश थोड़ा ही हो सकता है। इसलिये पाठकवृन्द! बाहिर के विघ्नों का गिला करना छोड़कर अपना बल बढ़ाओ और धर्म रक्षा रूप कर्त्तव्य पालन में उद्यत होजाओ।

दूसरा सर्ग।

आसुरी आक्रमण।

जिसे चिन्ता है मरहम की, उसे घातक समझते हैं।
प्रभु रक्षा करे यह घाव, अच्छा हो नहीं सकता॥

डाक्टर रोगी का रोग निवारण करना चाहता है, फोड़े को चीर, पीप निकाल मरहम लगा, उसे आरोग्य कर देना उसे अभीष्ट है परन्तु शोक है उस रोगी पर जो बुद्धि से हीन है, जो मन में सहन शक्ति नहीं रखता, नश्तर देखते ही डाक्टर को घातक समझ उस से परे भागता है, ऐसा रोगी बचे तो क्योंकर, यह सत्य है, नश्तर चुभने से पीड़ा होती है रोगी चिल्लाता है, दुःख के कारण डाक्टर को कोसता

उसे निर्दयी और हत्यारा कहता है। हाथ पांव मारता और कभी डाक्टर को लात भी मार देता है, परन्तु जो वैद्य की शरण में आया और जिस ने इलाज कराया निश्चय है कि वह आरोग्य हो और अपने किये पर पश्चाताप करता हुआ वैद्य का कृतज्ञ हो। और यदि वह कृतज्ञन हो तो भी वैद्य का उद्देश पूर्ण हो ही जाता है, वह रोगी का सच्चा हितैषी है। और उसके लात मारने अथवा बुरा भला कहने को बुरा नहीं मानता, यही अवस्था ऋषिदयानन्द की है मतमतान्तरों से फैले हुए असत्य तथा भ्रम जाल रूप अविद्या का पीप उसने निकाला, असत्य खंडन की तेज नश्तर देखते ही रोगी भागे, जो निकट हुए उसे हर प्रकार से कष्ट देते रहे, उस के प्राण तक हरण करने के उपाय सोचते रहे जैसा कि निम्न लिखित घटनाओं से स्पष्ट होगा। परन्तु ईश्वरी प्रजा को सच्चे हृदय से प्रेम करने वाले ऋषिदयानन्द का व्यवहार कवि के इस कथन के अनुकूल था :—

आप माना कि हो निर्दयी बड़े।
मैं करूं क्या प्राण प्यारे हो मेरे॥

१ मैं कैद कराने नहीं कैद से छुड़ाने आया हूं।

अनुप शहर में सैयद मुहम्मद जी तहसीलदार थे, स्वामी के सत्संग से आपने निर्पक्षता से लाभ पाया यवन होने पर आप पर सत्य का इतना प्रभाव पड़ा कि आप वहां

पर स्वामी के बड़े सहायक समझे जाते थे, यहां के ब्राह्मण मूर्ति पूजा खंडन से तंग आगये, एक ब्राह्मण ने स्वामी जी को पान में विष दे दिया। स्वामी जी ताड़ गये और जाकर न्यौली कर्म करते रहे, बड़ी कठिनता से बचे, परन्तु उसे कुछ न कहा, तहसीलदार ने उसे कैद करवा दिया, और प्रसन्न था कि मैंने स्वामी जी के शत्रु से बदला लेलिया, परन्तु जब स्वामी जी के पास आये तो वह उन से बोले भी नहीं, अन्त में जब कारण पूछा तो आपने कहा–" मैं दुनिया को क़ैद कराने नहीं आया किन्तु क़ैद से छुड़ाने आया हूं। वह यदि अपनी दुष्टता को नहीं त्यागता तो हम अपनी श्रेष्ठता को क्यों छोड़ें। निदान तहसीलदार ने अपील करके उसे छुड़ा दिया॥

२ धोखा लग गया।

१–गढ़ो में एक बड़े ज़मींदार क्षत्री के घर पर स्वामी जी उतरे, उसने सत्य उपदेश सुनकर कंठी माला और मूर्ति का त्याग कर दिया। इस परिवर्तन से वैरागियों ने अपनी बड़ी हानी समझी, वह अप्रसन्न हो गये, और स्वामी जी को कष्ट देने की सोचने लगे, कानपुर के समीप एक वैरागियों की गद्दी थी, उन्हों ने एक साधु को देखा जिस का नाम विरजानन्द था, उसे स्नान के बहाने गंगा में लेजाकर डुबाने लगे। वह तैरना जानता था, गंगा में गोता लगाकर पार हो गया। इसी प्रकार सोरों में विरोधियों ने यह मनसूबा बांधा कि सोते हुए स्वामी जी को गंगा में फैंक दें अथवा विष दे

इसी के अनुसार एक रात्री को उन्होंने किसी और फ़कीर को स्वामी दयानन्द समझ कर खाट सहित उठाकर गंगा में फैंक दिया, उस ने गंगा में पड़ते ही चीख़मारी, तब आवाज़ पहिचान कर उन्हों ने शोक किया कि धोखा हुआ और उसे निकाल लिया।

३—हम इस गप्पाष्टक को मार देंगे।

जब स्वामी जी शाहबाज़पुर में थे, तो गंगापार से दो वैरागी साधु उन्हें मार देने को पहुंचे ॥

एक ने ठाकुर गंगा सिंह नम्बरदार को अपना मित्र समझ कर कहा, कि तुम अपनी तलवार मुझे दो, हम इस गप्पाष्टक को मार देंगे। ठाकुर ने कहा " मैंने नित्य प्रति उनकी वार्ता सुनी है वह बड़े महात्मा हैं, दुष्टो! यदि फिर ऐसा कहा तो तुम्हें मार दूंगा, जाओ, मेरे सामने से दूर हो! इसके पश्चात वह चार शस्त्र धारी पुरुषों को साथ लेकर स्वामी जी के पास पहुंचा और उन्हें वृतान्त सुनाया, वह बोले इनकी क्या सामर्थ है कि हम को मारें तथापि उस ने सावधानता की ोर रातभर पहरा देता रहा ॥

४—परमात्मा सर्वत्र मेरा रक्षक है।

श्री गोपाल तथा उसके साथियों के सब मन्सूबे मट्टी में चुके तो ज्वालाप्रसाद ने स्वामी जी की आकर की, परन्तु स्वामी जी के रोकते २ कई पुरुषों ने

उसे पीटा, फिर फेरी वाले बाबा, साधुओं तथा गंगा पुत्रों की सम्मति से कुछ बदमाश साथ लेकर स्वामीजी के प्राण हरने आये, परन्तु उन्हें सफलता न होसकी, फिर ज्वाला प्रशाद का सम्बन्धी ठाकुरदास २०, २५ पुरुषों को साथ लेकर स्वामीजी को मारने आया। परन्तु जब स्वामीजी को बलवान देखा, और पकड़े जाने का भय हुआ तो भाग गये, ला० जगन्नाथ आदि दो तीन सिपाही लेकर पहुंचे, परन्तु वह पहिले ही भाग गये थे, सारा वृत्तान्त सुनकर लाला जी ने कहा कि, स्वामीजी आप भीतर के मकान में ही रहिये परन्तु स्वामीजी ने कहा, "यहां मेरी रक्षा तुम करोगे तो अन्यत्र कौन करेगा, वह परमात्मा सर्वत्र मेरी रक्षा करने वाला है, मुझे किसी का भय नहीं"।

५--दैवी सहायता।

एक स्थान में स्वामीजी ने आचार्य्यों के मत का खंडन किया तो उनके अनुयाई ठाकुर लोग उन्हें दोपहर के समय मारने आये, दैव योग से जहां वह बैठे थे उसी वृक्ष के नीचे कामार्थी लोग विश्राम कर रहे थे, जो पहाड़ से गंगोत्त का जल भर लाते हैं यह बहुत सरल स्वभाव होते हैं, ठाकुरों की बुरी नियत देखकर अपने कुत्ते उनके पीछे दिये। और लाठियों से उनका मुकाबला किया जिस भाग गये।

६--काशी में मारने के मनसूबे

(क) पहिले ही आक्रमण में स्वामी दयानन्द ने

सारा रोब दाब उड़ा दिया, उनको और कष्ट देने के अतिरिक्त कुछ बनारसी गुंडों ने उन्हें मार देने का एका किया। साधु जवाहरदास को इस भेद का पता लग गया और उन्हों ने स्वामीजी को सूचित कर दिया। परन्तु स्वामीजी ने कहा– "घबराइये नहीं, ऐसी घटनाएं मेरे साथ में बालकपन से ही होती आती हैं, मैं बालक ही था, कि किसी ज़मींदार ने हमारी भूमि पर अधिपत्य जमा लिया तब हम तलवार लेकर गये और जब निकाल कर उनके पीछे दौड़े तो सब को भगादिया, इसी प्रकार अब भी आवश्यकता हो, तो १०–१५ को तो मैं अकेला ही पर्य्याप्त हूं। उस समय से स्वामीजी ने एक लट्ठ अपने पास रख लिया।

(ख) एक वार कोई पुरुष स्वामीजी के लिये भोजन लाया, परन्तु वह पूर्व खाचुके थे, इसलिये उन्हों ने इन्कार कर दिया तब वह बोला–अच्छा पान का बीड़ी ही लेलीजिये। स्वामीजी ने हाथ में लिया और खोला, जिस पर वह उठा और भागा, क्योंकि उस में विष था अस्पताल में पान भेजा तो उसमें विष पाया गया।

७–इनको तो मानसी पाप होचुका.

मिरज़ापुर में एक दिन स्वामीजी के स्नान करते समय घाट से बहुत लोग डौंगे पर आते थे, वह परस्पर कि स्वामी तो नास्तिक है, इसके पास न जाना यदि कोई जाय तो उसका सिर काटले, स्वामीजी यह राजस्थान पर आये और कहने लगे कि मिरज़ापुर

के लोग इस प्रकार की बातें करते आरहे थे, यद्यपि जब तक परमेश्वर न मारे मुझे कोई मार नहीं सकता, परन्तु उनको मानसी पाप होचुका। यदि उनके वश में होता तो अवश्य ऐसा कर देते।

८—स्वामीजी! आप बाहिर न जाया करें।

वृन्दाबन में शास्त्रार्थ के लिये रंगाचार्य्य तैयार ही न हुआ, हां उसके शरारती चेलों ने कई वार स्वामी जी को मार देने की चेष्टा की। परन्तु उनकी यह अशुभ कामना पूरी न होसकी, एकवार जब उन्हों ने बहुत कोलाहल करना चाहा. तो बलदेवसिंह आदि ने कहा—स्वामी जी आप बाहिर न जाया करें। स्वामी जी ने कहा—कल को आप सम्भव है यह कहें कि किसी के अंदर छिपकर बैठा करो", यह सुनकर फिर किसी ने कुछ न कहा।

९—चौबे गाली देते और लाठी लिये पहुंचे

मथुरा में जब शास्त्रार्थ को कोई पुरुष न आया स्वामी जी चलने को उद्यत हुए, परन्तु डिपटी देवीप्रस जी ने कहा, आज और रहें, शास्त्रार्थ अवश्य स्वामी जी ठहर गये, परन्तु शास्त्रार्थ कहां—चौबे चार पांच सौ पुरुषों का जत्था बनाये, गाली देते व के लिये कमर कसे आ पहुंचे। स्वामी जी के साथी लगे और उन्हों ने शोर सुनते ही फाटक बंद कर दि स्वामी जी शांत थे, उसी समय कर्णवास से १५ व

स्वामी जी के भक्त पहुंच गये और द्वार खोल दिया गया। फिर देवीप्रसाद जी डिपटी कलेक्टर तथा मथुरा के अन्य रईस भी आगये और पंडितों को शास्त्रार्थ के लिये बुलाने लगे परन्तु सन्मुख आकर बात करने का साहस किसे होता, रहे चौबे सो वह केवल लाठी का शास्त्र और गाली का प्रमाण रखते थे। इसलिये डिपटी साहब ने उन्हें अलग कर दिया।

१०—प्रयाग में विष देने का प्रयत्न।

एक दिन स्वामी जी समाधि से उठकर आये, और राय बहादुर पं० सुन्दरलाल सुपरिंटेंडेंट वर्कशाप (जो अपने मित्रों सहित आये बैठे थे) की ओर देखकर हंसे, कारण पूछा गया तो बोले—एक पुरुष मेरी ओर आरहा है ज़रा ठहरो, तमाशे की बात है। आध घंटा के पश्चात उन्हों ने कहा—महाराज आया तो कोई नहीं, स्वामी जी ने कहा, अब निकट है तुरन्त आयेगा। पांच सात मिंट पीछे एक मिठाई लिये आया और स्वामी जी के आगे रख नारायण करके कहा—"आपके लिये यह भेंट लाया हूं। ीजी ने कहा—इसमें से कुछ स्वयं खाओ, उसने इन्कार ो स्वामी जी ने ज़ोर से डांटा कि अवश्य खाओ, ह हिचका, तब स्वामी जी ने कहा देखो यह हमारे युक्त मिठाई लाया है, राय बहादुर ने एक आदमी कि जा पुलिस को ले आ! स्वामीजी ने रोका, और ण की ओर संकेत करके मुसकराते हुए कहा कि

देखो इसकी सूरत कैसी होगई, भय के कारण इसके प्राण आधे निकल गये, अतः इसको दंड होचुका, पुलिस न लाओ,तब उस ब्राह्मण को बहुत प्रकार से समझा कर,स्वामी जी ने लौटाया, पं० सुंदरलाल ने कुछ मिठाई कुत्ते को डाली जो शीघ्र ही व्याकुल होकर मर गया।

११--स्वामी को मार दो तो १००० मुद्रिका दूंगा ॥

बम्बई में जब स्वामीजी के आगमन पर धार्मिक आन्दोलन बड़े वेग से होने लगा, और जीवन जी गुसाईं को बहुत हानि पहुंचने लगी तो उसने स्वामी जी के भृत्य बलदेवसिंह को बुलाकर कहा-यदि स्वामी को मारदो तो मैं तुम्हें एक सहस्र मुद्रिका दूंगा। ५) रु० रोक और ५५ सेर मिठाई प्रसाद के तौर पर दी और एक सहस्र का रुक्का लिख दिया। किसी ने स्वामीजी को आकर कहा कि आपका रसोइया जीवन जी के पास खड़ा है। सो जब वह लौटा, स्वामी जी ने पूछा तुम जीवन जी को मिले।

बलदेवसिंह—हां महाराज!

स्वा०—क्या ठहरा।

ब०—५) रु० रोक और ५५ सेर मिठाई और कि मार दो तो १००० (सहस्र) मुद्रिका।

स्वा०—मुझे कई वार विष दिया गया परन्तु नहीं, और अब भी नहीं मरूंगा।

व०—महाराज ! मेरे कुल का काम विष देना नहीं। और फिर ऐसे पुरुष को जिस से सारे जगत् का उपकार हो रहा है, स्वामी जी ने मिठाई फेंकवा दी, रुक्का फाड़ दिया और कहा—ख़बरदार ! आगे को उनके यहां नहीं जाना, जब इस प्रकार गुसाईं की अशुभ कामना पूरी न हुई तो उसने चार पुरुष नियत किये कि स्वामी समुद्र के तट पर टहलने जाता है, आते जाते अवसर पाकर उसे मारदो, जिस रास्ते से स्वामीजी नित्य प्रति जाते थे, उसी पर वह भी घात में रहते, एक दिन उनकी भेंट भी होगई, परन्तु स्वामीजी के दर्शन करके मारना तो कहां, वह शब्द भी मुंह से उच्चारण न कर सके। तब स्वामीजी ने कहा—हमारे मारने के लिये तुम ही आते हो, उनके हृदय का खोट उसी समय प्रत्यक्ष होगया और वह फिर नहीं मिले। स्वामी जी इधर ही जाते रहे और जीवन जी गुसाईं हर प्रकार से निराश होकर मदरास भाग गया।

१२—इन पागलों पर क्षमा करके जाने दो।

जेहलम में मूर्ख लोग कई प्रकार से कष्ट देते रहे, ढेले ईंटे तो बहुत ही लोग फेंकते थे, एक रामकिशन नाम ने ईंट चलाई, परन्तु लगी नहीं, उसे एक बंगाली पुलिस के आदमी भेजकर पकड़वाया, परन्तु स्वामी से क्षमा करदिया, इसी प्रकार और दुष्ट पुरुषों को धमकाते और पकड़ते, परन्तु स्वामी जी हंसकर । और कहते, भाई ! आप बुद्धिमान हैं, इन पागलों

पर क्षमा करके इन्हें जाने दो, इनका यही उपाय है कि इनको सत्य उपदेश दिया जाय।

एक बार ब्राह्मणों ने एका किया की रात को जाकर स्वामी को मारें, महता ज्ञानचंद को यह बात ज्ञात होगई, परन्तु स्वामीजी ने उससे यह बात सुन कर कहा कि तुम कुछ मत करो, सात आठ से तो मैं अकेला ही निबट लूंगा।

१३--हम किसी मनुष्य के आश्रय नहीं हैं।

अमृतसर में स्वामीजी ने हरकीपौड़ी तथा अमृतसर के विषय में व्याख्यान दिया। इस पर किसी शुभचिन्तक ने स्वामीजी को सूचना दी कि कुछ निहंग आपको मार देना चाहते हैं, वह कहते थे कि रात को स्वामीजी के पास आदमी सोते हैं, अकेले हुए तो अवश्य मार डालेंगे। स्वामीजी ने ईश्वरी प्रेम के जोश में आकर सबको कह दिया कि रात को यहां कोई मत सोवे हम को जिसने जगत् का उपकार करने की शिक्षा दी है, उसी के आश्रय पर हम रहते हैं। किसी मनुष्य के आश्रय नहीं, देखें कोई निहंग विहंग क्या कर सकता है। परन्तु उस अखंड ब्रह्मचारी के सामने आने की किसे सामर्थ थी यह सब गीदड़ भभकियां थीं।

१४--सत्य कहते हुए सिर ही कटता है तो लो काट लो।

स्वामीजी कर्णवस में थे, कि गंगा स्नान के मेले करौली के रईस राव कर्णसिंह आये, उनके कर्णव

सुसराल थे, रात को उन्होंने रास मंडल कराया, और स्वामी जी को पं० बुलाने आये, परन्तु उत्तर मिला कि हम ऐसे निन्दनीय काम में कदापि सम्मिलित नहीं होसकते। शोक! आप लोग अपने महान् पुरुषों के स्वांग बनाते और उन्हें नचाते हैं। मनूजी तो कहते हैं, कि पुरुष को स्त्री के रूप में और स्त्री को पुरुष के रूप में देखने का बड़ा पाप है, जब राव साहब ने जाना कि यह तो खंडन करते हैं, और तीर्थ औतार आदि सब की मनाई करते हैं, तो अगले दिन सायंकाल को पंडितों और नौकरों को साथ लिये आये। स्वामीजी उपदेश करते थे, इन लोगों के तिलक देखकर हंस पड़े, और आदर सत्कार से कहा कि आइये, बैठिये। रईस-कहां बैठें? स्वा०-जहां इच्छा हो। र०-जहां तुम बैठे हो वहां ही बैठेंगे? स्वा०-आइये यहां ही बैठिये। र०-आप रास में नहीं आये। रामलीला में सब पंडित और साधू आते हैं। ब्राह्मण संन्यासी होकर ऐसा करना बहुत बुरा है, स्वा०-तुम लोग कैसे क्षत्री हो, तुम्हारे सामने, तुम्हारे महांपुरुषों को नचाया जावे और तुम्हें लज्जा न आवे। किसी की बहु बेटी की कोई नकल उतारे अथवा उन्हें नचावे तो वह कैसा माने।

—आप गंगा आदि की निन्दा करते हैं, हमारे सामने केया, तो बुरी तरह पेश आवेंगे।

।०—हम खंडन नहीं करते जो वस्तु जैसी है वैसी सत्य कहने में हमें किसी का भय नहीं, गंगा में गुण

यह है, कि उसका जल शुद्ध है, और शरीर की शुद्धि तथा तृषा बुझाने का काम देता है।

र०—"गंगा गंगेती" वाला श्लोक पढ़कर, देखो गंगा की कितनी महिमा है, नाम लेने तथा दर्शन मात्र से कई जन्मों के पाप कटते हैं।

स्वा०—यह गप्प है। जल से मोक्ष नहीं होती, किन्तु वेद अनुकूल कर्मों से होती है। मोक्ष का नाम लेले कर तुम्हें पोपों ने बहका लिया है। इसी प्रकार देखो तुम क्षत्री, परन्तु वैरागियों के लम्बे २ तिलक लगा उन्हों ने चांडाल की सी आकृति करदी है।

र०—बात होश से करो, यह तुमने क्या कहा—ख़बरदार! (तलवार उठाकर एक पांव के बल बैठा जोश से बात करता था, १०-१२ शस्त्रधारी साथ थे) टिकाराम डरने लगे, परन्तु स्वामी जी ने कहा भय क्यों करते हो, जो कुछ कहा सत्य कहा है।

टि—राय साहिब! क्रोध क्यों करते हो, स्वामी जी का आशय यह है कि आपने क्षत्रिय होकर भिखारियों का चिन्ह क्यों धारण किया।

रईस और भी क्रोधित होकर स्वामी जी को गाली देने लगा, परन्तु स्वामी जी हंसे और कहा, देखो भाई! शास्त्रार्थ करना है तो सभ्यता से बोलो अथवा अपने गुरु को बुला लो हमारा उनका प्रतिज्ञापत्र लिखा जाए, जो हारे अपना मत छोड़ दे, इसके बिना गाली आदि का देना मूर्खता तथा बालकपन है।

र०—अब तो मार पीट के लिये उद्यत दिखाई देने लगा और बोला—हमारे गुरु आगये, तो तुम से बात भी न होसकेगी। तुम उसके सामने कीड़े के तुल्य हो, तुम्हारे जैसे उनके आगे जूतियां उठाते हैं।

स्वा०—रांडाचार्य्येन कागता मम समीपे, एका आगता सहस्र आगता लक्ष आगता, शास्त्रार्थं कुरुः —

ईस एक हाथ तलवार की मुट्ठ पर और दूसरा कभी मुट्ठ पर रखे स्वामी जी की ओर किये, गाली दिये जाता था, और स्वामी जी पद्म आसन पर बैठे हंस रहे थे।

स्वा०—बस अधिक बोलने से क्या लाभ? लड़ना है तो जयपुर आदि के राजाओं से जा लड़ो और शास्त्रार्थ करलो, और शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु को बुलाकर देखलो।

ठाकुर किशनसिंह आदि ने लट्ठ लेकर राव साहिब को ललकारा, कि खबरदार यदि महात्मा को कुछ कहा तो मारे लट्ठों के सारी शेखी निकाल देंगे, भले पुरुषों को सभा में योग्य बोलना चाहिये। यदि आगे कुछ बके तो खैर नहीं धर्म उपदेश की बात नहीं सुन सकते तो चले जाइये।

राव साहिब तलवार खींचने लगे, बलदेवप्रसाद पहलवान बोला कि मैं इसे ठीक करता हूं। परन्तु स्वामी जी पर हाथ डालने ही लगा था कि उन्हों ने "अरे धूर्त!" कहते हुए उसे एक धक्का दिया, और वह पीछे जा पड़ा। राव साहब तलवार निकाल आगे बढ़ा। तब स्वामी जी ने ऊंची स्वर से ललकारा कि सत्य कहते हुए सिर ही कटता है तो लो काट लो, परन्तु उस पर कुछ ऐसा रोब छाया

कि हाथ नहीं चला, खड़ा का खड़ा रह गया।

स्वा०—ले अब मार! क्षत्रिय या तो शस्त्र निकाले नहीं और निकाले तो अपना संकल्प पूरा करे, अन्यथा वह क्षत्रिय नहीं। इस पर उसने वार करना चाहा, परन्तु स्वामी जी ने गर्ज कर तलवार उसके हाथ से छीनली और एक हाथ से ज़मीन की टेक देकर उसे तोड़ डाली। और उसका हाथ पकड़ कर कहा—क्या तू चाहता है कि अभी यह तलवार तेरे ही सीने में घुसेड़ दूं। राव साहब के होश हवास उड़ गये, स्वामी जी ने उसे छोड़ दिया, और तलवार को फैंक दिया। राव साहब लज्जित होकर अपने आदमियों सहित दुम दबाकर भागे।

१५—कौन कहता है कि पापी दंड को पाते नहीं।

असौज १९२८ में राव साहब पुनः कर्णवास आये, आतशबाज़ी, रंडी, गवैये, रासधारिये सब सामान साथ था। वह स्वामी जी की कोठी के निकट बारहदरी में ठहरा, पहिली वार की दुर्गति से वह मन में द्वेष तो रखता ही था, वर्तमान विषय भोग में उनमत्त वह स्वामीजी को जान से मरवा देने का चिन्तन करने लगा। उसने वैरागियों को कहा कि स्वामी जी का सिर काट लावो, मैं रुपया लगा कर बचालूंगा। और यदि तुम में से एक आध मर भी गया तो तुम्हारी कौनसी लुगाई रोती है। परन्तु किसी

का साहस न पड़ा, अन्त में एक रात कर्णसिंह ने तीन आदमी तलवार देकर भेजे कि स्वामी का सिर काट लाओ। वह आये तो स्वामी जी खटका सुन कर बैठ गये। परन्तु वह वापिस जाकर कहने लगे हमें तो साहस नहीं पड़ता, राव साहब ने उन्हें भड़का कर तथा धमका कर फिर भेजा, रात्रि सुनसान थी, इसलिये स्वामी जी ने उसकी आवाज़ सुनली और ध्यान लगाकर बैठ गये, परन्तु द्वितीयवार भी वह पुरुष व्याकुल होकर उलटे भागे, और गाली आदि पाकर तृतीयवार आये। तलवार हाथ में लिये नीचे से ऊपर चढ़े, कि कुटिया में जावें, और कहा, कुटिया में कौन है, स्वामी जी ने उठकर ऊंचे स्वर से कहा "हाः" और एक पांव पृथिवी पर ज़ोर से मारा, जिससे भयभीत होकर उलटे गिर पड़े और तलवार हाथ से छूट गई, बड़ी कठिनता से संभल कर भागे, ग्राम वासियों ने ठाकुर कैथलसिंह को स्वामी जी की कुटिया में सोने को कहा हुआ था, क्योंकि स्वामी जी सर्दी में नंगे सोए रहते थे, इसलिये मुंह पर कम्बल डालने और जब उतर जावे फिर डालने की आवश्यकता थी सो उस समय उसे जाग आई और यह घटना देखकर वह कहने लगा, अब यहां से किसी घर में चलें, स्वामी जी ने कहा—"*नैनंछिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकाः*" मुझ को कोई नहीं मार सकता और साधु लोग कहां गृहस्थों और घरों में घुसते हैं। हमारा कोई मनुष्य रक्षक नहीं, किन्तु देव रक्षक है, अरे! घबरा मत, उसी का शस्त्र लेकर उसी को हनन

कर डालूंगा। परन्तु इतना समझाने पर भी वह भागकर कर्णवास आया और ठाकुर किशनसिंह को आ जगाया, जो ब्राह्मणों तथा ठाकुरों सहित दौड़ा आया और राव साहब को ललकारने लगा।

कि वीर तथा असल क्षत्रिय की सन्तान है तो आ मेरे सामने और मज़ा देख! स्वामी जी कहते थे, वह तो स्वयं भीरु है, उस पर क्रोध न करो, इतने में २०—२५ पंजाबी शस्त्रधारी भी आगये, राव साहब का बड़ा अपयश हुआ, किशनसिंह ने यह प्रतिज्ञा की, कि आज यहां रहा तो पीट कर ही छोड़ूंगा। तब उसके श्वसर ने उसे समझाया कि तुम्हारे अच्छे दिन हैं तो अभी चले जाओ नहीं तो यहां के क्षत्रिय न छोड़ेंगे। निदान वह उसी समय चल दिया, घर जाकर रोगी होगया, पागलों की तरह कपड़े फाड़ने लगा, प्रयाग में ५० हज़ार का मुकद्दमा हारा और निज मत विरुद्ध मांस मदिरा सेवन करने लगा, सारांश यह कि उसकी बहुत दुर्गति हुई।

शिक्षा।

धर्मात्मा पुरुष ईश्वर को ही अपना सच्चा रक्षक जानते हैं, मानवी आक्रमणों से वह भयभीत नहीं होती, वह आत्मा को अमर और शरीर के सम्बन्ध को अनित्य मानते हैं, ईश्वर ही सत्य विद्या से युक्त तथा सदाचारी आत्मा का कल्याण करता है, और उस में आनन्द तथा प्रसन्नता को

वास देता है, शारीरिक सुख दुख, संयोग वियोग, उनके लिये साधारण सी बात होता है और वह भर्तृ के कथनानुसार परवाह नहीं करते कि लोग निन्दा करते हैं अथवा स्तुति, युगपर्यन्त जीवेंगे अथवा अभी काल का ग्रास बनेंगे, उन्हें चिन्ता होती है, तो केवल यह कि सत्य तथा कर्तव्य के मार्ग से पृथक न हों, ऋषि दयानन्द कार्य्य रूप से इसी पर आरूढ़ थे। उन्हों ने कभी ऐसे आक्रमणों पर चिंता अथवा शोक नहीं किया सदैव इन्हें तुच्छ समझा, ऐसे ही अत्याचार से अन्त में वह प्राण तक दे गये। परन्तु कष्ट नहीं मनाया, चित्त की शान्ति वैसे ही मृत्यु पर्य्यन्त स्थित रही, और यदि उनके जीवन का अनुकरण करने वाले उपरोक्त घटनाओं से कुछ भी प्रभाव अपने मन में प्राप्त करेंगे, तो उन से यही सरल प्रार्थना निकलेगी कि—

मुझे वेद धर्म से हे प्रभु,
सदा इस तरह का प्यार दे।
कि न मोड़ूं मुंह कभी उस से मैं,
चाहे कोई सिर भी उतारदे॥

दैवी शक्ति का प्रकाश।

जब निशा जाती रही, दिन का उजाला होगया।
सत्य का निश्चय जगत् में, बोलबाला होगया॥

मेघ कितना ही घटाटोप घिर आये, अन्त में छिन्न भिन्न होता है, रात्री कितनी भी अंधियारी हो, दीपक तथा तारों के प्रकाश को अपने विस्तृत राज्य के समक्ष में कितना ही तुच्छ सिद्ध करे, परन्तु सूर्य्य उदय होते ही बोरिया बदना उठा लेती हैं, यही अवस्था सत्य के सामने असत्य की होती है। मतमतान्तर धर्म मार्ग में कितना ही अन्धकार फैलावें, और साधारण पुरुषों को कितना ही फंसावें, वेद के प्रकाश के सामने उनके अज्ञान का तत्काल ही नाश होता है, इसी से कहा है, कि सत्य की ही जय होती है, असत्य की नहीं। और यही मोटो था जिसे हर समय स्वामी दयानन्द अपने मन में लक्ष्य रखते थे, और इसी की सत्यता की मोहर लग गई, जब सर्व प्रकार के विरोध तथा आक्रमणों के होते हुए भी उन्हें धर्म ध्वजा गाड़ जाने में सफलता प्राप्त हुई, महमूद ने बहुत वार चढ़ाई की, मूर्तियों को तोड़ा, मंदिरों को गिराया, पुजारियों को लूट मार तथा अत्याचार से भयभीत किया, परन्तु मूर्ति पूजा मनों में

अधिक दृढ़ता से घर करती गई, यह ऋषि दयानन्द के ही सत्य का बल था जिसके प्रभाव ने पुजारियों के मनों से मूर्तियों को निकाल दिया, उन में पाषाण पूजा के विरुद्ध इतने प्रबल भाव डाले कि वह अपने हाथों से मूर्तियों को दर्याव में फैंक कर प्रसन्न हों, इसी प्रकार बड़े से बड़े विद्वानों, धनी पुरुषों, राजों तथा कट्टर से कट्टर विरोधियों को जो ऋषि दयानन्द ने अपनी विद्या तथा सच्चाई का विश्वास दिलाया और असत्य को हर स्थान में नीचा दिखाया यह केवल उसी दैवी शक्ति का प्रकाश था, जो हर समय आसुरी दल का नाश करती आई और करेगी।

१—बैंकट शास्त्री से शास्त्रार्थ।

मेला पुष्कर में स्वामी जी ने मूर्ति पूजा का खंडन किया. तो ब्राह्मण कोलाहल करने लगे, परन्तु स्वामी जी की विद्या में कोई बराबरी न कर सका। अन्त में बैंकट शास्त्री के पास पहुंचे, जिसने पहिले तो स्वामी जी को बुलाया; फिर कहा, कि मैं स्वयं ब्रह्मा मंदिर में आकर शास्त्रार्थ करूंगा। परन्तु जब वह न आया, तो स्वामी जी स्वयं पहुंचे। ३०० ब्राह्मण उपस्थित थे। भागवत विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। बहुत विचार के पश्चात् शास्त्री जी ने अपनी भूल को स्वीकार किया और कहा कि स्वामी जी की विद्या बड़ी प्रबल है। तत्पश्चात् शास्त्री ने अपने गुरु से स्वामी जी को मिलाया, और वार्तालाप होने पर गुरु और शिष्य दोनों ने लोगों को कह दिया, कि जो कुछ स्वामी जी कहते

हैं, सत्य है, व्यर्थ हट मत करो । बैंकट जी पर इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हों ने प्रतिज्ञा की कि आगामि शास्त्रार्थों में मैं स्वामी जी के पास पहुंचा करूंगा ।

२–महंत नगर छोड़ गया ।

अजमेर में दरवाज़े के बाहर राम स्नेहियों का गुरु रहता था, स्वामी जी ने सुना, कि वह पढ़ा हुआ है उसे शास्त्रार्थ का पत्र भेजा, परन्तु उत्तर मिला हम शास्त्रार्थ नहीं कर सकते, कारण पूछा तो कहा, हम किसी के स्थान पर नहीं जाते, और यहां आवें, तो हम गद्दी से उठ कर किसी को सन्मान नहीं देते, स्वामी जी ने कहा, हम न सन्मान चाहें, न गद्दी, हमें शास्त्रार्थ चाहिये । उस ने कहला भेजा, बाबा हम तो राम २ करते हैं, कुछ शास्त्रार्थ नहीं जानते, यह सुन कर स्वामी जी ने भागवत और राम नाम पर बहुत से प्रश्न पत्र में लिख भेजे और उत्तर मांगा, गुरु जी ने चिट्ठी रख ली, और कहा कल उत्तर देंगे । परन्तु उत्तर तो क्या देते, अगले दिन प्रातः काल ही बोरिया बिस्तरा बांध नगर से भाग गये । यह शाहपुर की गद्दी के सब से बड़े महंत थे ।

३–टीका राम ने मन्दिर की पूजा छोड़ दी ।

स्वामी जी राम घाट आये तो उन्हें कर्णवास के पंडित टीका राम स्वामी मिले जिसने स्वामीजी के प्रश्न पर बताया, कि मैं सनाढ्य ब्राह्मण हूं । फिर प्रश्न हुआ तो कहा–कि सन्ध्या, गायत्री जानने से ब्राह्मण होता है । स्वामी जी ने

पूछा, क्या तू सन्ध्यादि पढ़ा है ? बोला, नहीं, हां गायत्री याद है, जब सुनाने को कहा, तो उत्तर दिया, गुरु ने सुनाने की आज्ञा नहीं दी है। स्वामी जी बोले, संन्यासी ब्राह्मण का भी गुरु होता है, हमारे सामने बिना संकोच के कह दो। तिस पर टीकाराम ने गायत्री सुनाई। स्वामी जी उनके उच्चारण से अत्यन्त प्रसन्न हुए, और उसे सन्ध्या के लिये उत्साह दिलाया, प्रत्युत सन्ध्या लिख भी दी। सिद्धांत-कौमदी पर बात करके जब टीकाराम व्याकरण में सर्वथा रह गया तो स्वामी जी का शिष्य बन गया, और सब संशय निवारण करके कर्णवास आया, और सब ठाकरों को एकत्रित करके कह दिया कि हमें राम घाट में एक बड़े महात्मा विद्वान मिले हैं, जिन से निश्चय हो गया, कि मूर्तिपूजा वेद और शास्त्र में नहीं, और पुराण, कण्ठी, तिलकादि मिथ्या और पाखंड है,और तीनों वर्णों की एक ही गायत्री है। अब हम आपके मन्दिर की पूजा छोड़ते हैं। आप लोग भी इसे छोड़ यज्ञोपवीत करा वैदिक धर्म्म स्वीकार करें, तो उत्तम है, वरंच आपकी इच्छा मंदिर में और पुजारी रख लीजिये।

४—सत्य ग्रहण कर लेना ही पांडित्य है।

अनूप शहर में शास्त्रार्थ के लिये प्रसिद्ध पं० अम्बादत्त को लोगों ने उद्यत किया। शास्त्रार्थ मूर्ति पूजा पर हुआ। वृद्ध पं० हाँकने लगा, स्वांस चढ़ गया। स्वामी जी ने कहा मौन हो जा, मैंने जान लिया, अनूप शहर में तेरे जैसा

पं० कोई नहीं। परन्तु मुझे अभ्यास है, और तू वृद्ध है, मूर्ति विषय में कहा—कि महा देव अपनी रक्षा तो करते नहीं, फिर उसकी पूजा से क्या लाभ। इसी प्रकार संस्कृत में बातें हुई। अंत में अम्बादत्त ने स्वीकार किया, कि मूर्ति पूजादि वेद विरुद्ध ही हैं। सत्य ग्रहण की यह रुची देख कर स्वामी जी ने उनकी प्रशंसा की कि वास्तव में यही पंडित है॥

५—हमारी तो स्वामीजी ने अविद्या काटी।

रामघाट पर खेमकरणजी ब्रह्मचारी की स्वामीजी से भेंट हुई। आप कट्टर मूर्ति पूजक थे। और एक साथ कितने ही देवताओं की मूर्तियां रखते और पूजते थे। बाहर जाते तो सारी मूर्तियां घोड़े पर लाद ले जाते। नरवदेश्वर १५ सेर भारी और शालिग्राम की ४, गणेश, गोमती चक्कर, टेढ़ी टांग वाले की एक २ अर्थात् कुल ८ मूर्तियें थीं। १५ से ४२ वर्ष की आयु तक अर्थात् २७ वर्ष खूब पूजा की, परन्तु अब सतसंग से अन्ध विश्वास जाता रहा। गले, मस्तक और हाथ पर रुद्राक्ष की माला पहनते थे। स्वामीजी कहते, सर्प हैं। खेमकरण कहता, महाराज, "माला"—स्वामी कहते, अरे धूर्त! यह झूंठ और मिथ्या है। इस प्रकार डांवाडोल होगया। कभी पहनता कभी उतार देता। इतने में कृष्ण इन्द्र उसे कहने लगा—तू नास्तिक है। जो मूर्ति पूजा छोड़ता है। वह कृष्ण इन्द्र का स्वामीजी के साथ शास्त्रार्थ देख चुका था, जिसमें कृष्ण इन्द्र की बुद्धि चकरा

चुकी थी, अतः उसकी बात पर खेमकरण के हृदय में जोश आ गया। और तत्काल सारी पूजा तथा माला का सर्वथा त्याग कर दिया। और सदैव ही स्वामीजी को धन्यवाद देता, कि हमारी तो उन्होंने अविद्या काटी॥

६—स्वामी से मूर्ती को भोग लगवाकर ही उठूंगा।

कर्णवास में कई स्थानों के लोग अनूपशहर के हीरा वल्लभ पं० को शास्त्रार्थ के लिये लाये, इस पं० ने सभा में एक सुन्दर सिंहासन बनवाया, और इस पर बालमुकन्द गोमती चक्र और शालिग्रामादि की मूर्तियां रखकर प्रतिज्ञा की—कि यहां से तब उठूंगा, जब स्वामी के हाथ से इन्हें भोग लगवालूंगा। पहला दिन धारा प्रवाह संस्कृत बोलने में गुज़रा। ६ दिन तक शास्त्रार्थ रहा, किसी दिन ६ घंटे निरंतर बहिस रही। हीरा बल्लभ को ऋग्वेद और यजुर्वेद दोनों संहिता कंठस्थ थीं। व्याकरण का बड़ा विद्वान था। दूर दूर के विद्वान पंडित उसे सहायता देने वाले थे, सप्ताह भर एड़ी से चोटी तक सब ने ज़ोर लगाया परन्तु एक पेश न गई। तब पं० हीराबल्लभ शास्त्रीजी ने खड़े होकर संस्कृत में स्वामीजी की विद्या की बड़ी प्रशंसा की, और ऊंची स्वर से सुनाया, कि वास्तव में स्वामीजी का कथन सत्य और प्रमाणिक है। और मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध है। न केवल यही—वह सिंहासन जिस पर सब अटरा पटरा रखा हुआ था उठाकर सब मूर्तियां गंगा में

फेंक दीं । और उसी सिंहासन पर वेद भगवान को प्रतिष्ठित किया ।

स्वामीजी ने उनके सत्य ग्रहण और असत्य त्याग की बड़ी प्रशंसा की । इतना प्रभाव हुआ–कि तत्काल कई पंडितों ने मूर्ति गंगा में फेंक दीं । जब अम्बादत्त से नन्द किशोर ने स्वामीजी की विद्या के विषय में प्रश्न पूछा तो उसने जोश में आकर दोनों हाथ भूमि पर मारे,और कहा कि भाई क्या कहूं, वह तो मानो वृहस्पति का अवतार हैं ॥

७–शालिग्राम की मूर्तियां गंगा में ।

सोरों के नारायण पंडितजी स्वामीजी के विरुद्ध थे। परन्तु फिर वैदिक धर्म्मी बन गये, और जाकर अपने गुरू पंडित अंगदरामजी से स्वामीजी की प्रशंसा करने लगे कि कोई उनसे बात नहीं कर सकता । अंगदराम उन दिनों न्याय और व्याकरण के अद्वितीय पंडित प्रसिद्ध थे, उसके नाम मात्र से ही पंडितों के होश उड़ जाते थे। वह पहले किसी समय स्वामी वृजानन्दजी से भी व्याकरण अध्ययन करता रहा था । इस कारण वह बड़े अभिमान से आया, और संस्कृत में मूर्ति पूजा पर विचार करने लगा । जितना हो सकता था, उसने ज़ोर लगाया । परन्तु प्रमाण और युक्तियां जो स्वामीजी ने दीं, उनसे निरुत्तर होगया । फिर भाग्वत विषय पर विचार हुआ, स्वामीजी ने उसमें पूर्ण विद्वता पुर्वक अशुद्धियां दिखाई, तो अंगदराम अत्यंत प्रसन्न हुआ । स्वामीजी की विद्या पर वह तो मानो मोहित हो हो

गया-और कहा, महाराज ! आपकी बातों को कहां तक श्रवण करूं, सब सत्य हैं, अंत में पूरा निश्चय करके पंडित अंगदजी ने शालिग्राम की मूर्ति सब के सामने गंगा में फैंक दी। और भाग्वत की कथा सर्वथा त्याग दी, प्रत्युत भाग्वत का बहुत तृस्कार किया, इसके अतिरिक्त पंडित बलदेवगिरजी और अंगदजी के और सम्बन्धियों ने भी पूजा की मूर्तियां प्रवाह दीं ॥

८-असत्य ने तुम्हारे मुख पर मोहर लगादी।

सोरों में संस्कृत बोलने वाले स्वामी चिदघनानन्द मूर्ति पूजा सिद्ध करने के लिये आये। उनका यह दावा सुनते ही स्वामीजी ने उन्हें लिखा, कि या तुम आओ, या हम आते हैं। परन्तु वह न स्वयं आया और न उन्हें बुलाया। दूर से ही बातें बनाता रहा। चार घड़ी दिन रहे वह गंगा की बड़ी धारा की ओर गया, स्वामीजी को सूचना हुई तो वह भी चल पड़े और १ मील दूर शमशान भूमी के समीप उसे जा पकड़ा। दोनों बैठ गये। स्वामीजी ने कहा—बोलो वह मूर्ति पूजा की सिद्धि वाला मंत्र कौनसा है, वह मौन होगया, घंटा भर बैठे रहे। फिर स्वामीजी बोले, झूंठ ने तुम्हारे मुंह पर मुहर लगा दी। यदि तुम्हारा पक्ष सच्चा है तो फिर बोलते क्यों नहीं फिर कहा अब तू मौन होकर बैठ गया मूर्ति पूजा का समाधान कर।

१–स्वामीजी ने विसरांत कील दी है।

फ़रुखाबाद में कई शास्त्रार्थ हुये। स्थानिक पंडित सब रह गये, तो मेरठ से पं० श्री गोपाल को लाये जो आया तो बड़े दमखम में, परन्तु थोड़ीसी देर की बात में उसकी मनोकामनाएं निरर्थक होगईं। अंत में वह एक चाल चला। बनारस पहुंचा, मूर्ति पूजा के विषय में एक पहला लिखा हुआ व्यवस्था पत्र लिया, और धन व्यय करके पंडितों के हस्ताक्षर कराये। लौटकर बड़ी डींगें मारने लगा, ज्वालाप्रसाद डाक मुन्शी जो शाक्तक मतका और अव्वल दरजे का मद्यपी था, साथ मिलाया। उसने शास्त्रार्थ के विज्ञापन लगवा दिये। व्यवस्था पत्र की नकल स्वामीजी को पंडित गोपाल राय ने करके लादी, जिसे पढ़कर स्वामीजी हंस पड़े कि मैं ने देखी काशी वालों की योग्यता। ऐसा ही वहां शास्त्रार्थ भी होगा।

श्री गोपाल ने स्वामीजी के डेरे के पास टोका घाट के मैदान में इस व्यवस्था पत्र को गाड़ दिया। और एक बांस का झंडा गाड़ा–उस पर "धर्मध्वजा" का शब्द लिखदिया। सहस्रों जनों का मेला हुआ, और स्वामीजी को वह संदेशा भेजने लगा–कि शास्त्रार्थ को आइये। पहिली वार्तालाप का प्रमाण सुनाकर स्वामीजी ने कहा–कि पुलिंग, स्त्रीलिंग का तो उसे ज्ञान नहीं वह शास्त्रार्थ क्या करेगा। हां इच्छा उसकी केवल विरोध करने की है। गोपाल ने बालू में एक और बांस गाड़ दिया, और कहा इस पर सब मनुष्य जल

चढ़ाओ। लोग अंधाधुंद लुटिया भर २ डालते गये। स्वामी जी ऊपर खड़े तमाशा देखते रहे। एक दो रईसों ने स्वामी जी को कहा–आप झगड़े से न डरें हम प्रबंध करेंगे। स्वामीजी ने कहा–पहले तो इतने जन समूह में प्रबंध कठिन, और हो तो भी शास्त्रार्थ करना है–तो पंडित महाशय ऊपर क्यों न आ जावें। इसी प्रकार एक चोबा संदेश लाया। परन्तु जब स्वामीजी ने उसे एक दो बात कहीं तो वह विसमय होकर वहीं खड़ा रह गया। अंत में श्री गोपाल को लोगों ने कहा–कि ऊपर चलकर शास्त्रार्थ करो–नीचे क्यों शोर कर रहे हो। बोला स्वामीजी ने विसरांत कील दी है हम ऊपर गये तो वह जीतेंगे। और वह नीचे आवें तो हम जीतेंगे, तात्पर्य्य यह कि वह नहीं आया। नगर का कोई सभ्य पुरुष उसके साथ न था स्वामीजी भी ४ बजे बारादरी में आ बैठे। इतने में कलेक्टर ने इस कोलाहल की सूचना पाकर कोतवाल को भेजा, जिसने आकर चपड़ासी के द्वारा स्वामीजी को बाहर बुलाया, परन्तु वह न आये। लाला जगन्नाथजी रईस ने कहा–कि यह किसी के नौकर नहीं, न किसी के पास जाते हैं। तब कोतवाल ने अन्दर आकर कहा। बाबाजी यह क्या बखेड़ा है, स्वामीजी ने कहा–तुम राज आज्ञा से ऐसा कहते हो अथवा ऐसे ही हम अपने स्थान पर हैं। कोई कुछ कुवाक्य कहे तो भी सहन करते हैं। हां बुरा कहने से किसी को रोक नहीं सकते। और प्रतिष्ठित पुरुषों ने भी उसे असली बात बताई तो वह बोला, "बदमाश लोग ऐसे ही शरारत करते

हैं, बाबाजी को चाहिये किसी को न आने दें"। स्वामीजी ने कहा—राजा का धर्म्म है कि प्रबंध और सब की रक्षा करे। इस पर २ कान्स्टेबल (सिपाही) पहरे के लिये नियत हुये। फिर कोतवाल ने श्री गोपाल को बुलाया, वह बड़ा डर गया और बंसीलाल रईस के पास पहुंचा, और कहा—मेरे पर कोई बात बनी तो जान दे दूंगा। इस पर ला० जगन्नाथ जी ने कोतवाल को समझाकर बात शांत करा दी, और श्री गोपाल नगर से चला गया॥

१०—हलधर ओझा से शास्त्रार्थ।

श्री गोपाल और उसकी व्यवस्था निष्फल सिद्ध हुई तो कुछ आदमी हलधर ओझा को कानपुर से बुला लाये। यह मैथुल ब्राह्मण संस्कृत का बहुत विद्वान था और कांशी से कानपुर में मन्दिर की प्रतिष्ठा कराने आया था। लोगों ने प्रसिद्ध किया कि कोई शर्त बांधें तो स्वामी से हलधर का शास्त्रार्थ करायें। ला० जगन्नाथ ने ला० देवीदास को २½ सहस्र मुद्रका भेजो कि इतना ही और मिलाकर शास्त्रार्थ में जो जीते उसे दे दो, परन्तु उन्होंने कहा कि रुपया की कुछ बात चीत नहीं। मैं ने तो हलधर को केवल बातचीत के लिये बुलाया है, वह कानपुर तो आये ही थे। इसके पश्चात् कई आदमी हलधर को साथ ले स्वामीजी के पास आये, वाद मूर्ति विषय पर आरंभ हुआ। परन्तु हलधर तांत्रिक मत का और मांस मद्य का सेवन करता था। इसलिये वह इसे ही सिद्ध करने लग गया, स्वामीजी ने बड़े

ज़ोर से बार २ उसे कहा–कि प्रकरण से बाहर न जाओ। तब वह प्रकरण शब्द की बहस ले बैठा। फिर बहस चली कि सामर्थ किसको कहते हैं ! और असमर्थ किसको। स्वामीजी ने महाभाष्य का वाक्य सुना कर इसका उत्तर दिया। हलधरने कहा–यह महाभाष्य में ही नहीं। स्वामीजी ने तुरंत पुस्तक मंगवाकर श्लोक दिखा दिया। तब निरुत्तर होकर कहने लगा महाभाष्यकार भी पंडित है और मैं भी पंडित हूं मैं क्या उससे न्यून हूं। स्वामीजी ने कहा—तुम उसके बाल बराबर भी नहीं यदि हो तो कहो कलम संज्ञा किसकी है? हलधर उत्तर न दे सका। उसकी विद्या का तो सब को पता लग गया और १ बजे रात्रि तक व्याकरण पर बात होती रही, अंत में निश्चय हुआ, कि स्मर्थ पद विधी वाला सूत्र यदि सर्वत्र लगे तो हलधर हारा, और एक स्थान लगे तो स्वामीजी, अगले दिन प्रातः काल ही स्वामीजी के स्नेही आकर उनको कहने लगे, कि रात्रि को सब पंडित कहते जाते थे, कि स्वामी ने बड़ा हट किया है, यह सूत्र सर्वत्र नहीं लगता। अतः आप यहां तक ही रहने दें, अभी कुछ नहीं बिगड़ा। (स्वामी) मुन्नीलाल को संबोधन करके,गोबद्ध की हत्या तुझे है—यदि उसे न लावे। और गोबद्ध की हत्या उसे है यदि वह न आवे। दूसरे दिन रात्रि के समय बड़ी अच्छी प्रकार शास्त्रार्थ हुआ। स्वामीजी ने कल वाली प्रतिज्ञा का स्वीकार करा लिया। और महाभाष्य खोलकर उस सूत्र को सर्वत्र लगाकर दिखा दिया। पंडित लोग और बात करने लगे।

स्वामीजी ने कहा, पहले जिस बात पर शास्त्रार्थ है-उसका निश्चय कर लो कि कौन हारा। सब चुप रहे परन्तु ला० जगन्नाथ ने कहा, जो बात हो, सत्य २ कह दीजिये। तब सब ने कहा-कि कल वाले निश्चय के अनुसार तो आज हलधर का कथन असत्य सिद्ध हुआ। यह सुनते ही हलधर सकते की सी अवस्था में होगया—और वह शोक से गिरने लगा। परन्तु साथियों ने उसे संभाला—और उसे उठाकर मकान पर ले गये।

११--शिवलिंग या पाठशाला स्थापित।

फर्रुखाबाद में ला० बंसीलालजी रईस एक मन्दिर बनवाकर उसमें शिवलिंग स्थापन करना चाहते थे। परन्तु स्वामीजी का खंडन सुनकर और श्री गोपाल और हलधर ओझा की दुर्गति देखकर दुबधा में पड़ गये। फिर जब काशी वाली व्यवस्था का स्वामीजी ने उत्तर दिया, तब तो वह इस अधर्म से बच गये। और अपने गुरू पीताम्बरदास को इस बात के अन्तिम निश्चय के लिये भेजा, उसने बहुत अन्वेशन के पश्चात् यह सुनाया, कि सब यह कहते हैं, कि मूर्ति पूजा लोका चाल है, वेद में नहीं। तब लालाजी गुरु सहित स्वामीजी के पास पहुंचे, और अपनी शंका निर्णय कर जब पूरा संतोष हो गया, तो मूर्ति पूजा त्याग दी, एक दिन पुजारी ने आकर कहा—कि ठाकुरजी के वस्त्र नहीं हैं। सेठजी ने कहा, चले जाओ, हमारे ठाकुरजी को शीत नहीं लगती। इसके अतिरिक्त जहां शिवलिंग स्थापन करना था

वहां स्वामीजी की आज्ञानुसार वैदिक पाठशाला धूमधाम से स्थापन हुई ॥

१२--लोगो ! मूर्तियां गंगा में निरादरता से न फैकों ।

कानपुर में ब्रह्मानन्द सरस्वती बहुत विरुद्ध कहता रहा, वह लोगों को उपदेश सुनने से रोकता, कि दयानन्द नास्तिक है,ईसाई है, क्रिश्चियन बनाने के लिये ईसाई लोगों ने इसे नियत किया है,और पंडितों को स्वयं लेकर स्वामीजी के पास गया । परन्तु दुर्वचन और व्यर्थ विवाद के अतिरिक्त शास्त्रार्थ न किया । स्वामीजी ने कहा—तू मूर्ख है, विद्वान होता तो शास्त्रार्थ हो जाता । फिर पुराना कानपुर के ब्राह्मणों (जिन्होंने उपदेश सुना) को कहने लगा—कि प्रायश्चित् करो, २०, २५ पुरुषों को गंगा में स्नान करा, खड़े कर यज्ञोपवीत बदलाये और गायत्री जप कराके कहा कि तुम लोगों ने देवताओं की निन्दा सुनी है—उसका प्रायश्चित् किया है । आगे उपदेश सुनने न जाना । जो दयानन्द के समीप जायेगा वह परित्याग के योग्य होगा । परन्तु स्वामीजी ने कहा, इन व्यर्थ बातों से क्या लाभ होगा, विद्या बल है तो सामने आ—परन्तु कौन आता, हां वह कई औरों को शास्त्रार्थ के लिये उत्साह देता रहा—परन्तु कोई उद्यत न हुआ । अंत में यह हुआ कि यहां के धनाढ्य पुरुष प्र.ह्मनारायण तथा गुरुप्रसादजी स्वामी जी से मिले जिन्हें स्वामीजी ने यह उपदेश दिया कि आपने कैलाश

और बैकुंठ के जो २ मंदिर बनवाये, उन पर लाखों रुपये का व्यर्थ व्यय किया। विद्या प्रचार में लगाते, अथवा अनाथों को बचाते तो अच्छा होता। यह रईस खुशामदियों की बातें सुनने के अभ्यासी थे, इसलिये इस उपदेश पर क्रोधित्त हो गये, और दोनों ने लक्ष्मी शास्त्री को भूड़ से बुलाया। इधर से ब्रह्मानन्दजी ने हलधर ओझा को तय्यार किया। सब ने परस्पर तय्यारी शास्त्रार्थ के लिये की। मिस्टर थीन, असिस्टैंट कलक्टर मध्यस्थ हुये। सब सभ्य राज नेता और स्थानीय धनाढ्य पुरुष सम्मिलित हुये, सारा जन समूह २५ सहस्र तक हुआ। वृक्षों, नावों, छत्तों, घाट की तीनों मंज़लों और फ़र्श पर पुरुष ही पुरुष थे। पुलीस का प्रबन्ध अति उत्तम और संतोष जनक था—कोई ४०० ब्राह्मण उपस्थित होंगे, परन्तु बोलने वाला हलधर था। पहले उसने स्वामीजी के विज्ञापन का विषय आरम्भ कर दिया, कि इसमें अशुद्धि है, स्वामीजी ने कहा—ऐसी बातें पाठशालाओं की है, इसके लिये कल मेरे पास आना—आपकी अच्छी प्रकार तसल्ली करा दूंगा। अब तो मूर्ति पूजा की बात करो—जिसके लिये यह समूह एकत्र हुआ है।

हलधर ने महाभारत का श्लोक पढ़ा कि देखो, भील ने द्रोनाचार्य्य की मूर्ति सनमुख रखकर धनुष विद्या सीखी। स्वामीजी ने कहा, इसका तातपर्य्य यह है कि उसने मूर्ति का संस्करण बाण चलाने के अभ्यासार्थ किया, जैसा आज कल चान्दमारी करते हैं, और यदि कोई अज्ञानि पुरुष ऐसी

पूजा ही करे—तो वह प्रमाण थोड़ा ही है, न वह ऋषि मुनि था न उसे शिक्षा हुई। आप वेद से आज्ञा बताएं। इस पर ओझा चुप हो गया। दूसरा प्रश्न किया कि वेद में आज्ञा नहीं तो निषेध कहां है। स्वामीजी ने कहा—कि कोई भृत्य को कहे कि पश्चिम को चला जा, तो बाकी तीनों दिशाओं का तो खंडन हो ही गया। अतः जो उचित था वेद ने आज्ञा दी—और जिसकी आज्ञा नहीं दी वह निषेध है॥

इसके पश्चात् थीन साहिब ने स्वामीजी से १, २ प्रश्न पूछे और पूर्ण निश्चय के पश्चात छड़ी और टोपी उठाई और कहा—"सत्य बात है, अच्छा सलाम"। इस पर प्राज्ञनारायण ने ॥) के पैसे हलधर के शीश से लुटाये, और बावैल मचाया—कि हलधर जीते। सब ने श्री गंगा की जय बुलाई और हलधर को गाड़ी में बैठाकर ले गये। इस प्रकार जो लोगों पर सत्य का प्रभाव पड़ा था—उसे रोकने के लिये बड़ा भारी यत्न हुआ। गुरुप्रशादजी ने तो अपना किरायादार समाचार पत्र के सम्पादिक को गांठा। और असत्य लिखने के लिये जो भी दंड हो, स्वयं चुकाने का प्रण कर के बड़ा लम्बा लेख लिखाया—और सत्य के विरुद्ध लिखकर हलधर की जीत छपवाई, विरोधियों का ख्याल था कि ऐसी चालाकी से वह फलीभूत होंगे, परन्तु सत्य के प्रेमियों को ऐसे असत्य लेख पर बड़ा जोश आया, उन्होंने वह अंक स्वामीजी को सुनाया कि देखिये ऐसा असत्य लिखा है, स्वामीजी ने कहा, लिखने दो हमें इससे हर्ष वा शोक नहीं, शास्त्रार्थ में हार जीत मानना मूर्खता का काम है। परन्तु

वह लोग बोले—हम तो सहन नहीं कर सकते, लोग कहते हैं तुम्हारे गुरु हार गये। स्वामीजी बोले, जो हो सके करो—किन्तु ऐसा न करना कि मुझे कहीं आना जाना पड़े। इस पर वह लोग पंडित काशीनारायणजी मुनसिफ साहिब के पास आये। उन्होंने कहा—कि मेरी सम्मति में हम सब सदर आला साहिब के पास चलें। परन्तु सदरआला साहिब ने कहा, कि मिस्टर थीन साहिब के पास चलें, जो वह कहें वही ठीक है। अतः वह सब वहीं गये। जिस समय थीन महोदय को पत्र पढ़कर सुनाया—वह तुरंत बोले, "नहीं, नहीं, उस दिन फ़कीर जीता" यह बोले कि देखिये—अख़बार में यह झूठा समाचार लिखा है। साहिब ने कहा—"तुम क्या मांगता है" हृदय नारायणजी ने कहा—जो आपने देखा वा ठीक विचारा, उसका लेख हमें दीजिये, साहिब ने उसी समय एक पत्र लिख दिया—जिसका आशय यह था कि "शास्त्रार्थ में स्वामी दयानन्द सरस्वती फ़कीर जीता था, उसकी युक्तियां वेद अनुसार थीं, और मैंने उसके पक्ष में उस दिन व्यवस्था दी थी"—यह चिट्ठी सत्य को प्रगट करने वाली उसी पत्र "शोला तूर" में छपी। सारी भूल दूर हो गई, यद्यपि सहस्रों पुरुष ऊपर २ से झूठी बातें उड़ा रहे थे परन्तु दिलों में सत्य घर कर चुका था। इसका प्रमाण इससे बढ़कर क्या हो सकता था, कि "शोलातूर" में साहिब की चिट्ठी और सत्य प्रकाश करने वाला लेख छपा भी न था—कि लोगों ने शिवलिंग की मूर्तियां उठा२ कर गंगा में फैंकनी आरम्भ कीं। नगर में मानों कुहरामसा मच गया। यहां तक

कि हलधर ओझा और उसके साथी दीवारों पर विज्ञापन लगाने लगे कि "लोगो ! मूर्तियां गंगा में निरादरता से न फेंकों"—पाप लगेगा। जिस मूर्ति को फैंकना ही हो वह प्राज्ञनारायणजी के मंदिर में पहुंचा देवें। और यह भी न कर सकें तो हमें केवल सूचना दे देवें हम स्वयं उठा लाया करेंगे !

यह विज्ञापन दीवारों पर भी लगे—और समाचार पत्रों में भी छपे, और फिर वह लेख "शोलापूर" में निकला। सब ने स्वामी दयानन्द की असाधारण सफलता का गौरव सब के हृदयों पर बैठा दिया। यहां बड़े २ कट्टर मूर्ति पूजिकों के दिल हिल गये और जिन्होंने सारी आयु पाषाण पूजा में व्यतीत करदी थी, और स्वामीजी को जो पहले ईंट चलाते थे, वही इस शास्त्रार्थ के पश्चात सर्वथा ऐसी पूजा को त्याग बैठे ॥

१३--जो भीतर छिपा है उसको बुला दो।

प्रयाग में शिवसहाय ब्राह्मण रहता था। उसने बाल्मीक रामायण पर टीका बनाई थी, जिसके अर्थ का दोश स्वामीजी ने बतलाया तो वह शास्त्रार्थ करने लगा। परन्तु परास्त होकर उठा और गंगा के तीर २ काशी को चल दिया। स्वामीजी भी उसके पीछे २ चल पड़े, यहां तक कि दोनों रामनगर जा पहुंचे। शिवसहाय तो काशी नरेश के मकान पर चला गया, और स्वामीजी राजा की वाटिका के समीप रेत में एक मिट्टी का ढेला सिर के नीचे रखकर सो गये।

प्रातःकाल जो लोग दर्शन को आये, उनके सामने शिवसहाय की टीका का खंडन किया। प्रत्युत उस मकान के बाहर खड़े होकर जो पूछता उसे भी कहते—कि, जो अंदर छिपा है उसको बुला दो, अर्थात शिवसहाय को निकालो, वह बेचारा बहुत लज्जित हुआ और राजा से आज्ञा लेकर घर चला गया॥

१४--पौराणिक गढ़ की नींव हिल गई।

भारत की धार्मिक राजधानी काशी है, संस्कृत विद्या का यही देश केन्द्र है। हिन्दु लोग इसकी विचित्र महिमा वर्णन करते हैं, काशी में मरने से मुक्ति मानते हैं। इसीलिये विक्रमादित्य के समय से लाखों ही पुरुष काशी करवत पर अपने सीस चढ़ाते रहे, शाह जहान ने इस अंध विश्वास से लोगों को हटाया, परन्तु उसकी एक पीढ़ी पश्चात् ही यह करवत फिर मनुष्यों का रुद्र चाटने लग गया। अंत में सरकार अंग्रेज़ो ने नियम करके इस मानवी सिर काटने वाले करवत को सर्वथा खुंड कर दिया, तथापि हिन्दुओं के मनों में काशी का मान वैसा ही है, मूर्तियों की अधिकता, मंदिरों की बहुतायत का ठिकाना नहीं, गली २ क्या नालियों में भी शिवलिंग अथवा शिवालय बन रहे हैं। जेते कंकर तेते शंकर की लोकोक्ति यहीं प्रसिद्ध है। समझा जाता है,कि स्वयं महादेव काशी का राजा, ढुंडीराज गणेश इसका कोतवाल और लट्ठ भैरों इसका पहरेदार है। इन सब से बढ़कर धर्म के प्रत्येक विषय में व्यवस्था काशी

से ली जाती है। इस अवस्था में मूर्ति का मूलोच्छेदन करना तभी संभव था कि इस पौराणिक गढ़ को पहिले विजय किया जाय। इस कारण स्वामीजी चिरकाल से इस विचार में थे, कि काशी जाकर असत्य का खंडन करें, इस उद्देश से २२ अक्टूबर १८६९ को स्वामीजी वहां पहुंचे। प्रथम ही बड़े प्रबल आक्रमण में इस पौराणिक गढ़ में मानो एक बड़ा भूकम्पसा उत्पन्न कर दिया। काशी नरेश स्वामीजी की विद्वत्ता को भले प्रकार स्वीकार करते थे, परन्तु उनका भाई वैरागी था, रामलीला बनवाता था, पंडों को उसने कहा—जैसे बने मूर्ति पूजा को स्थापन कर दिखाओ। दूसरी ओर से स्वामीजी ने राजा को कहला भेजा कि मूर्ति पूजा के विषय में अपना संतोष करलो। पं० लोग स्वयं भी मूर्ति पूजा खंडन से तंग आ रहे थे, परिणाम यह हुआ कि काशी में एक बड़े शास्त्रार्थ की तय्यारी आरंभ होगई। पंडितों ने कहा—और ग्रंथ तो अपने देखे हैं, परन्तु वेद से अब खोजना है इस पर विचार होकर पंडितों को १५ दिन का अवकाश मिला, और वह लगे खोज करनें, १३ दिन के पीछे राजाराम आदि पंडितों ने चार पंडितों को यह पूछने के लिये भेजा कि स्वामीजी किन ग्रंथों को प्रमाणिक मानते हैं। स्वामीजी ने कहा—"ऐसी बातें शास्त्रार्थ के समय कहदी जांयगी", परन्तु राजा साहब के द्वारा द्वितीय वार पूछा गया तो स्वामीजी ने २१ ग्रंथों के नाम लिखाए, इस प्रकार काशी के सारे पंडित दो सप्ताह तक निरंतर देख भाल करते रहे, सब का सर्व प्रकार का व्यय राजा साहब देते थे, वह

समझते थे, कि संभव है, वेद से प्रमाण न मिले। तथापि पंडितों से उनका सदा का प्रेम था, पंडित सब एक स्वर होकर स्वामी के विरुद्ध कहते रहते थे। मंदिरों पर लाखों रुपया राजा की ओर से लगा था, सहस्रशः पुरुषों की आजीविका मूर्ति पूजा पर निर्भर थी। इन सब कारणों से राजा एक प्रकार से मूर्ति पूजा का पक्षपाती और इसकी सिद्धि के लिये जुम्मेवार तथा उत्तर दाता बन गया था, इसलिये इस शास्त्रार्थ पर उन्होंने सारा बल लगा दिया। स्वामीजी अपने विद्या बल तथा ईश्वर पर पूर्णतया विश्वास रखते थे, इसलिये वह निश्चिन्त थे, तथापि किसी २ समय यह संदेह अवश्य होता था, कि कहीं अत्याचार न हो जावे, यदि अनपढ़ लोगों ने हूं हां करदी तो काम बिगड़ जायगा। इस भय से उन्होंने कई विद्वानों को कहा—कि "यह साहस तथा बीरता से काम करने का अवसर है", वह जानते थे कि कई विद्वान मन से मेरे पक्ष के हैं, इसलिये उनसे कहा—कि प्रथम तो मूर्ति पूजा का आपको खंडन करना चाहिये, यदि न करें तो जो यथार्थ युक्तियों को न माने उसे तो अवश्य समझावें, ज्योतिष स्वरूप आदि विद्वानों ने प्रतिज्ञा की कि जितना होसकेगा सहायता करेंगे, साधु जवाहरदास ने स्वामीजी से कहा—यह लोग षड् शास्त्रों के ज्ञाता बड़े विद्वान हैं, आप सब से कैसे शास्त्रार्थ करेंगे। यह तो माना कि आप किसी एक को जीत लेंगे, परन्तु सब को कैसे परास्त करेंगे। स्वामीजी ने कहा—यहां केवल बाल शास्त्री कुछ बात कर सकेगा, शेष कोई

वेद विद्या में कुशल नहीं, सब की योग्यता मुझे फ़र्रुखाबाद में ही उस व्यवस्था से ज्ञात होगई थी, जो श्री गोपाल यहां से ले गया था।

शास्त्रार्थ वाले दिन किसी पुरुष ने आकर कहा—"पं० लोग बड़ा शोरे कर रहे हैं, कि विश्वनाथ ने चाहा तो आज दयानन्द का मुख बन्द कर देंगे, स्वामीजी काशी शुहदों का नगर है, इसलिये हमें बड़ी चिन्ता है, स्वामीजी ने हंसकर कहा—योगियों का निश्चित सिद्धान्त है, कि सत्य का सूर्य्य अकेला ही अन्धकार के बादलों पर विजय पाता है। जो पक्षपात रहित ईश्वर आज्ञानुकूल सत्य का पालन करता है, उसको भय कहां—सत्य पुरुष किसी भय से सत्य को नहीं छिपाते, जान जाय तो जाय, पर ईश्वर की आज्ञा न जाय, अरे बलदेव! चिन्ता क्या है, एक मैं हूं, एक ईश्वर है। और एक धर्म है. और कौन है। देखी जायगी उनकी यदि उनका आना होगा।

१६ नवम्बर १८६९ को शास्त्रार्थ हुआ, आज काशी में विचित्र ही दृश्य था एक ओर तो काशी के सब भैरों, आदि रक्षक और उनके साथ ३३ करोड़ देवताओं की सेना, न केवल यह कल्पित देवता, किन्तु २०, २५ सहस्र जीवित देवता शास्त्र तथा शस्त्र दोनों से उनकी सहायता को उद्यत थे। काशी नरेश अपनी सारी शक्ति से प्रचलित मर्यादाओं को स्थित रखने को प्रयत्न कर रहे थे, शास्त्रार्थ में पराजय होने का परिणाम सारे काशी के लिये हानिकारक होना था। आजीविका तथा जागीर आदि की सब को चिन्ता पड़ रही

थी। इसलिये सब सगठित होकर स्वामीजी के विरोध में डटे थे। दूसरी ओर अकेला निर्धन स्वामी दयानन्द सरस्वती था, जिसको कोई सांसारिक सहायता प्राप्त न थी।

३, ४ चार सौ चुने हुए पंडित मुकाबले पर थे, अथवा यह कहो कि काशी का प्रसिद्ध विद्वान कोई भी नहीं बचा, जिसने स्वामी के मुकाबले में काम न किया हो। जन समुदाय की संख्या ५० हज़ार तक भी कही जाती है, बैठने का प्रबन्ध पुलिस ने ऐसा किया था, कि स्वामीजी के पास कोलाहल न हो। परन्तु राजा के आने पर सारी व्यवस्था टूट गई, स्वामीजी के किसी मतानुयाई अथवा सहायक को उन तक पहुंचना भी कठिन रहा। परन्तु स्वामीजी ने सब नियम विरुद्ध बातों को बड़ी उदारता से सहन किया, उनकी इच्छा केवल यह थी, कि असली बात जो होनी है शीघ्र हो। निदान कई घटनाओं के पश्चात शास्त्रार्थ आरम्भ हुआ। स्वामीजी ने राजा साहब से पूछा—"क्या वेद की पुस्तक आई है" उत्तर मिला—"वेद पंडितों को कंठस्थ है, पुस्तक की क्या आवश्यकता है। इसके पश्चात पहिले पं० ताराचरण से वेद तथा मूर्ति विषय पर विवाद हुआ, वह रह गये, तो विशुद्धानन्दजी टांग अड़ाने लगे, उन्होंने मूर्ति पूजा से हटाकर विषयान्तर में शास्त्रार्थ को लेजाना चाहा, और एक बार बड़े अभिमान से उत्तर दिया कि हमको सब वेद कंठाग्र हैं॥

स्वामीजी—कहिये, धर्म का क्या स्वरूप है।

वि०—वेद प्रतिपाद फल सहित जो अर्थ है, वही धर्म है?

स्वा०—यह आपकी संस्कृत है। श्रुति स्मृति कहिये। ठीक उत्तर न आया तो धर्म के लक्षण पूछे।

वि०—धर्म का एक ही लक्षण है। परन्तु स्वामीजी ने मनुस्मृति से दस लक्षण बताये। इस पर बाल शास्त्री आगे बढ़े कि हम ने सब धर्म शास्त्र देखा है।

स्वा०—अच्छा आप अधर्म का लक्षण कहिये।

इस पर कोई उत्तर न मिला और पंडितगण हल्ला करने लगे, एक साथ सब बोलने लग गये। परन्तु जब स्वामीजी ने संभाषण किया, तो पुनः विधि पूर्वक विवाद होने लगा। माधवाचार्य्य, बाल शास्त्री, वामनाचार्य्य, विशुद्धानन्द सब स्वामीजी के प्रश्नों से निरुत्तर होगये। सब को यह भय लग रहा था, कि बस अब सारी काशी की नाक कटी, बचाव के लिये उपाय विचार रहे थे। माधवाचार्य्य ने वेद के नाम से दो पत्रे दिखाकर कहा—यज्ञ समाप्त होने पर यजमान दसवें दिन पुराणों का पाठ सुने ऐसा लिखा है, इसमें पुराण शब्द का अर्थ पुराणी विद्या अर्थात् ब्रह्म विद्या था जो उपनिषद् तथा वेद में है, स्वामीजी ने कहा—इसे पढ़ कर सुनाओ तो विचार हो जावे, परन्तु विशुद्धानंद ने कहा आप ही पढ़िये। अंधेरा हो गया था, इसलिये लालटैन मंगवाई गई। परन्तु इसका प्रकाश अच्छा न था, और कुछ लालटैन दिखाने वाले से भी चालाकी करवाई गई। उसने टिकाकर उसे एक प्रकार पकड़ा ही नहीं, तो भी स्वामीजी पत्र को देखने लगे और अभी उस श्लोक की व्याख्या करने ही लगे थे, कि विशुद्धानंद एक विचित्र ही चाल चल गये

और कहा—"अब संध्या का समय है, बहुत काल हो गया, इन्हें अधिक कष्ट देना उचित नहीं"। यह कहकर उपहास्य के तौर पर स्वामीजी की पीठ पर थापी मार कर कहा—"अब बैठिये जो होना था सो होचुका" उधर राजा को संकेत किया और ताली बजा दी गई। जिस पर सर्वसाधारण कोलाहल मचाने लग गये, स्वामी दयानन्द इतने प्रसिद्ध पंडितों को एक २ करके निरुत्तर कर चुके, उनके मन में क्या बीती होगी, जब उन लोगों की यह अवस्था देखी, जिनके लिये वह मर रहा था, न केवल शोर ही हुआ, किन्तु ईंटे, कंकर, गोबर, पुराने जूते जो जिसके हाथ में आया फैंका। न जाने क्या कुछ हो जाता यदि कोतवाल महोदय प्रबन्ध न करते। पुलिस के अधिकारियों ने राजा साहब को कहा—"आपने जो ताली बजाई यह बहुत बुरा काम किया" स्वामीजी को एक कोठड़ी में सुरक्षित बैठा, पुलिस ने बदमाशों को पीटा और जन समुदाय को छिन्न भिन्न कर दिया। इस प्रकार अपने विचार में ब्राह्मण लोगों ने अपनी त्रुटि पर परदा डाल दिया, परन्तु सत्य को कौन छिपा सकता है। स्वामीजी लगातार दृढ़ता से कार्य्य करते गये, समाचार पत्रों ने राजा साहब तथा पंडितों के व्यवहार पर शोक प्रगट करते हुए स्पष्ट लिखा, कि कुछ ही हो काशी में दयानन्द जैसे विद्वान का कोई मुकाबला नहीं कर सकता और यद्यपि इतने दिनों तक पंडित लोग देख भाल करते रहे, और शास्त्रार्थ में भी सब ने हाथ पैर मारे, परन्तु एक भी मन्त्र वेद में से कोई पंडित दिखला न सका,

जिससे मूर्ति पूजा का विधान हो।

१५--हरजसराय जाय तो जाय हम न जायेंगे।

प्रयाग कुंभ प्रचार के दिनों में नदिया शान्ती के प्रसिद्ध नैयायक हरजसरायजी आये, उनके शिष्यों ने स्वामीजी को कहा—हमारे पं० जी कहते हैं, दयानन्द अपने स्थान पर ही खंडन कर रहा है, हमारे सामने हो तो बात भी न निकले उसके गुरु भाई स्वामी विशुद्धानंदजी भी आये हुए थे। स्वामीजी ने विद्यार्थियों को कहा—ऐसी सिद्धि तो हम भी देखना चाहते हैं, कि वाक्य न निकले उससे अवश्य भेंट कराओ। परन्तु विशुद्धानन्दजी भी साथ हों, विद्यार्थियों ने पं० को जा सुनाया परन्तु उसने स्वीकार न किया। कहा—"हम उसके पास नहीं जांयगे", स्वामीजी ने कहा—"क्या हर्ज है, हम चले चलेंगे, परन्तु वह दोनों गुरु भाई इकट्ठे रहें। पं० ने यह भी न माना केवल इतना कहा—जब समय होगा देख लेंगे। इसके पश्चात पं० मोतीराम ने दोनों को कहा—स्वामीजी से बात अवश्य कीजिये, परन्तु विशुद्धानंद बोले वह विरक्त है उससे कौन लगे।

मोतीराम:—आप भी संन्यासी हैं?

वि०—इससे क्या हरजसराय जाय तो जाय हम न जांयगे।

१६--मंदर से भले हीं निकल जाऊं शास्त्रार्थ न करूंगा।

स्वामीजी भ्रमण करते हुए एक ग्राम में पहुंचे, लोग

दर्शनों को दौड़े, और निवेदन करने लगे कि रंगाचार्य्य मत का एक वैष्णव पं० मंदर में रहता है, वह सदैव ही शास्त्रार्थ करने को कहता है, स्वामीजी ने कहा—अच्छा है आज उसे बुलालो। आप रेत में बैठ गये, ४०, ५० पुरुष भी पास बैठे रहे परन्तु पं० न आया, बार २ उसे आदमी बुलाने गये परन्तु उसने आना स्वीकार न किया। निदान नम्बरदार चला कि मैं अभी लाता हूं, वह मेरे ही तो मंदर का पुजारी है। परन्तु जब इन्कार पाया तो उसने धमकाया कि मंदर से निकाल दूंगा, उसने कहा निकल जाना स्वीकार है, शास्त्रार्थ न करूंगा। वह इतना भयभीत हुआ कि ग्राम से बाहर न निकला।

१७--थर २ कांपता हुआ बाहर निकला।

पं० रामा अवतार पटना में कौमुदी के एक श्लोक पर शास्त्रार्थ करने लगे, शब्द उसके मुख से बहुत अशुद्ध उच्चारणसे निकलते थेउसके साथी उसे उल्लू कहने लगे,कि शुद्ध उच्चारण ही नहीं करसकते तो शास्त्रार्थ क्या मिट्टी करोगे। पं० रामलाल आदि ने तो उसे बहुत ही डांटा और रोका कि यों ही अपनी प्रतिष्ठा खोते हो, चुप रहो! स्वामीजी इस पर कुछ काल पश्चात हंस पड़े, और पुरुषों की भी हंसी निकल गई, राम अवतार बहुत लज्जित हुआ, उसके नेत्रों में अश्रु भर आये। वह थर २ कांपता हुआ बाहिर निकला, और इधर उधर देखकर घर को चल दिया।

१८--रंगाचार्य्य को सामने होने का साहस नहीं पड़ा।

काशी से उतर कर मथुरा वृन्दाबन मूर्ति के गढ़ हैं। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त से सहस्रों नर नारी यहां आकर वृजवासी बने रहते हैं और कई मेले वर्ष में होते हैं। रंगाचार्य्य की स्वामी विरजानन्दजी से छेड़छाड़ रहती थी। दयानन्द जहां मूर्ति पूजा के खंडन में प्रसिद्ध था। रंगाचार्य्य वहां मूर्ति पूजा का सहायक था। अतः स्वामीजी अपनी रक्षा तथा निवास आदि का स्वयं ही उत्तम प्रबन्ध करके यहां पहुंचे और रंगाचार्य्य के बाग के पीछे राधा बाग़ में खेमा लगा दिया। और रंगाचार्य्य को पत्र द्वारा नोटिस दिया कि तुम कहते थे कि प्रतिमा पूजन, कंठी तिलक वेद से सिद्ध है, सो दिखलाओ। इस चैलेंज की प्रति लिपि रंगाचार्य्य के द्वार पर लगाई गई, उत्तर मिला कि शास्त्रार्थ मेले के पश्चात होगा। परन्तु जब युक्ति तथा प्रमाण से स्वामीजी ने मूर्ति, कंठी, तिलक, छाप वैष्णव मत आदि का खंडन आरंभ किया, और उसे सब समाचार पहुंचने लगे उधर से शास्त्रार्थ की तिथि भी निकट आने लगी, और यह उसे निश्चय था कि स्वामी शास्त्रार्थ के बिना छोड़ेगा नहीं, तो उपाय यही सूझा कि रोगी बन बैठे। फिर ज्यों २ समय निकट आता गया और शास्त्रार्थ का तकाज़ा बढ़ता गया, रोग भी बढ़ता गया। बक्सी महबूबमसीह सुपरिन्टेंडेंट एक वृद्ध सुशील स्वभाव और सत्य प्रिय तथा स्वतंत्र

विचार के पुरुष थे उन्होंने स्वामीजी को आकर कहा—साहब ! रोग तो क्या हुआ है वास्तव में वह शास्त्रार्थ से डरते हैं, और बहाना बनाते हैं, यही बात स्वामीजी ने अन्तिम व्याख्यान में स्पष्ट कह दी, कि वह भले प्रकार जानता है,कि वर्षों की कमाई हाथ से जायगी। रंगाचार्य्य ने स्वयं अपने प्रतिष्ठित चेले सेठ गोविन्ददास को कह दिया, कि स्वामी विरजानन्द का शिष्य, स्वामी दयानन्द बड़ा विद्वान है,उसके न्याय निपुण होने को मैं भले प्रकार जानता हूं। यदि दैव योग से मैं हार गया तो अपने मंदिरों से मूर्तियां जमना में प्रवाह देने को उद्यत रहो।

राजा आदित्य नारायण को किसी मित्र ने कहा—कि रंगाचार्य्य तो कहता है, दयानन्द हार जाय तो उसका क्या जाय, वह साधु फ़कीर है। परन्तु मैं हारा तो जानो सारी प्रतिष्ठा खो बैठा, राजा साहब स्वयं रंगाचार्य्य को मिलकर आये, तो निश्चय दिलाते थे, कि उसे कोई भी रोग नहीं। इसके अतिरिक्त अन्त में उसने स्वयं कहला भेजा कि हम शास्त्रार्थ नहीं करते, इसी प्रकार और पं० भी दूर से ही गीदड़ भभकियां दिखाते रहे, सन्मुख होकर मूर्ति पूजा सिद्ध करने का किसी को साहस न हुआ, परिणाम यह हुआ कि बड़े लोगों की श्रद्धा मूर्ति पूजा से हट गई।

१९--आचार्य्य जी बिन बोले ही चल दिये।

स्वामीजी बम्बई से अहमदाबाद गये, तो कई पुरुष शेखी बघारने लगे कि वह चले गये नहीं तो हम ने शास्त्रार्थ

करना था, किसी २ ने तो विज्ञापन भी दे मारा, अतः आर्य्यसमाज के मंत्री ने तार दिया और स्वामीजी फिर आगये, बस फिर क्या था, सब लगे बगलें झांकने। परन्तु समाज ने रामानुज मत के पं० कमलनयन आचार्य्य को वकील के द्वारा नोटिस दिया, तब १२ जून सन १८७५ को उससे शास्त्रार्थ हुआ।

स्टेज पर १५०-२०० धर्म ग्रंथ रखे गये और मेज़ की दोनों ओर दो कुरसियां बिछाई गईं। प्रथम स्वामीजी आये तो उनको बांई ओर की कुरसी पर बैठाया गया, जो मूर्खता तथा पक्षपात की बात थी। तो भी स्वामीजी बैठ गये और लगे आचार्य्य की प्रतीक्षा करने, लोगों में नाना प्रकार की गप्पें चल रही थीं, कोई तो कहते मकान यवन का है आचार्य्यजी कैसे आवेंगे, कोई कहते मध्यस्थ का झगड़ा डालकर वैरंग लौटेंगे, प्रतिष्ठा भी हो जायगी और शास्त्रार्थ से भी बच जांयगे। खैर ज्यों त्यों ३॥ बजे आप अपने सम्प्रदाय के ब्राह्मणों तथा भाटिया और मारवाड़ी सेवकों के सहित आये। गृहस्थ जो पहिले आये थे, उन्होंने भले प्रकार आपका स्वागत किया और बड़े सन्मानसे आपको दाईं ओर की कुरसी पर बैठाया उनके साथी सब स्टेज पर इधर उधर बैठ गये। रायबहादुर सेठ विचरदास अलवाईदास को सभापती बनाया गया, आपने उपस्थित जनता को सम्बोधन करके कहा—कि आप और मैं सब मूर्ति पूजक हैं, परन्तु दयानन्दजी इसे वेद विरुद्ध सिद्ध करते हैं, सो आज जो वह कहें शांति से सुनें और विचारें, हमको इससे बड़ा लाभ

होगा। इसी प्रकार कमलनयनजी मूर्ति पूजा सिद्ध करेंगे, सो भी शांति से सुनें और सच्चा सारांश जानें, इसके पश्चात सभापतिजी ने सुनाया कि इस शास्त्रार्थ का कारण यह प्रतिज्ञा पत्र है, जो ठाकुर जीवन दयाल तथा शिवनारायण बेनीचंद के हस्ताक्षर से लिखा हुआ है। दोनों पक्षों ने प्रतिज्ञा की है कि सारा व्यय हम आधा २ देंगे। पक्षपात रहित शास्त्री लोगों को बुलाकर निर्णय कराया जायगा और जो वह लोग अभिप्राय प्रगट करेंगे, उस पर दोनों की सही होकर उसे मुद्रित कराया जावेगा। दयानंद जीते तो शिवनारायण वेणीचंद उनका चेला हो, और अपने तिलक को मिटावे। और कमलनयनजी जीते तो जीवनलाल उनका चेला होकर रामानन्दी टीका लगावे, यद्यपि यह पत्र दो पुरुषों ने लिखा है। परन्तु अवसर सब को अच्छा मिला है कि सत्य और असत्य को जानें तत्पश्चात् प्रतिज्ञा करने वालों ने कुछ कहा—और फिर कमलनयनजी बोले यह जो पं० लोग बैठे हैं किस संप्रदाय के हैं, क्योंकि संप्रदाय वाले न होने चाहियें। श्रोतागण इस पर काना फूंसी करने लगे कि आचार्य्यजी ने यह क्या कह दिया, क्योंकि किसी संप्रदाय में न हो ऐसा ब्राह्मण कहां—फिर आचार्य्य ने यह कहा कि मध्यस्थ वह हो जो किसी संप्रदाय का न हो और पहिले वह मुझे परीक्षा देवे तब इस उच्च पद पर नियत हो, इसके पीछे एक पं० को अपने पास बुलाकर बैठाया और दूसरे पंडितों को कहा कि सालिग्राम तथा गीता की सौगन्द लेकर कहो कि सच्चा २

अभिप्राय वर्णन करेंगे। फिर एक शास्त्री से पूछा उसने कहा—जो सत्य होगा वह ही कहेंगे। आप दोनों के कथन का शब्द २ लिखेंगे और अपनी उचित सम्मति भी देंगे। आचार्य्य ने फिर कहा—तुमको किस शास्त्र का अध्ययन है वह बोला—यह प्रश्न अनावश्यक है, इस प्रकार मैं पूछूंगा तुमको क्या आता है। आचार्य्य ने कहा—हम कहते हैं!.....इतना कहकर आगे उत्तर न दिया तब शास्त्री ने खड़े होकर कहा अब समय व्यर्थ नहीं जाना चाहिये। आचार्य्यजी का बड़ा भारी कर्तव्य यह है, कि मूर्ति पूजा वेद से सिद्ध करें। स्वामी दयानंद ने बड़ी नम्रता से कहा—आज आनन्द का दिन है, यह समागम हुआ, मैं स्पष्ट कहता हूं मूर्ति पूजा वेद विरुद्ध हैं, यही हर स्थान में व्याख्यान देता हूं अतः आप सिद्ध करें कि प्राण प्रतिष्ठा आवाहन विसरजन और पूजन किस वेद में है भाष्यकारों का प्रमाण दीजिये ब्राह्मण ग्रंथों में से बताइये जिससे हम सब को लाभ तथा संतोष हो, रहा मध्यस्थ सो वेद और वेद के ब्राह्मण मेज पर विद्यमान हैं वह किसी का पक्षपात न करेंगे। जो आपके मत की पुष्टि करे वही प्रमाण उनमें से दीजिये फिर जो कुछ हम बोलेंगे वह लिखा जायगा। और दोनों महाशय छपवा देंगे जिससे दूर तक के पुरुष खरा खोटा समझ लेंगे, इस पर भी आचार्य्य ने कुछ ध्यान न दिया और टालमटोला करने लगा यह देखकर सेठ मथुरादास नोची ने एक बड़ी लंबी रामकहानी सुनाई कि मैं आचार्य्यजी के पास बहुत पुरुषों के सहित गया था और

उन्हें भले प्रकार समझाया था कि जब दयानन्द जी भरी सभा में मूर्ति पूजा का खंडन करते हैं, तो आप क्यों नहीं उनके सामने आते, आप और सब आचार्य्यों का कर्तव्य है कि जहां भी दयानन्द जावे वहां ही पहुंचकर उसका मुंह बंद करें, यदि आप सच्चे हैं, तो क्यों नहीं अपने संप्रदाय को बचाते, आप ऐसा न करेंगे तो अन्य किसी की हिम्मत नहीं हो सकती, हमने आचार्य्यजी को शास्त्रार्थ के छपने आदि का भी सारा वृत्तान्त बताया था और इन्होंने कहा था, कि चार दिशा के चार पं० चाहियें जिनकी मैं परीक्षा भी लूंगा । मैंने कहा था, क्या जब शास्त्रार्थ प्रकाशित होगा तो सारे पं० सम्मति दे सकेंगे, आचार्य्यजी फिर भी हठ करते गये, और ऐसे पं० कहते गये जो गधे के सींग की तरह मिल ही न सकें और जब हम ने पूछा कि स्वयं कोई बताइये तो अपने संप्रदाय का एक पुरुष रंगजीत नदिया शान्ति में बताया, मैंने कहा, वहां हमारा कोई जानकार नहीं, हां काशी में सब से अधिक विद्वान हैं, वहां बताइये, हम अभी अपने आढ़ती को तार देते हैं। तब आचार्य्यजी ने कहा--हम नहीं बताएंगे, हम तो केवल तब ही बोलेंगे, जब उस विज्ञापन के अनुसार योग्य पं० होंगे।इस पर विज्ञापन के विषय में बातचीत हुई तो उन्होंने कहा—न मुझे प्रतिज्ञा पत्र का पता है न मुझे शास्त्रार्थ स्वीकार है। मैंने तब कहा—समझाजावेगा,कि आप टालमटोल ही करते हैं, और दयानंद जो कहता है वह सब सत्य है, और जो आचार्य्यों पर दोष लगाता है यथार्थ हैं। मेरे इतना कहने

तथा आग्रह करने पर भी कमलनयनजी उद्यत न होसके। और अब भी जो कुछ वह यहां कह रहे हैं उससे स्पष्ट है, कि उनमें मूर्ति पूजा सिद्ध करने की सामर्थ नहीं है॥

इतनी उत्तेजना दिलाने पर भी कमलनयन जी ने शास्त्रार्थ न किया और बिन बोले ही मौन धारण किये उठकर चल दिये. सभापति ने निवेदन किया, "महाराज आपका बिन बोले चला जाना उचित नहीं, इससे सब लोग जानेंगे कि मूर्तिपूजा का विधान वेद में नहीं है" । फिर स्वामीजी ने कहा—"आपको योग्य है कि मूर्तिपूजा सिद्ध करे,नहीं करते तो लाचार मैं अभी मूर्तिपूजा का खंडन करता हूं, और सिद्ध करता हूं कि वेद में नहीं है। इस पर भी कमलनयन जी टालकर चलते ही बने और सर्वसाधारण की श्रद्धा उधर से हट गई॥

एक सेठ ने तब प्रश्न किया कि सत्युग में यह मूर्तिपूजा थी अथवा नहीं, स्वामीजी ने कहा सर्वथा नहीं,यह तो जैन तथा बुद्ध मत चले पीछे स्वार्थी लोगों ने हमारे में घुसेड़ दी थी, स्वामीजी ने इसकी अच्छे प्रकार व्याख्या की, तब सेठ छबीलदास लल्लू भाई ने भी आचार्य्य के व्यवहार पर कुछ कथन करके उसकी दुर्बलता वर्णन की और अन्त में स्वामी जी ने इस बात का शोक किया, कि इतनी पुस्तकें आई और इतना परिश्रम किया गया परन्तु आचार्य ने विद्या में निर्बलता के कारण कुछ लाभ न होने दिया, इसके पश्चात् स्वामी जी ने वेद मंत्रों से मूर्ति पूजा के खंडन पर बड़ा प्रभावशाली व्याख्यान दिया।

२०—स्वामी तो कोई अवतार है।

मियां अहमद ज़िला रावलपिंडी के सरदार अतरसिंह लाहौर आये, तो उन्होंने श्रद्धाराम फलौरी तथा अन्य पुरुषों से स्वामीजी की बड़ी निन्दा सुनी कि सब धर्म कर्म भ्रष्ट कर रहा है, ईसाइयों का नौकर है। परन्तु अमृतसर में उसे एक जानकार वैरागी मिला, तो उसने कहा—स्वामी तो कोई वली पुरुष हैं, मैं तुम्हें उनके सामने कर आता हूं, परन्तु मैं साथ न जाऊंगा, क्योंकि वहां कोई बात छिड़ गई तो बड़ी कठिनता होगी। निदान यह स्वामीजी तक पहुंचे और वहां बैठ गये, कुछ काल पश्चात् किशनकोट के रईस राजा साहबदियाल और सरदार भगवानसिंह आनरेरी मैजिस्ट्रेट और कई बड़े लोग आये, व्याख्यान आरंभ हुआ। प्रश्न करताओं के लियेसामने कुरसी रखदी गई,एक ब्राह्मण आया और साहबदियाल जी ने कहा—पं० जी आगे आईये, वह बोला ऐसी सभा में क्या आये जो ऐसे विरुद्ध अनर्थ बचन कहते हैं कि ब्राह्मणों को गोदान का अधिकार नहीं, और न उनको कोई श्लोक है, तो हम यदि गोदान न लें तो क्या राख खांय। स्वामीजी ने कहा—हमने ऐसा नहीं कहा—किन्तु यह कहा है कि तुम विद्वान नहीं हो, इसलिये तुम्हारा अधिकार नहीं, तुम दान लेते हो और खाकर विष्टा कर देते हो, तुम मिट्टी न खाओ घास खाओ। राजा साहब बोल उठे—महाराज आपने यह क्या कहा? घास तो गधे खाते हैं। स्वामीजी ने कहा—तुम्हारा इनका मख़ौल होगा हमने तो

साधारण बात कही है, सारांश यह कि व्याख्यान वेद शास्त्रानुकूल हुआ, और अतरसिंह पर बड़ा प्रभाव पड़ा, जब उसने यह देखा कि जो लोग उसे नास्तिक बताते थे वही अब कहते हैं, यह तो कोई अवतार है, साक्षात् ईश्वर का उपदेश देता है।

२१—पंडित ताराचरण चरणों पर गिर पड़ा।

हुगली के उस पार पाड़ा ग्राम के पं० ताराचरण तर्करत्न भट्टाचार्य्य, राजा जतेन्द्रमोहन तथा सुरेन्द्रमोहन टागोर के पास जाते और कई बार कहते कि आज स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करने चलूंगा, परन्तु वह गया नहीं, इसलिये उस की यह डींग व्यर्थ समझी गई कि स्वामीका वाक्य हमारे सामने बन्द हो जावेगा।

अन्त में स्वामीजी ने आग्रह करके उन्हें बुलाया तो आते ही उन्होंने ७० प्रश्न कर दिये। जिन्हें वह इतने कठिन समझता था कि कोई उत्तर दे नहीं सकता। परन्तु स्वामीजी ने २२-२३ उत्तरों में ही सब को निबटा दिया, ऐसे युक्ति युक्त तथा यथार्थ उत्तर सुन कर पं० जी स्वामीजी के चरणों पर गिर पड़े, दूसरी बार जब स्वामीजी कलकत्ते आये तो मिरज़ापुर के विद्वान पं० मोतीरामजी भी यहां थे और दैव योग से ताराचरणजी भी यहां उतरे। उन्होंने बात चीत में पं० मोतीराम को यह शब्द कहे, कि आश्चर्य्य है हमने तो यह समझ कर प्रश्न किये थे कि इनका उत्तर देने वाला

पृथिवी भर में कोई नहीं, परन्तु स्वामी जी ने दम भर में सब के उत्तर दे दिये।

२२—मैं आपकी भान्ति सत्य २ नहीं कह सकता।

हुगली में प्रतिष्ठित पुरुषों ने एक सभा में स्वामी जी का व्याख्यान कराया, भट्ट पली के ताराचरण जी बीच में आये और कई भद्र पुरुषों के कहने पर भी सभा में तो न बैठे, परन्तु मकान के ऊपर चढ़ कर गर्जने लगे। इससे लोगों की सम्मति उससे बहुत विरुद्ध होगई। स्वामी जी ने अगले दिन उनके विषय में यह बात जानकर कहा कि अभिमान करना अथवा अपने मुंह मियां मिट्ठू बनना पंडितों का काम नहीं मूर्खों का है, यदि वह ऐसे ही अभिमान के समुद्र में डूबा जाता है तो उसे एकवार मेरे पास लाओ, सम्भव है बच जाय, निदान ८ अप्रैल १८७३ को शास्त्रार्थ हुआ और बहुत देर तक होता रहा, ताराचरण यहां तक घबरा गया कि उसका अपना कथन ही मूर्ति पूजा का खंडन करने लगा। इस पर कुछ मनुष्य उठ खड़े हुए, कि शोक! पंडित जी आये तो थे,यह घमंड और पक्ष लेकर कि मूर्ति पूजा को सिद्ध करेंगे, परन्तु लगे यहां उसका खंडन करने। यही बात स्वामी जी ने कहा तो पं० चुपचाप ऊपर के मकान में चला गया, स्वामी जी ने सीढ़ियों में पहुंच कर पंडित जी का हाथ अपने हाथ में लिया, ऊपर चले आये,

और पं० से कहा—"आप ऐसा बखेड़ा क्यों करते फिरते हैं"। पं० ने उत्तर दिया—"मैं तो लोक भाषा का खंडन करता हूं। नित्य शास्त्र पढ़ने पढ़ाने का उपदेश देता हूं और पाषाण आदि मूर्ति पूजन को भी मिथ्या ही जानता हूं। परन्तु क्या करूं, सत्य कहूं तो आजीविका चली जाय, महाराज काशी नरेश सुनें तो मुझे निकाल कर बाहर करदें, इसलिये मैं आपकी भान्ति सत्य २ नहीं कह सकता॥

२३—मेरे आगे परदा डालदो परन्तु शास्त्रार्थ अवश्य कराओ।

छपरा (बिहार) में स्वामी जी एक प्रतिष्ठित ज़मींदार शिवगुलाम शाह के यहां उतरे। ज्यों २ स्वामी जी की विद्या आदि के कारण उसकी श्रद्धा तथा प्रीति बढ़ी, त्यों २ विरोधियों को द्वेष अधिक बढ़ा, और वह स्वामी जी को नास्तिक तथा किरानी आदि नाम देने लगे, और मनसूबा बांधा, कि युक्ति से न हो तो लाठियों से स्वामी जी को निरुत्तर करदो। उधर से स्वामी जी ने शास्त्रार्थ के लिये खुला विज्ञापन दे दिया। अन्त में विरोधी लोग सर्व प्रिय पुरोहित पं० जगन्नाथ के पास पहुंचे, परन्तु उसने इन्कार किया, कि मैं उस नास्तिक का मुंह न देखूंगा। स्वामी जी ने कहा—"यदि किसी प्रकार वह अपने मत को सिद्ध कर सकता है तो उसे अवश्य लाईये मेरे मुंह के आगे परदा डाल दो, जिससे वह बात भी कर

जे और उसे पाप भी न लगे, निदान परदा सचमुच डाला गया, परन्तु जब उसके कथन में स्वामी जी ने सर्व प्रकार की अशुद्धियां दिखाईं तो वह पूर्णतया निरुत्तर हो गया और सब ने निश्चय जाना कि वह बड़ा मूर्ख तथा बड़ा घमंडी है। इसके पश्चात् स्वामी जी चार घंटे व्याख्यान देते रहे। विरोधियों को जब अपनी हार का निश्चय हुआ तो बोल उठे कि वेदों के अनर्थ हो रहे हैं, स्वामी जी वेदों का निरादर कर रहे हैं। जो बहुत नीच पुरुष थे वह यह कहते हुए भाग गये कि स्वामी जी रस्ते में मिल गये तो पत्थरों से मार देंगे। परन्तु यह सब कुछ होते हुए शिवगुलाम को निश्चय होगया कि स्वामी सत्य पर हैं और ब्राह्मण यूं ही गोलमाल कर रहे हैं॥

२४—सत्य का जादू।

मथुरा में पाखंडे मदनदत्त जी सारे शरीर पर छाप लगाये तिलक चढ़ाये और गोदड़ी ओढ़े मिलने के लिये आये। आपकी आयु ८० वर्ष की थी, आपका पोता गरुड़ ध्वज और एक शिष्य साथ था, आप बड़े भक्त और ४० वर्ष तक दुग्धाहारी रहे थे। वार्तालाप करते हुए स्वामी जी ने उनके पोते से पढ़ाई का वृत्तान्त पूछा, वह बोला—व्याकरण पढ़ता हूं। स्वामी जी ने एक सूत्र पूछा तो उससे उत्तर बन न आया, तब मदनदत्त के शिष्य पं० बालकृष्ण ने उत्तर दिया। स्वामी जी मदनदत्त पर अप्रसन्न हुए कि आपने अपने पोते को बिगाड़ दिया है, ऐसा ही रहा तो

महा मूर्ख होजायगा, तब बालकृष्ण से पूछा—तुम क्या पढ़ते हो? वह बोला—कौमुदी। स्वामी जी ने कहा—कौमुदी बुद्धि को बिगाड़ देती है, उसी दिन से उसने अष्टाध्याई का पढ़ना आरम्भ कर दिया। मदनदत्त जी पर स्वामी जी की सत्यप्रियता का इतना प्रभाव पड़ा कि वह जो मूर्ति सिद्ध करने घर से आये थे, स्वामी जी के में मूर्ति तथा सब वेद विरुद्ध संप्रदायों का खण्डन करने लगे और चिरतक करते रहे, सब लोग आश्चर्य्य से कहने लगे कि न जाने स्वामी के पास क्या जादू है।

२५—काशी नरेश का पश्चाताप।

काशी के महाराजा ने यद्यपि पहिली वार स्वामीजी से विरोध किया था, परन्तु पीछे उन्हें बहुत पश्चाताप हुआ, जिसका परिचय स्वामीजी के फिर काशी पधारने पर मिला जून १८७४ में स्वामीजी यहां आये तो राजा साहब ने उन्हें बुलाने के लिये बग्घी भेजी। परन्तु स्वामीजी पहिले दिन नहीं गये, दूसरे दिन बग्घी फिर आई और चोबदार आदि भी आये, यद्यपि एक दो पुरुष जाने से रोकते थे, तो भी स्वामीजी सहज स्वभाव से चले गये। राजा साहब ने बड़ा सत्कार किया, सोने की कुर्सी पर स्वामीजी को बैठाया और कहा—कि आप जैसे चाहें खंडन करें, मैं अपने अपराध के लिये क्षमा चाहता हूं। थोड़ी देर पश्चात उन्हें बड़े आदर सन्मान से विदा किया और फिर एक मन मिठाई उनके डेरे पर भिजवाई जो स्वामीजी ने लोगों को बांट दी।

२६—गुजरांवाला में किरानियों से शास्त्रार्थ।

जिन दिनों स्वामीजी गुजरांवाला पधारे, मिशन स्कूल रौनक पर था। पादरी लोगों ने ब्राह्मणों को प्रेरणा की नगर निवासियों ने भी उन्हें उकसाया कि स्वामी से शास्त्रार्थ करो परन्तु कोई उद्यत न हुआ। बहुत प्रतिष्ठित पुरुषों ने पं० ज्वालादत्त को जोश दिलाया, तो वह बोला, "आप तो शास्त्रार्थ को कहते हैं, परन्तु हम स्वामीजी के दर्शन भी करें तो वस्त्रों सहित स्नान करें तब शुद्ध हों, हम उसके पास नहीं जावेंगे"। लाचार और पंडितों को तलाश किया परन्तु वह नगर से ही ग़ायब होगये थे, निदान पं० विद्याधारीजी के पास पहुंचे जो यहां के विशेष भद्र पुरुष तथा प्रसिद्ध विद्वान और पाठशाला के अध्यापक थे। उन्होंने कहा यदि हमारा कोई मत भेद है तो वह घर का मामला है जिस पर किसी समय हम उन से अपने तौर पर वार्तालाप कर सकते हैं। अब ईसाइयों की प्रेरणा पर घर में झगड़ा डालना उचित नहीं, यही उत्तर उन्होंने ईसाइयों को भेजा और लाचार पादरियों को स्वयं ही शास्त्रार्थ करना पड़ा। १६ जनवरी १८७८ को ४ बजे सायंकाल के स्वामीजी गिरजा घर में पधारे कितने ही अंगरेज मिशनरी, देसी पादरी, सब अंग्रेज और देशी राज्याधिकारी तथा धनी और प्रतिष्ठित पुरुष सम्मिलित हुए, टिकट के द्वारा अंदर जाने देते थे। परन्तु ईसाइयों ने अन्याय का व्यवहार किया। अपने आदमी अधिक संख्या में दाखिल किये। शास्त्रार्थ में इंजील की भले प्रकार

धज्जियां उड़ीं और सब लोगों पर उत्तम प्रभाव पड़ा। स्थान गिरजा में तंग था, बहुत लोग स्थानाभाव के कारण वापिस लौट गये, साथ ही यह मकान एक पक्ष वालों का था, इस लिये खुले और पबलिक स्थान के लिये ईसाइयों को कहा गया, परन्तु वह विचित्र चाल चले। अगले दिन १२बजे ही गिरजा में पादरियों और अपने विद्यार्थियों को बुला लिया और स्वामीजी को सूचना दी, वह उस समय वेद भाष्य का काम करते थे। सूचना पाकर बहुत आश्चर्य्य हुए और कहा कि हमने तो स्थान बदलने को कहा हुआ है। परन्तु ईसाइयों ने समय ही ४ बजे के स्थान में १२ बजे का कर दिया, यह समय हमारा वेद भाष्य के सब से आवश्यक काम का है। इसलिये उन्हें कह दो कि हम नियत समय पर अर्थात् ४ बजे ही आवेंगे, यही समय सब को कहा गया था। पादरियों ने यह कहकर कार्य्यवाही समाप्त करदी कि स्वामी जी हार गये क्योंकि आये नहीं। इधर से नियत समय पर गिरजा के समीप महांसिंह के बाग में बड़े अच्छे प्रकार से तय्यारी करके बारंबार ईसाइयों को बुलाया गया, परन्तु कोई न आया। पौन घंटा प्रतीक्षा करके स्वामी जी ने बाईबिल की शिक्षा पर व्याख्यान दिया, ईसाई मत का विद्वत्ता पूर्ण तथा मनोरंजन रीति से खंडन किया, उपस्थिति सब दिनों से अधिक थी।

२७—महात्मा मुंशीराम जी नास्तिक से आस्तिक बने।

स्वामी जी जिन दिनों बरेली गये महात्मा मुंशीराम जी कालेज की छुट्टियों के कारण अपने पिता जी के पास गये, जो बरेली शहर के कोतवाल थे। विचार आपके नास्तिकपन के थे, वेद का नाम तक आपने न सुना था। यह सम्मति आपकी पक्की थी कि संस्कृत में वेहूदापन भर रहा है, इसमें बुद्धिमत्ता की बात नहीं। इसी कारण वह संस्कृत पढ़ने की ओर नाममात्र ही ध्यान करते थे, पिता आपके पौराणिक मत के थे, नित्यप्रति तीन २ घंटे पूजा करते थे। स्वामी जी का जो पहिला व्याख्यान हुआ, उस में आप भी सम्मिलित थे, आते ही कहने लगे "मुंशीराम! एक डंडी साधु बड़े विद्वान् योगी पुरुष आये हैं, तुम्हारे सारे संशय उनकी वक्तृता सुनने से दूर होंगे"। पिता जी चाहते थे, कि वह नास्तिकपन की कंदरा से निकल आवें इसी कारण वह पुत्र सहित पहुंचे। प्रथम तो दर्शन करते ही कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, फिर जब देखा कि पादरी स्काट तथा अन्य अंग्रेज़ आपके व्याख्यान सुनने के लिये बड़े उत्सुक हैं, तो और भी श्रद्धा बढ़ी, अभी १० मिंट वक्तृता न सुनी होगी, कि मन में विचारने लगे कि मै तो समझता था संस्कृत जानने वाला क्या बुद्धिमत्ता की बात करेगा, परन्तु यह विचित्र पुरुष है, केवल संस्कृतज्ञ होकर ऐसी प्रमाणिक बातें कहता है कि विद्वान लोग सुनकर दंग हो जायं। व्याख्यान ईश्वर के

निज नाम "ओ३म्" पर था जो बहुत आत्मिक आनन्द का देने वाला था। तत्पश्चात मूर्ति पूजा का खंडन हुआ, जिस से पुत्र बहुत प्रसन्न हुआ; परन्तु पिता जाने से हिचकिचाने लगे, आपने कहा—यह योगीराज डंडी संन्यासी हैं सब कुछ कह सकते हैं। परन्तु हम गृहस्थियों को तो इसी चौपाई पर आचरण करना उचित है :—

हरि हर निन्दा सुने जो काना।
होय पाप गोघात समाना॥

महात्मा जी नित्यप्रति व्याख्यान सुनते रहे,और पादरी स्काट से जो अत्यन्त उत्तम रीति से शास्त्रार्थ हुआ उसमें भी आप सम्मिलित रहे, इनके अतिरिक्त स्वामी जी की प्रातःकाल की दौड़ तथा व्यायाम आदि को भी रुचिपूर्वक देखते तथा स्वयं भी ऐसा करने का यत्न करते रहे। प्रत्येक घटना से आपके चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ रहा था, परन्तु नास्तिकपन का अभिमान दूर नहीं होता था और कहते थे, और तो सब अच्छा है, परन्तु स्वामी जी ईश्वर तथा वेद का मानना छोड़दें, तो फिर कोई इनका मुकाबला न कर सके। इसी अभिमान में आपने एकवार ईश्वर विषय में स्वामी जी से संवाद किया, और ५ ही मिंट में निरुत्तर होकर कहने लगे:—"महाराज आपकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, आपने मेरा मुंह बंद कर दिया, परन्तु मुझे विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर कोई है। द्वितीय तृतीयवार आप फिर निरुतर हुए और यही शब्द कहने

लगे तब स्वामी जी हंसे फिर कहा—देखो ! तुमने प्रश्न किये और मैंने उत्तर दिये, यह युक्ति की बात थी, मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास ईश्वर पर करा दूंगा विश्वास आपका तभी होगा, जब ईश्वर स्वयं अपने ऊपर विश्वास करायेंगे। एक उपनिषद्वाक्य भी आपने इस विषय में सुनाया, और हुआ भी ऐसा ही। यद्यपि उस समय महात्मा जी नास्तिक रहे, परन्तु परमात्मा की दया हुई, और अन्त में ईश्वर पर उनका विश्वास हुआ, तब उन्हों ने ऋषि के कथन को स्मरण किया और मस्तिष्क से नास्तिकपन का अभिमान निकाल बड़ी श्रद्धा से स्वामी जी के कथन के आगे सिर झुकाया।

२८--शास्त्री जी पसीना २ होगये।

फ़र्रुख़ाबाद में एकवार बहुत विरोध हुआ, स्वामी जी बात कुछ कहते थे और अनपढ़ स्वार्थी पुरुष उड़ा कुछ और देते थे। आपने एक व्याख्यान में गोरक्षा के लाभ और इससे हनन करने की हानियां सुनाई परन्तु विपक्षियों ने यह प्रसिद्ध किया, कि यह गो माता को पशु कहते हैं और उसके मारने में दोष नहीं बताते हैं। परन्तु ऐसी मिथ्या बातों से योग्य पुरुष कब बहकाये जासकते हैं अन्त में स्वामी जी चलने लगे तो एक सभा लगाई गई, जिसमें निश्चय हुआ कि स्वामी जी को २५ प्रश्न बना कर भेज दो, वह चलने को तय्यार हैं उत्तर का समय मिलेगा नहीं, हम सारे नगर में सिद्ध कर देंगे कि स्वामी जी उत्तर न देसके।

पं० पातोराम शास्त्री १२ अन्य पुरुषों सहित प्रश्न लेकर पहुंचे, स्वामी जी ने उन सब को बड़े सत्कार से बैठाया, कुशलक्षेम पूछा—तब किसी पुरुष ने शास्त्री जी को धीरे से कह दिया कि आप कुछ छेड़िये। स्वामी जी ने यह सुन लिया और कहा—भाई धर्मवार्ता में देरी न करो जो कहना अथवा पूछना हो पूछो बस यह कहना था, कि शास्त्री जी के शरीर में पसीना इतना आगया कि वस्त्र तक गीले होगये। थोड़ी देर पीछे उनके साथी उन्हें बाहर लेगये, और उन्हें वायु में बैठाया, उनके शरीर को अंगोंछे से पूंछा—साथियों ने हाल पूछा तो कहा—भाई मैं आज कुछ नहीं कह सकता, मेरा सिर चकरा रहा है। अन्त में सब की ओर से प्रश्न आये और स्वामी जी ने तुरन्त ही उनका उत्तर लिखा दिया॥

२१—कौन गंगा का प्रवाह पूर्व से पश्चिम को करदे।

काशी में स्वामी जी ने पं० मोतीराम को कहा—आप विशुद्धानन्द को क्यों सत्य पर दृढ़ नहीं करते, आप और वह एक ही गुरु के विद्यार्थी हैं; वह सामने होकर शास्त्रार्थ करलें या हम छोड़दें या वह छोड़दें। परन्तु विशुद्धानन्द जी पूर्व ही उत्तर देचुके थे, कि हम स्वामी हैं हमको शास्त्रार्थ करने का अधिकार नहीं; तो भी स्वामी जी के कहने पर उक्त पं० जी विशुद्धानन्द के पास गये, और कहा कि

काशी में इतने विद्वान हैं, परन्तु एक आदमी ने आकर सब को मथन कर डाला, कोई उत्तर नहीं देता, इसलिये उठो बाल शास्त्री को लेकर मुकाबला करो, सब काशी तुम्हारे हाथ में है।

विशु०—तुम भी उनके संग में वैसे ही होगये हो ?

पं०—हमारा संग पहिले तुम्हारे से हैं और सम्बन्ध भी बहुत पुराना हैं। परन्तु जो वह कहते हैं, सुनकर हमारे चित्त में खटकता है कि वह सत्य कहते हैं।

विशु०—तुम कैसे कहते हो कि वह सत्य कहते हैं।

पं०—वेदादि के प्रमाण से, वह प्रमाण देते हैं, परन्तु मूर्ति पूजा का प्रमाण किसी आर्ष ग्रन्थ में नहीं,

विशुद्धानन्द :—यही तो कसर है, दयानन्द को तो वेदार्थ लगता है। यहां के विद्वानों से किसी से नहीं लगता, केवल गणेश श्रोत्री वेदार्थ जानने वाला है, सो वह भी उन से मिला हुआ है। दूसरे शास्त्रार्थ भी वेद विषय पर करते हैं, जिसके अर्थ लगाना यहां कोई जानता नहीं, फिर कौन उन से शास्त्रार्थ करने को सामर्थ हो।

पं०—आप भी सरस्वती हैं और वह भी, दोनों एक होजाओ, और सत्य धर्म पर दृढ़ होजाओ।

वि०—सत्य पर आरूढ़ तो होजांय, परन्तु गंगा जी का प्रवाह बह रहा है पूर्व को, ऐसा कोई है, जो इसको पश्चिम अथवा उत्तर को करदे यह जो प्रवाह चल गया है अब रुक नहीं सकता। यदि आज हम इसके ऊपर खेती करें तो सब विरोध करने लग जावें।

पं०—आपको विरोध तथा हित से क्या प्रयोजन।

वि०—भिक्षा जो देते हैं वह भी साले न देंगे और दोष लगायेंगे कि स्वामी के अनुयाई होगये।

स्वामी जी ने जब यह बातें सुनीं तो कहा कि व्यर्थ भय खाते हैं, संसार विरुद्ध होकर क्या करेंगा। यदि उनको भय ही है तो हम उनको एक जगह स्थापन कर देंगे। वह काशी में बैठ जांय और देश भ्रमण हम करेंगे। वह क्यों नहीं सत्य पर दृढ़ होता है, परन्तु सारी बातें सुनकर भी विशुद्धानन्द ने यही कहला भेजा कि वह तो अद्भूत है, निःशंक खंडन करता है, हम ऐसा नहीं कर सकते।

३०—मृतक श्राद्ध खंडन पर एक युक्ति।

मुज़फ्फ़रनगर में स्वामी जी कनागतों के दिनों में गये, इसलिये श्राद्ध विषय पर सर्व साधारण की रुचि थी। एक दिन बड़ी भारी उपस्थिति में लाला भगवानदास जी वकील ने बात छेड़ी, कि मृतक पितरों के निमित्त जो संकल्प किया जाय वह क्यों नहीं पहुंचता।

स्वामी जी—पुण्य का संकल्प पहुंचता है, तो पाप का संकल्प भी पहुंचा सकेंगे।

वकील—किसी ने रुपया सरकार से लेना हो तो जिसके नाम चाहे, परिवर्तन करदे। मुझे मुख्तार नामा दे तो मैं लासकता हूं। परन्तु शारीरिक दण्ड कर्ता ही भोगता है, यही व्यवस्था परमेश्वर के यहां होनी चाहिये।

स्वामी जीः—न्याय के दो अंग हैं, पाप के लिये दण्ड और

पुण्य के लिये उत्तम फल; ईश्वर की भक्ति अथवा मनुष्यों का भला करने वाले को उत्तम फल मिलना चाहिये, इसी प्रकार देवदत्त ने पाप किये, जिस पर मिलना चाहिये उसे दण्ड, परन्तु उसके पुत्रने पुण्य करके उसके नाम समर्पण कर दिया, परिणाम क्या हुआ,कि बेटा जिसने पुण्य किया फल से वांच्छित रहा,और पिता जिसे दंड मिलना था वह दंड से बच गया, मानो न्याय के दोनों ही अंगों का नाश होगया, जो ईश्वर कदापि नहीं कर सकता,अतः पितरों को पुण्य पहुंचाना असंभव है। तब आनरेबल लाला निहालचन्द बोले कि पिता की कमाई को ही सन्तान भले कार्य्य में व्यय करती है, इसलिये मृतक को फल मिलना चाहिये। स्वामी जीः— मृतक के कमाये हुए धन को पुत्र चाहो भलाई में लगाये अथवा बुराई में, फल पुत्र को ही मिलेगा; यदि धर्म में लगाने से मृतक को लाभ हो तो अधर्म में लगाने से उसे हानि पहुंचेगी और प्रायः देखा भी जाता है कि पिता के कमाये धन से सन्तान दुराचारी होती है, इसलिये मृतक पितरों की इस नियम से शामत ही शामत है ॥

३१--बिशप महोदय निरुत्तर होगये।

आगरा में स्वामी जी बहुत प्रतिष्ठित पुरुषों सहित रोमन कैथलिक गिरजे में गये, छोटे बिशप महोदय को मिले और कहा—कि "हम सब लोग जो ईश्वर को मानते हैं,मिलकर काम करें तो बहुत उत्तम परिणाम हो, प्रथम हम सब सच्ची बातों को विचार कर एक मत होजायं,फिर केवल

नास्तिकों से निपटना होगा जिन्हें हम युक्तियों से निश्चय करा देंगे"। बिशप :—"ऐसा हो नहीं सकता, न मुसलमान हलाल करना छोड़ेंगे, न ईसाई मांस खाना, ईश्वर है तो अवश्य, परन्तु न उसका रूप दीखे, न वह बोले, इसलिये जगत् में उसका प्रतिनिधि अवश्य आना चाहिये। जैसे मलिका की ओर से भारतवर्ष में वाईसराय है, सो प्रभु यसूमसीह के बिना प्रबन्ध नहीं हो सकता"। स्वामी जी ने उनके दृष्टान्त को मिथ्या सिद्ध किया, और ईश्वर के गुण वर्णन करके जताया कि उसे किसी प्रतिनिधि अथवा सिफ़ारश सुनने की आवश्यकता नहीं, वह स्वयं ही सारे प्रबन्ध किसी अन्य की सहायता के बिना सुगमता से कर सकता है। बिशपः—"किस प्रकार"। स्वामीजीः—"अपने कानून वेद द्वारा"।

इस पर वेद विषय में बातचीत हुई, फिर बिशपः—"जिन अग्नि,वायु, आदित्य, अंगिरा पर वेद प्रकट हुए अब उनका स्थानापन कौन है"। स्वामीजीः-"सहस्रों,लक्षों ऋषि हर समय में उनके स्थानापन हुए और जो भी ऋषि पद के नियत नियमों पर चले उनका स्थानापन होसकता है, परन्तु आपके मसीह साहब के स्थान में अब कौन है"। बिशप :—"रोमा के पोप, जो भूल हम लोगों से हो, वही उसका संशोधन करते हैं"।

स्वा०—"जो भूल पोप से हो उसका संशोधन कौन करता है। आप उन अत्याचारों को जानते ही होंगे जो लूथर से पहिले, अथवा लूथर के समय में और उसके

पश्चात् पोपों ने किये और मत सम्बन्धी जो जहाद आदि होते रहे उनका भी आपको पता होगा, जब पोप स्वयं उन का मूलकारण है तो वह संशोधन कैसे कर सकता है, सो यह बात हमारे पोपों की तरह ही है"। विशप महोदय इस का उत्तर न देसके।

३२--जैन मत की जड़ हिलगई।

स्वामी जी मसऊदा राज में गये तो वहां के राव साहब ने जैनियों के मुखिया पुरुषों को एकत्रित करके कहा—"आप लोग अपने किसी विद्वान को बुलाओ जिससे स्वामी जी का शास्त्रार्थ होकर सत्यासत्य का निर्णय हो,"जैनियों ने साधु सिद्धकरण को बुलाने का विचार किया, परन्तु वह चतुर्मास के कारण स्वयं ही आगये, और जब स्वामी जी भ्रमण को गये तो साधुजी से उनका मेल होगया। साधारण वार्तालाप में साधु ने एक आध बात मखौल की कर दी, परन्तु स्वामी जी ने इसका उत्तर न देकर मुख पर पट्टी बांधने का कारण पूछा। राव साहब दूरबीन लगाकर स्वामी जी को भ्रमण करते देखा करते थे, आज भी उन्हों ने ऐसा ही किया और उन्हें किसी से बात करता देख कर घोड़े पर चढ़ वहां पहुंचे। साधु उनको देखकर चलने लगा, राव साहब ने रोका,परन्तु वह चला ही गया। निदान प्रश्न लिखकर साधु के पास भेजे गये जिनमें जैनियों की कई बातों का बड़ा युक्तिपूर्वक खंडन किया था। राव साहब का मंत्री यह पत्र लेकर गया, परन्तु साधु ने कहा—इन उत्तर तब देंगे,

जब तुम मुख पर पट्टी बांध लोगे उसने कहा—„हम तो इसे पाप समझते हैं,आप प्रश्नों का उत्तर दें जब आप सिद्ध कर देंगे तो हम प्रसन्नता से बांध लेंगे, और भी जो बात आप कहेंगे स्वीकार करेंगे," यह सुन साधु बोला, मैं उत्तर नहीं दे सकता और उठकर अन्दर चला गया, परन्तु तीसरे दिन उसने उत्तर लिख भेजे जो सर्वथा असत्य और अप्रमाणित थे, उन पर स्वामीजी ने बहुत विस्तार से युक्तिपूर्वक प्रश्न लिखे, कई भद्र पुरुष यह पत्र लेकर उसके पास गये और उससे उत्तर मांगा तो साधु जी के छक्के छूटे, बहुत कहने पर उसने इतना कहा—"हमारे से तो उत्तर कोई बन नहीं आता, आपां तो साधु हैं" इस पर अधिक कहना अनुचित जान कर सब लोक चले आये।

स्वामी जी के इन लेखों तथा व्याख्यानों का चर्चा जैनियों में बहुत हुआ, यहां तक कि उन लोगों ने खुल्लम-खुल्ला वैदिक धर्म को स्वीकार किया, उनकी प्रार्थना पर बड़ा भारी यज्ञ हुआ और उनको ब्राह्मण तथा क्षत्रियों के साथ यज्ञोपवीत दिया गया, सारे ३५ जैनियों ने वैदिक धर्म स्वीकार किया, इसी प्रकार भरतपुर वालों ने यज्ञोपवीत की प्रार्थना की और उन्हें भी राजपूतों तथा ब्राह्मणों के साथ यज्ञोपवीत पहनाया गया और बहुत बड़ा यज्ञ हुआ।

३३--सच्चे विद्वान की पूजा।

स्वामी जी को मसऊदा में रायपुर से कई निमंत्रण आये तो उन्हों ने राव साहब से कहा कि हमें जाना चाहिये, राव

साहब बोले. मुझे आपका जाना अच्छा नहीं लगता यहीं विराजिये, मैं आपकी आज्ञा कभी उलंघन न करूंगा और वेद भाष्य करने का अच्छा प्रबन्ध कर दूंगा। स्वामी जी ने कहा—आपकी प्रीति तथा धर्म की तो मैं प्रशंसा करता हूं, परन्तु हम साधुओं को एक स्थान में अधिक रहना उत्तम नहीं, देश २ में जाकर उपदेश करना चाहिये। निदान चलने की तयारी हुई। नियत तिथि को मध्यान के पीछे राजमंत्री तथा अन्य प्रतिष्ठित सज्जनों को राव साहब ने बग्घी के साथ भिजवाया कि स्वामी जी किले में पधारें, ताकि उनके मुख से सत्य उपदेश सुनकर उन्हें विदा करें। जब बग्घी पर सवार हो बाज़ार से गुज़र स्वामी जी किले के द्वार पर पहुंचे, तो राव साहब ने बड़ी श्रद्धा से उनका स्वागत किया और निज महिलों तथा ड्योढ़ी से लाकर स्वामीजी को यज्ञमंडप में आसन पर ला बिठाया और स्वामी जी ने राज तथा प्रजा धर्म पर व्याख्यान दिया और उसके पश्चात् राव साहब ने पत्र पढ़ा जिसमें ईश्वर प्रार्थना करके स्वामी जी की योग्यता प्रगट की थी। श्रोतागण, मारे खुशी के वस्त्रों में फूले न समाते थे और ईश्वर का धन्यवाद देते थे कि इस काल में ऐसा सत्संग मिला, चलते समय महाराज ने ५००) मुद्रिका वेद भाष्य की सहायता में भेंट किया और पुष्पमाला स्वामी जी के गले में डाली। चारसौ पुरुष आधे मील तक विदा करने साथ गये, जहां स्वामी जी ने गाड़ी को रोका और सब को धर्म का उपदेश देकर विदा किया, राव साहब स्वयं ५ मील तक स्वामी जी को

विदा करने के लिये गये।

३४—ऐसी श्रद्धा का पात्र सच्चा संन्यासी ही है।

उदयपुर के महाराणा जी स्वयं स्वामी जी से धर्मग्रन्थ पढ़ते रहे, दरबारी लोग सब मनुस्मृति के सातवें अध्याय तथा महाभारत के विशेष पर्वों की कथा सुनते रहे, यहां यज्ञ हुए, व्याख्यान हुए, शास्त्रार्थ हुए। स्वामी जी ने अपनी पुस्तकों तथा यन्त्रालय के सम्बन्ध में स्वीकार पत्र लिखा और परोपकारिणी सभा की स्थापना की, तात्पर्य्य यह कि यहां सर्व प्रकार से पूरी सफलता प्राप्त हुई, जब चलने लगे, तो महाराणा ने '२०००' दो हज़ार मुद्रिका भेंट किये। स्वामीजी ने इसे स्वीकार न किया, तब दरबार ने कहा—हम भी वापिस नहीं ले सकते, इसलिये यह वैदिक निधि में जमा कराये गये और महाराणा ने कहा कि आप यदि षट् दर्शन का टीका छपवाएं तो मैं २० हज़ार तक व्यय करूंगा। स्वामी जी ने कहा—प्रथम वेदभाष्य हो ले, फिर उनका टीका करूंगा। चलते समय महाराज ने प्रशंसा पत्र स्वामी जी के भेंट किया, और स्पष्ट शब्दों में कहा कि कथन के अनुकूल आचरण करने वाला आप के बिना कोई नहीं देखा, मुझे आपके सत्य उपदेशों से बहुत लाभ पहुंचा है।

स्वामी जी पर राजाओं तक में इस काल में यह श्रद्धा देख कर निश्चय होता है, कि यदि संन्यासी सच्चे हों तो, विद्या तथा धर्म फैलाकर सारे जगत को मोहित कर सकते

हैं, महाराणा ने सैंकड़ों रुपया स्वामी जी के साथियों को तथा धार्मिक कामों में दिया।

इसी प्रकार महाराज शाहपुराधीश स्वामी जी से पढ़ते रहे, सायंकाल के ३ घंटे आप स्वामी जी की संगत में रहते और प्रातः के प्रहर में भी प्रायः स्वामी जी के साथ रहते। विदा करते समय आपने २५०) मुद्रिका वेदभाष्य के लिये दिया, और ३०) रु० मासिक एक उपदेशक के लिये देना स्वीकार किया, आप बहुत दूर तक विदा करते समय स्वामीजी के साथ गये और मानपत्र दिया कि २॥ मास आप का सत्संग किया तथापि मन की तृप्ति नहीं हुई। परन्तु जोधपुराधीश आग्रह कर रहे हैं, और स्वामी जी जाने का संकल्प कर चुके हैं, इसके अतिरिक्त आप से सब स्थानों के लोगों को लाभ पहुंचना है, इसलिये मैं रोक नहीं सकता हां आशा करता हूं, कि आप शीघ्र ही पुनः पधार कर हमारे सौभाग्य का कारण होंगे।

३५—सत्य निर्णय की लगन।

सत्य असत्य के निर्णय करने की धुन में स्वामी जी हर समय निमग्न रहते थे। कोई मौलवी, पादरी, पंडित जहां मिला, उसे अपने पास बुलाकर अथवा स्वयं उसके पास पहुंचकर आपने शास्त्रार्थ अवश्य किया, यहां तक कि प्रोफ़ेसर मैक्समूलर को जर्मनी में चैलेंज दे भेजा, उसने शास्त्रार्थ न किया तो यह और बात थी स्वामी जी ने कसर नहीं छोड़ी, इसी प्रकार लुधियाने में आपने सुना, कि

पटियाले में पं० हरिशराय संस्कृत के विद्वान हैं, यह सुनते ही आप पटियाला चल दिये। रेल उन दिनों पटियाले नहीं जाती थी, इसलिये लुधियाने के डिपटी कमिश्नर साहब ने पटियाले की कौंसल आफ़ रीजंसी के नाम पत्र लिख दिया, कि आप स्वामी जी की सहायता करें। परन्तु पं० हरिशराय तीर्थों पर गये हुए थे, यह समाचार पाकर स्वामी जी रुक गये।

३६—उपहास्य युक्त तथा रुचिकर शास्त्रार्थ।

हरिद्वार कुम्भ में रोगी होने के कारण स्वामी जी ने एक दिन व्याख्यान न दिया, साधु इस घटना से अनुचित लाभ पाने के लिये स्वामी जी की ओर चल दिये कि वह इन्कार करेंगे और हम उनकी पराजय प्रसिद्ध करदेंगे। स्वामी जी खाट पर लेटे थे, परन्तु उन्हें आता देखकर उठ बैठे, और सत्कार से बैठाकर उनके आने का कारण पूछा—एक साधु जो सब से विद्वान था बोला, कि "आप से शास्त्रार्थ करने आये हैं"। स्वामी जी—"बहुत अच्छा, किसी विषय पर बात कीजिये"। साधु जी—"वेदान्त पर संवाद होगा"। स्वामी जी—"प्रथम यह समझाइये, कि वेदान्त से आपका तात्पर्य्य क्या है"। साधु जी—"तात्पर्य्य यह है कि जगत् मिथ्या है और ब्रह्म सत्य है"। स्वामीजी—"जगत् से क्या तात्पर्य्य है, कौन पदार्थ जगत् के अन्दर हैं, और मिथ्या किसे कहते हैं"। साधु जी—"परमाणु से

लेकर सूर्य्य तक जो कुछ है, जगत् है और यह सब मिथ्या अर्थात् असत्य है"। स्वामी जी—" तुम्हारा शरीर, बोलना चालना, उपदेश, गुरु, पुस्तक भी इसके अन्दर हैं अथवा नहीं" । साधु जी—" हां सब इसके अन्दर है " । स्वामी जी—"और आपका मत भी इसके अन्दर है अथवा बाहर" । साधु—"हां वह भी इसके अन्दर है" । स्वामीजी—"जब तुम स्वयं ही कहते हो कि हम,हमारा गुरु,हमारा मत, हमारी पुस्तक, हमारा उद्देश, हमारा बोलना, मिथ्या ही मिथ्या है तो हम तुमको क्या कहें ; स्वयं वादी का कथन ही उसके पक्ष का खंडन करता है, साक्षी आदि की आवश्यकता नहीं" । साधु आश्चर्य्य तथा चकित होकर लौट गये, और फिर कभी जत्था बांधकर शास्त्रार्थ करने नहीं आये ।

३७—हम न आते तो तुम धोखा खा जाते ।

अजमेर के पास एक ग्राम में कुछ साधु रहते थे, जो वाममार्गी थे और तन्त्र मन्त्रों के नाम से सिद्ध बने हुए थे। यहां के कुछ नवयुवक अजमेर कालेज में पढ़ते थे, वह उन्हें कहने लगे कि तुम्हारे मंत्र आदि सब मिथ्या हैं" साधु बोले—"हम मंत्रों की शक्ति दिखा सकते हैं" लड़के:—"अभी दिखाओ" साधु—"तुम्हारा गुरु कौन है" ल०—दयानन्द सरस्वती' साधु—"बस हम उसको ही दिखावेंगे" लड़कों ने साधुओं से दृढ़ प्रतिज्ञा करा ली, और ठाकुरों को साक्षी

ठहराकर स्वामीजी को सब बात सुनाई, उन्होंने कहा—अभी बुलालाओ, हम तो ऐसी बातों के लिये हर समय तत्पर हैं। उपस्थित भद्र पुरुषों ने कहा—"आप परीक्षा कैसे करेंगे" स्वामीजी ने उत्तर दिया—"मैं एक शीशे में जिसकी वायु निकाली न गई हो, मक्खी बंद कर दूंगा और उस शीशे को अपने पास रख उन से कहूंगा, मन्त्रों के बल से इसे मार दिखाओ, और यदि वह कहेंगे कि मनुष्य पर ही मंत्र चलता है तो मैं कहूंगा मेरे पर चलाओ। यह सुनकर ठाकुर और लड़के साधुओं के पास पहुंचे और उन्हें कहने लगे कि आओ और स्वामी जी को शक्ति दिखाओ, इसी कारण उन्हों ने आपको बुलाया है। वह क्रोध से बोले—चलो रे यहां कहां मंत्र रखे हैं, क्या ऐसे मंत्र दिखाये जाते हैं। जब लौटकर स्वामी जी को उन्हों ने यह वृत्तान्त सुनाया तो वह बोले—भाई तुम लोगों को बहकाने के लिये यह प्रपंच रचा था, हमारा आना होगया तो पोल खुल गया अन्यथा आप धोखा खा जाते, हमने बहुतों को ऐसा जाल फैलाये देखा है।

३८—नवीन वेदान्ती विद्वान आर्य्य बन गये।

हरिद्वार कुम्भ पर एक दिन प्रातःकाल ही आनन्दवन संन्यासी परमहंस के रूप में कफ़नी पहने सिर मुंडाये आया, दस विद्यार्थी उसके साथ थे। स्वामीजी ने बड़े चाव से आगे आकर उसका स्वागत किया और बड़े आदर से उसे अपने

आसन पर बैठाया, उसकी आयु ८० वर्ष की थी, परन्तु उसका शरीर दृढ़ तथा फुरतीला था। दोनों बैठकर मुसकराते हुए शास्त्रार्थ करने लगे, वह संस्कृत बोलते थे, विषय जीवब्रह्म की एकता का था। वार्तालाप होती रही, ११ बजे स्वामी जी को भोजन के लिये कहा गया, परन्तु साधु ने कहा—जब तक इस विषय का निर्णय न हो मैं भोजन नहीं करूंगा। तब स्वामी जी ने चारों वेद तथा अन्य ६०-६५ पुस्तकें मंगाईं, और २ बजे तक बड़ी रुचिकर तथा विद्वत्तापूर्ण बातचीत हुई, तत्पश्चात् वह शिष्यों को सम्बोधन करके बोला कि दयानन्द के मत को मैंने स्वीकार किया तुम भी ऐसा ही मानो। स्वामी जी ने उसके जाने के पश्चात् कहा—यह संस्कृत का बड़ा विद्वान है, पहिले ब्रह्म बना फिरता था, परन्तु अब हमारी भान्ति जीवब्रह्म का भेद मान गया है?

३१--मुझ पर क्षमा कीजिये।

जोतसिंह निरमला साधु हरिद्वार कुंभ पर मिला, वह जो बात करता चिढ़ाने की करता था यहां तक कि स्वामी जी के एक भक्त को क्रोध आ गया और वह बोल उठा कि "चुप रहो नहीं तो अभी मुंह दुरुस्त कर दूंगा," स्वामी जी ने कहा, तुम क्यों बुरा मनाते हो वह बात तो मुझ से करता है, दो दिन तक इसी प्रकार वह स्वामी जी से बात चीत करता रहा, और स्वामी जी प्रेम तथा मधुर वाणी से उत्तर देते रहे, तीसरे दिन जब स्वामी जी व्याख्यान से

उठे तो उस पर इतना प्रभाव पड़ा, कि वह एक दम हाथ जोड़ कर रोने लगा और स्वामी जी के चरणों पर गिर कर कहने लगा, कि मुझ पर दया कीजिये। और मेरी कठोर वाणी के लिये मुझे क्षमा कीजिये। स्वामी जी ने उसे दिलासा दिया, और पांव छुड़ा कर पास बैठा लिया और समझाते रहे, परिणाम यह हुआ कि वह दृढ़ आर्य्य बन गया; इसी प्रकार दो नागे साधु अपने कटु बचनों पर लज्जित हुए, स्वामी जी उनको भी अन्त तक नम्रता, हंस-मुख तथा प्रसन्नता से उत्तर देते रहे।

४०—केवल दिखावे का शोर।

एक दिन हरिद्वार के सब पं० तथा स्वामी गण जो विद्वान समझे जाते थे, एकत्रित हुए और सर्व सम्मति से उन्होंने स्वामी विशुद्धानंद को पत्र लिखा कि आप मध्यस्थ हों तो स्वामी दयानंद से शास्त्रार्थ करते हैं। यह पत्र ज्यों का त्यों विशुद्धानन्दजी ने स्वामीजी को भेज दिया जिन्होंने उत्तर दिया कि नियम लिख कर भेजिये, परन्तु इसके पीछे न कोई पत्र आया न नियम, किन्तु शिव और वैष्णव दोनों संप्रदायों में झगड़ा तथा जूतम पैज़ार होगया। इसके पश्चात् पं० श्रद्धाराम फलौरी तथा पं० चतुर्भुज आदि जो पृथक अड्डे जमाकर आर्य्य समाज के विरुद्ध प्रचार करते थे, सब मिल गये कि संगठित रीति से बल लगा कर स्वामी का मुकाबला करें। इच्छा उनकी यह थी कि किसी अपने ही स्थान में शास्त्रार्थ हो और हल्ला करके

अपना नाम करलें, परन्तु स्वामीजी ने कहा कि जनसमुदाय बहुत अधिक हो जायगा, इसलिये प्रबन्ध सरकारी होजावे जिससे लड़ाई झगड़े का भय न रहे, और शास्त्रार्थ वास्तव में उत्तम रीति से हो, परन्तु श्रद्धाराम आदि ने न माना, तब स्वामी जी ने यह कह दिया कि इन लोगों की नियत केवल दंगा करने की है, नहीं तो श्रद्धाराम आदि क्या और शास्त्रार्थ क्या, यदि विशुद्धानन्द जी ही कहदें कि यह लोग मेरे मुकाबले में वेद को समझते हैं तो मैं स्वीकार करता हूं, और विशुद्धानन्द जी को ही मध्यस्थ मानता हूं। एक पत्र स्वामीजी ने विशुद्धानन्द जी को ही भी लिखा जिसे पढ़ते ही उन्होंने श्रद्धाराम और चतुर्भुज को बहुत गालियां दीं और ऐसे अपशब्द कहे कि जिनके वर्णन करने से ही लज्जा आती है। अन्त में उन्हों ने श्रद्धाराम आदि को कह दिया कि तुम दयानन्द के सामने एक अक्षर नहीं जानते, मैं तुम्हारे शास्त्रार्थ में मध्यस्थ नहीं होसकता, स्वामी जी को भी उन्हों ने लिखा कि बहुत लोग फ़िसाद के लिये इकट्ठे हुए हैं, उनका आप ध्यान न करें। और मैं उस सभा का मध्यस्थ होने योग्य नहीं कि जिसमें आप जैसे विद्वान शास्त्रार्थ करें. यह पत्र भरी सभा के सामने सुनाया गया और फिर किसी ने सभा का नाम नहीं लिया,हां एक चाल चली गई कि पर्भी के तीन दिन पूर्व सभा लगा मेज़ पर पुस्तक रख कहा गया, कि दयानन्द यहां आकर शास्त्रार्थ न करे तो हारा। एक पत्र पर बहुतों के हस्ताक्षर कराके स्वामी जी को भेजा गया कि आप यहां

आकर वक्तृता करें, इससे सब को निश्चय होजायगा, कि आपका कथन वेद शास्त्र के अनुसार है अथवा नहीं, अर्थात सत्य सिद्ध हुआ तो हम सब आपके अनुयाई हो जायेंगे, और आर्य्यवर्त को बड़ा लाभ होगा। यह पत्र जिस समय भेजा गया उस समय यह शब्द सुनाई देते थे, कि यदि वह यहां आजाय तो उसको एक पत्थर मारो, कुछ परवाह नहीं यदि उसका सिर फूट जाय, एक फांसी होजायगा। स्वामी जी ने उत्तर में लिखा, शास्त्रार्थ से मुझे किसी समय भय नहीं हर समय उद्यत हूं, परन्तु प्रबन्धकर्त्ता कोई राज पुरुष हो, दूसरे पंडितों के सिवाय शास्त्रार्थ में कोई अनपढ़ ब्राह्मण न हो, और स्थान ऐसा हो जो किसी पक्ष वाले का न हो, आप जो स्थान कहते हैं वहां पर आने से मैं अपने जीवन की हानि समझता हूं, मुझे शरीरपात होजाने का शोक नहीं परन्तु इस बात का शोक है कि जिस परोपकार के वास्ते इस शरीर की रक्षा करता हूं, वह रह जायगा, इस कारण वहां आना में उचित नहीं समझता। इस पत्र का कोई उत्तर नहीं आया, और आता भी क्या, शास्त्रार्थ का आशा थोड़ा ही था। श्रीधर ने श्रद्धाराम आदि को सुझा दिया था कि भाइयों! दयानन्द परदेश का रहने वाला, वेद का ज्ञाता, बड़ा बुद्धिमान और अच्छा व्याख्याता है। वेद का भाष्य भी उसने किया है, तुम केवल व्याकरणी हो, इसलिये वहां न जाओ। मुफ्त में नीचा देखोगे। सो ऐसा ही हुआ, किसी ने शास्त्रार्थ न किया केवल जगत दिखावे तथा लड़ाई दंगे के लिये पत्र भेज रहे थे।

४१—ईसाइयों के गिरजे में मनुष्य पूजा का खंडन।

जब स्वामी जी बरेली में वह प्रसिद्ध व्याख्यान दे चुके, जिस में उन्हों ने निर्भय होकर कलैक्टर तथा कमिश्नर तक को लताड़ बताई, तब उठते ही पूछा—भक्त स्काट आज दिखाई नहीं देते। पादरी स्काट साहब व्याख्यान में कभी अनउपस्थित न होते थे, और बड़े प्रेम के कारण स्वामीजी उन्हें भक्त कहते थे। जब यह जाना कि आज आदित्यवार है, इसलिये वह नहीं आये क्योंकि वह इतवार को गिरजे में उपदेश करते हैं तो नीचे उतरते ही कहने लगे चलो भक्त स्काट का गिरजा देख आवें, लोग बहुत चले गये थे तथापि तीन चार सौ पुरुषों सहित गिरजे में पहुंचे। स्काट का व्याख्यान समाप्त ही हुआ था, स्वामी जी को देखते ही वह नीचे उतरा और वेदी पर उन्हें लेजाकर निवेदन किया कि आप कुछ उपदेश करें। स्वामी जी ने वहां ही मनुष्य पूजा का भले प्रकार खंडन किया, जिसे सब चुपचाप सुनते रहे।

शिक्षा।

पत्थरों पर सिर रगड़ने से प्रभु मिलता नहीं।
शेख क्यों काबे में जा, माथा घिसाने लग गया॥

मूर्ति पूजा, मृतक श्राद्ध आदि कुरीतियां जिनका ऋषि दयानन्द ने खंडन किया, वेद में उनका किंचित्मात्र भी

विधान नहीं। दुर्भाग्यवश कई कारणों से वेद विरुद्ध मर्यादाएं चल पड़ी हैं, और बहुत काल व्यतीत हो जाने से मनुष्यों के मनों में घर कर चुकी हैं; जिससे वेदानुकूल उपदेश को यथार्थ रूप में समझना कठिन हो जाता है, और सरल हृदय पुरुषों को कुछ काल के लिये स्वार्थी लोग सहज से बहका सकते हैं, वरंच वास्तव में ऋषि दयानन्द ने केवल अवैदक बातों को हटाकर प्राणायाम, योगाभ्यास की सच्ची रीति तथा यज्ञ संस्कार आदि की सच्ची सनातन मर्यादाएं स्थापित करने में अपनी सारी शक्तियां लगाई हैं। और यही सब सत्य पुरुषों का कर्तव्य है, कि मनुष्यमात्र को कुमार्गगामी होने से बचावें और असत्य का खंडन तथा सत्य का मंडन कर उन्हें वेद मार्ग पर चलावें।

मृत्यु का पराजय ।

उसे हमने बहुत ढूंडा न पाया ।
यदि पाया तो खोज अपना न पाया ॥

प्रत्येक कठिनाई परिश्रम करने पर सुगम हो सकती है, हर आदि का अन्त होता है, इसी प्रकार प्रत्येक रोग की औषधि, प्रत्येक प्रश्न का उत्तर विद्यमान हैं, साधारण पुरुष मनुष्य के जीवन मृत्यु के प्रश्नों को भुला चुके हैं, इसीलिये उनके हल करने की न उन्हें रुचि है, न योग्यता, न उन्हें जीवन के वास्तविक तत्त्व का बोध है,न मृत्यु सम्बन्धी ज्ञान है। उनके मनों में तुच्छ विषय सुख की कामनाएं निवास करती हैं, परन्तु महान् तथा सत्य पुरुष विषय सुख आदि को इन महान् प्रश्नों की अपेक्षा तुच्छ समझते हैं, और उन्हें लात मारे रहते हैं, उनके जीवन में उद्देश्य तथा उसकी पूर्ति दोनों का पता चलता है, अर्थात् प्रश्न के साथ उत्तर भी मिलता है, ईश्वर प्राप्ति जहां साधारण पुरुषों के लिये असंभव है वहां योगी महात्मा अहंकार त्याग, शरीर आदि से बेसुध हो उसकी प्रेम भरी गोद में आनन्द लेते हैं, सच कहा है:—

ज्ञान चक्षु में समाया सत्चित आनन्द जब ।
कौन है फिर इस अनित्य संसार को जो देखता ।

इसी प्रकार जिस मृत्यु को दुस्साध्य रोग कहा जाता है, असाधरण महान आत्माओं के लिये वह हाथ जोड़े खड़ी होती है, ऋषि दयानन्द के जीवन का आरंभ महादेव को साक्षात् देखने तथा मृत्यु दुःख की औषधि खोजने के दो प्रश्नों से हुआ और उसकी समाप्ति ने दोनों प्रश्नों का ठीक उत्तर देदिया, जीवन भर में जितने आक्रमण हुए, वह उस तपस्वी आत्मा को इतना बलवान कर गये कि उसके सामने रोग शोक की कुछ गणना न रही, न विष उसे डुला सकी, न शरीर के रोम २ के दुःख उसे रुलासके और न मृत्यु उसकी शान्ति में बाधा डाल सकी, ईश्वर आनन्द में जहां चित वर्त रहा हो वहां मृत्यु का दुःख कैसे पास फटक सकता है। ऋषि दयानन्द का अन्तिम दृश्य स्पष्ट शब्दों में साक्षी देता था कि वह मृत्यु पर विजय पाने की औषधि अपने जीवन में दर्शा गये।

१—धर्मरक्षक को विष मिल गया।

जोधपुर में महाराज ने बड़ी श्रद्धा से स्वामी जी को बुलाया और वह वहां निर्भय होकर सत्य का मंडन तथा असत्य का खण्डन करते रहे। कुछ दिनों पश्चात् आपको यह समाचार मिला कि महाराज ने एक नन्हीजान वेश्या रक्खी हुई है और राजकार्य्य उसकी सम्मति से होता है। एक दिन स्वामी जी महाराज से मिलने गये तो उन्हों ने अपनी आंख से देखा कि उनके आने पर महाराज ने उसका चौपान उठवा दिया, एक ओर कंधा झुका तो महाराज ने अपना

कंधा अथवा हाथ लगा दिया। अपने देश के राजाओं की यह अवस्था देखकर उस सच्चे हितैषी के मन पर बहुत आघात लगा, उपदेश के समय आपने स्पष्ट कह दिया, कि राजपुरुष सिंह के समान हैं, और वेश्या कुतिया के तुल्य, सिंहों को कदाचित् न चाहिये कि वह कुतिया से समागम करें, ऐसी कुतियों पर आसक्त होना श्वान स्वभाव पुरुषों का ही काम है, न कि अच्छे मनुष्यों का, और लौंडों पर मोहित होने वाले कव्वे तथा शूकर ही होते हैं। सहस्रशः धिक्कार है ऐसे पुरुषों पर! इसके पश्चात् स्वामीजी ने मिलने जुलने वालों से पुनः २ कहा कि वेश्याओं के पीछे मरने वाले बहुत घृणा के पात्र हैं, भारत के प्राचीन राजा शूरवीर तथा जितेन्द्रिय होते थे।

इसके अतिरिक्त आपने श्री महाराज प्रतापसिंह को पत्र लिखा कि मुझे बहुत शोक है, आप तथा बाबा साहिब आलस्य आदि में वर्तमान और रोगी शरीर वाले हैं। १६ लाख से अधिक मनुष्यों की रक्षा तथा कल्याण का भार आप लोगों पर है, और सुधार बिगाड़ भी आप ही पर निर्भर है, तथापि आप अपनी आरोग्यता, शरीर रक्षा तथा आयु वृद्धि के उद्देश्य पर बहुत न्यून दृष्टि देते हैं, इत्यादि, इन सारी बातों का परिणाम यह हुआ कि महाराज उस वेश्या से कुछ घृणा करने लगे और वह स्वामी जी से बदला लेने की सोचने लगी। दूध जैसे सांप के अन्दर विष बनता है वैसे ही स्वामी जी का कथन संकुचित हृदयों में अत्याचार का बीज बना। नन्हीजान व्याख्यान का वृत्तान्त

सुनकर जल भुन ही तो गई, फिर जब महाराज को अपने से घृणा करते पाया तो लगी कहने कि स्वामी जी ने मेरे पर ग़ज़ब ढाया, ज्यों त्यों बदला लेना चाहिये। वर्तमान अन्धकार के काल में वेश्याओं के विस्तृत सम्बन्ध सब को विदित ही हैं, इस पर यहां वेश्या भी वह थी जिसने महाराज पर भी अधिकार जमा रखा था, सो अब उसने अपनी सारी शक्तियों का प्रयोग स्वामी जी के विरोध में किया, महाराज अनपढ़ ब्राह्मणों को मुंह नहीं लगाते थे, परन्तु वेश्या ब्राह्मणों को अधिक मानती और बड़ी मूर्ति पूजक थी, महता विजय सिंह चक्रांकित मत के खंडन से बहुत अप्रसन्न थे। भय्या फ़ैज़ुल्लाख़ां मुसाहिब पहिले ही कट्टर विरोधी थे, ब्राह्मण लोग भी अपनी आजीविका की हानि समझ रहे थे, उन्हें नन्हीजान की सहानुभूति का सहारा लाभकारी प्रतीत हुआ, बस फिर क्या था, कठपुतली बन गये और जो नाचे नचाया गया नाचे। कई विधियों से महर्षि को कष्ट दिये गये, पहिले तो जो कहार स्वामी जी का प्रेम तथा विश्वासपात्र था और जो बड़ी प्रीति से सेवा करता था, छः सात सौ का माल लेकर भाग गया, जो ब्रह्मचारी द्वार पर सोता था, उसे उस रात्री को वहां न सोने दिया, प्रातःकाल ही चोरी का शोर हो गया, और महाराज ने आज्ञा दी कि जैसे भी बने उस कहार को ढूंढकर लाया जावे। वह स्वयं इस राज के कठिन मार्ग तथा घाटियों से अनभिज्ञ था तिस पर भी आश्चर्य्य था कि वह बीच ही बीच में गुम होगया और कुछ पता न चला। इसी

प्रकार इस शत्रु दल के मनसूबे के कारण पहिरे वाले तथा दारोग़ा आदि भी मन से विरोध करते रहते थे। स्वामी जी ताड़ते तो यह हाथ जोड़कर सामने तो ऐसा कहते कि "हुक्म" और पीछे परस्पर हंसते, इसलिये स्वामी जी का विश्वास सब से उठ गया, जिन पर चोरी की शंका थी, उनके बयान अधिकारियों के द्वारा लिये गये, परन्तु उन्हें जेल में न भिजवाया गया, ऐसे सब कारणों से स्वामी जी इस नगर से चले जाने का विचार ही करते थे कि रसोइया के द्वारा दूध में बारीक पीसा हुआ कांच मिलाकर पिलाया गया। उसी रात्री को उदर शूल तथा पेचिश का बहुत ज़ोर हुआ। २ बार वमन हुई, परन्तु स्वामी जी ने किसी को जगाया नहीं, स्वयं ही जल से कुल्लाकर सोगये। बहुत दिन चढ़े उठे तो फिर वमन हुई जिस पर स्वामी जी को कुछ संदेह हुआ, थोड़ी देर में द्वितीयवार उलटी आई तो कहने लगे हमारा जी उलटा आता है, शीघ्र ही अग्निकुंड में धूप डाल और सुगन्ध फैलाकर घृत से दुर्गन्ध को निकाल दो, इसके पश्चात् पेट में शूलचला। तब स्वामी जी ने दोशांदा पिया, जिससे दस्तों की छेड़ छाड़ होगई, परन्तु शूल को आराम न हुआ। तब डाक्टर सूरजमल जी को बुलाया गया जिन्हों ने वमन बन्द करने की औषधी दी और जब स्वामी जी ने कहा कि शूल अत्यन्त हो रहा है, और तृषा भी लगी है तब डाक्टर जी ने तृषा की औषधि देकर कहा—इस रोग का कारण यही है कि इस भयानक देश के जोधपुर नगर में ऐसे महात्मा का निवास हुआ, नहीं तो यह शूल काहे

को जमता।

उपाय करने पर भी शूल बढ़ता हुआ शरीर के सब अंगों में प्रविष्ट हुआ श्वास के साथ बड़े वेग से चलता था। परन्तु ऐसे दुःख में भी स्वामी जी ने ईश्वर ध्यान के उपरान्त कभी हाय तक न की, सायंकाल को महाराज को सूचना मिली, उन्हों ने तुरन्त ही डाक्टर अलीमरदानखां को इलाज के लिये भिजवाया, परन्तु डाक्टर जी का इलाज उलटा ही पड़ता गया।

आर्य्य पुरुषों को सूचना देने का कोई प्रबन्ध न हुआ, १३ दिन पश्चात् आर्य्य समाज अजमेर के एक सभासद ने समाचार पत्र में स्वामीजी के रोगी होने का समाचार पढ़कर सब को सूचना दी। परन्तु वह समझे कि शत्रु लोग जिस प्रकार पहिले मिथ्या बातें उड़ा देते थे, अब भी वैसी ही बात होगी, यदि वास्तव में ऐसा होता तो इस समय तारों की भर मार होजाती। तथापि उचित जानकर एक सभासद को स्वामीजी के पास भेजा गया जो उन्हें देखते ही बड़े आश्चर्य के साथ बोला-भगवन! यह क्या हुआ और अधिक शोक यह कि हमें सूचना भी नहीं हुई। स्वामी जी बोले-रोग का क्या लिखते यह तो शरीर का धर्म ही है, साथ ही आप को कष्ट भी होता, इस सभासद के द्वारा अजमेर में और वहां से सारे देश में यह ख़बर फैल गई तारों पर तांते आने लगीं और आर्य्य लोग स्वयं पहुंचने लगे। इसके पश्चात् निश्चय हुआ कि स्वामी जी को आबू पर्वत पर ले चलो। इस पर स्वामी जी ने महाराज को

पत्र लिखा, परन्तु उन्होंने उत्तर दिया कि इस दशा में जाने से मेरा अपयश होगा। तो भी स्वामी जी ने जाने का ही विचार स्थिर रखा और इस बीच में महाराज ने सिविल सर्जन को इलाज में शरीक किया तो उनकी सम्मति भी आबू की ही ठहरी। यह शोक की बात है, कि दो सप्ताह तक रोग को दिन प्रति दिन बढ़ता देखकर भी इलाज बदला न गया और जब सिविल सर्जन साहब इलाज करने लगे, तब भी उस डाक्टर को शरीक किया गया बात केवल यह थी कि हितैषी पुरुष तो लज्जाके कारण बाहर कुछ कह नहीं सकते थे, और रोगी के संरक्षक वह बन रहे थे जो उसका मरना मन से चाहते थे। निदान आबू जाने की तय्यारी हुई, महाराज ने बहुत शोक प्रगट किया और लज्जा अनुभव की परन्तु अब रोकना उचित न था, इसलिये २॥ सहस्र मुद्रिका तथा दुशाले भेंट करके बड़े सन्मान पूर्वक स्वामी जी को विदा किया और सुख पूर्वक आबू पहुंचने का सारा प्रबन्ध कर दिया, जिस से ज्यों त्यों स्वामी जी आबू पहुंच गये। मार्ग में अजमेर के एक प्रसिद्ध हकीम से जो औषधि मंगाई गई, उससे तृषा आदि की निवृत्ति रही, और आबू रोड स्टेशन से पहाड़ पर चढ़ते हुए जालंधर प्रान्त के डाक्टर लक्ष्मणदास मिल गये। यद्यपि उस समय वह अपने उच्चाधिकारी की आज्ञा से अजमेर जा रहे थे, तथापि स्वामीजी को अधिक रोगी देखकर वह उनके साथ ही आबू लौट आये और आपके दो दिन के इलाज से ही हिचकी जाती रही, दस्त बंद होगये, परन्तु उनके अफ़सर ने उन्हें बहुत

आग्रह तथा बलपूर्वक आज्ञा देकर अजमेर भेज दिया। ठहरने के लिये आपने बार २ निवेदन किया, अस्तीफ़ा तक दे दिया, परन्तु पेश न गई, बिचारे बहुत दुःख मनाते हुए चले। मार्ग में सामाजिक पुरुष मिले तो उन्हें वृत्तान्त सुनाते हुए आपके नेत्रों में अश्रु भर आये और कहने लगे कि मैं क्या करूं लाचार हूं। दो तीन दिन के लिये सब औषधि तथा अनुपान आदि का निश्चय कर आया हूं, आप लोग जैसे बने उन्हें अजमेर ले आवें।

आबू में चिकित्सा बराबर होती रही, महाराज जोधपुराधीश की आज्ञानुसार डाक्टर रेडम सिविल सर्जन साहब और बाबू गुरुचरणसिंह साहब असिस्टैन्ट सर्जन कितनी बार आते रहे और यह देखकर कि रोग घट रहा है वह अजमेर जाने के विरुद्ध थे, स्वामीजी की भी यही इच्छा थी इसलिये वह टालते जाते थे, परन्तु आर्य्यों ने आग्रह किया, डाक्टर लक्ष्मणदासजी की ताकीद थी और उन पर विश्वास भी अधिक था इस कारण अजमेर जाना उन्हों ने स्वीकार कर लिया, हां यह कह दिया कि आप लोगों की रुचि देखकर जाता हूं, वरंच मेरा मन नहीं चाहता। निदान २६ अक्टूबर सन् १८८३ को अजमेर की ओर चल दिये स्टेशन पर बहुत लोग दर्शन के लिये पहुंचे और उनकी अवस्था को देखकर घबरा गये, चार पुरुषों ने बड़ी सावधानी से आपको गाड़ी से उतारा तो उतरते ही मूर्च्छा आगई, फिर आपको पालकी में लिटाया गया, जिसे उठाकर कहार धीरे २ कोठी पर ले आये, डाक्टर लक्ष्मणदासजी की

चिकित्सा होने लगी परन्तु शोक कि अब कोई औषधी काट न करती थी। कष्ट अधिक ही अधिक बढ़ रहा था, हाथ पांव तथा सारे अंगों पर फफोले पड़ गये थे, सारे छालों को गर्म वस्त्र से टकोर की जाती थी, कई स्थानों से पीप और कहीं २ से रुद्र टपकता था। गले से नाभी तक छाले पड़ गये थे, एक आर्य्य ने गला बैठ जाने का कारण पूछा तो आपने मुंह खोलकर दिखाया और धीमी स्वर से बताया कि नाभी तक छाले ही छाले पड़गये हैं। श्वास जल्द२ चलता था, जिसे स्वामीजी रोक कर फिर शीघ्र ही ज़ोर से निकाल देते थे, और कुछ ईश्वर का ध्यान भी करते थे, परन्तु धैर्य्य और सहन शक्ति का क्या ही कहना था, आप किसी प्रकार का कष्ट प्रगट न करते थे, निरन्तर देर तक बैठकर टकोर कराते, बीच में कभी २ केवल इतना पूछते कि जो कुछ करना था हो चुका अथवा नहीं।

२—ईश्वर तेरी इच्छा पूर्ण हो।

तुझे पाते हैं वह करते समर्पण प्राण तक हैं जो।
तेरा दर्शन है सौदा नित्य ही सर्वस्व अर्पण का॥

३० अक्टूबर १८८३ को अजमेर के बड़े डाक्टर न्यूटन महोदय को बुलाया गया, आप देखते ही बोले, कि यह पुरुष बड़ा ही कद वाला, दृढ़, धैर्य्य वान तथा रोग को सहन करने वाला है, इतना असह्य रोग और यह अपने आपको दुःखी नहीं मानता किन्तु अपने आपको संभाले हुए अब तक जीवित हैं। डाक्टर लक्ष्मणदास ने स्वामीजी का नाम बताया, तो

साहब बहादुर को शोक और भी अधिक हो गया। ख़ैर जो कुछ आपकी बुद्धि में आया आपने उपाय किया। प्रसिद्ध हकीम पीर इमामअली भी आये, परन्तु नाशवान शरीर कब तक बचाया जासकता था। जब भी अत्यन्त कष्टके समय में स्वामीजी से हाल पूछा गया तो आप ने अच्छा ही अच्छा कहा, परन्तु आज ११ बजे तो आपका गला भी खुल गया जो था अन्त का संभाला, परन्तु समझा गया आराम, स्वामीजी ने स्वयं कहा-आज जो तुम्हारा मन चाहे भोजन बनाओ, जिस पर नाना प्रकार का भोजन बना मेज़ पर सामने रखा गया, परन्तु आपने केवल एक चमचा चने का पानी लिया और सब पर दृष्टि करके कहा कि बस ले जाओ। लाला जीवनदासजी लाहौर से आये थे, पूछने लगे "महाराज कहिये शरीर की कैसी अवस्था है" उत्तर मिला "अच्छी है, एक मास के पश्चात् आज का दिन सुख का है" एक बार शंका हुई, कि स्वामीजी होश में हैं अथवा नहीं, परीक्षा के लिये पूछा गया कि स्वामीजी इस समय आप कहां हैं। उत्तर मिला, "ब्रह्म में" पीड़ा को सहारने में इतना अभ्यास था कि मस्तक पर जो छाला था उसे आप ने हाथ से रगड़ डाला, नापित से क्षौर कराया तो वह चेहरे पर उस्तरा न फेरता था, कि फोड़ों से रुधिर निकलेगा, परन्तु स्वामीजी ने कहा कुछ चिन्ता नहीं सब जगह उस्तरा फेर दो, सो ऐसा ही किया गया, इसके पश्चात् वस्त्र से स्वामी जी ने सिर को पूंछा क्योंकि स्नान से सब ने मना किया।

चार बजे के पश्चात् स्वामीजी ने आत्मानन्दजी को

बुलाया जो आकर सामने खड़े हो गये। स्वामीजी ने कहा पीछे की ओर आकर खड़े हो जाओ अथवा बैठ जाओ, आत्मानन्द जी सिरहाने आकर बैठ गये तब कहा, "आत्मानन्द ! क्या चाहते हो" ?

आत्मा०—ईश्वर से यही चाहते हैं कि आप अच्छे होजायं।

स्वा०—(कुछ ठहरकर) यह देह है इसका क्या अच्छा होगा ? फिर उसके सिर पर हाथ धरा और कहा, "आनन्द से रहना"। यही बात गोपालगिरी संन्यासी से हुई जो काशी से मिलने आये थे। यह अवस्था देखकर सब स्थानों से आए हुए पुरुष स्वामी जी के सन्मुख आखड़े हुए, स्वामी जी ने ऐसी कृपा दृष्टि से सब की ओर निहारा, जिसका लेख तथा वाणी में वर्णन होना कठिन है। वह दृष्टि मुक्त कंठ से आर्य्यों को कह रही थी, "तुम क्यों चिन्ता करते हो धैर्य्य धरना चाहिये"। इसके पश्चात् दो सौ मुद्रिका तथा दुशाले स्वामी जी ने आत्मानन्द तथा डाक्टर लक्ष्मणदास जी को दिये, परन्तु उन्हों ने लौटा दिये। उस समय आंच बज गये थे, शरीर की अवस्था पूछी गई तो बोले—अच्छी है, तेज तथा अन्धकार का भाव है। श्रोतागण उनका अभिप्राय न समझे। ५॥ बजे स्वामी जी ने पूछा कौनसा पक्ष, क्या तिथि और क्या वार है ? किसी ने कहा कृष्णपक्ष का अन्त और शुक्ल का आदि अमावस्या मंगलवार है, तब आपने छत तथा दीवारों पर दृष्टि की, फिर वेद मंत्र पढ़े, तदनन्तर संस्कृत में ईश्वर उपासना की, इसके पश्चात् भाषा

में ईश्वर गुण कथन किये और बड़े प्रेम से गायत्री मंत्र का पाठ किया, फिर हर्षित तथा प्रफुल्लित चित्त से कुछकाल समाधियुक्त रहकर नेत्र खोले और यह शब्द उच्चारण किये। "हे दयामय, हे सर्वशक्तिमान् ईश्वर, तेरी यही इच्छा है! तेरी यही इच्छा है! तेरी इच्छा पूर्ण हो अहा, मैंने अच्छी लीला की"।

इतना कहते ही करवट बदली फिर श्वास को रोककर उसे एक दम निकाल दिया।

शिक्षा।

ऋषि दयानन्द की मृत्यु सिद्ध करती है, कि अमर होने की औषधि केवल ईश्वर का साक्षात् तथा उसकी आज्ञाओं का पालन करना है, सत्य का ग्रहण, असत्य का त्याग, ब्रह्मचर्य्यादि व्रत पालन तथा तपस्वी जीवन का अनुष्ठान ईश्वरीय ज्ञान वेद द्वारा ही प्राप्त होता है, चलते फिरते, उठते बैठते, खाते पीते, सोते जागते, आत्मा का ईश्वर अर्पण रहना और निज स्वभाव ही केवल सत्य के ग्रहण तथा प्रचार का बना देना मनुष्य जीवन का सच्चा उपयोग करना है। कवि कहता है :—

यदि हर श्वास पर जगदीश का चिन्तन रखे निज मन।
तो बस मंज़िल पे पहुंचादे यही घोड़ा सवारी का॥

इस चिन्तन का आशय ईश्वर का नाम स्मरण ही नहीं किन्तु सत्य का चिन्तन, उसी का वर्णन तथा उसी के

अनुकूल आचरण करना ही ईश्वर चिन्तन है। इसी सत्याचरण से ऋषियों ने मृत्यु का प्रसन्नता पूर्वक स्वागत किया। ऋषि दयानन्द को इसी सत्य के आश्रय से मृत्यु से मिलने में भी आनन्द प्राप्त हुआ। ईश्वर करे कि प्राणत्याग का यह दृश्य भारतवासी तथा सारे भूगोल के उन सब लोगों के मनों को अपना आकर्षणीय चमत्कार दिखाए जो पाश्चात्य सभ्यता तथा वर्तमान मत मतान्तरों की कुमार्ग में ले जाने वाली शिक्षा पर लट्टू हो रहे हैं, और उन्हें उसी बल से वैदिक धर्म की ओर खींच लाए जिस से पं० गुरूदत्त जैसे योग्य, स्वतन्त्र विचार वाले नास्तिक के मन को उसने पलटा दिया। मौखिक उपदेश जहां सफल न हुए, युक्ति प्रमाण जहां उस उच्च शिक्षाशाली पुरुष को आकर्षण न कर सके वहां ऋषि दयानन्द की मृत्यु के दृश्य ने उस कट्टर नास्तिक के मन में से अविश्वास को निकाल उसके स्थान में सच्ची आस्तिकता का झण्डा गाड़ दिया।

सचमुच जिसे लोग मृत्यु कहते हैं, उसके अन्दर ही सच्चा जीवन है, आवश्यक्ता केवल यह है, कि ऋषि दयानन्द के सदृश सच्ची मौत मरना मनुष्य सीखें। विचार-शील उपदेशक लोग कहते हैं कि दीवाली की रात्री को इस महान आत्मा का शरीर से वियोग हुआ, ऐसे समय जब कि दीपमाला आरम्भ हुई, इससे शिक्षा मिलती है, कि मतमतान्तर रूप दीपक तब ही जलते हैं जब वेद का सूर्य्य लोप होता है।

इससे यह भी ज्ञात होता है कि मानवी विचार कितने भी इकट्ठे हों ईश्वरीयज्ञान का काम नहीं देसकते, जैसे अनन्त दीपक मिलकर भी सूर्य्य कासा प्रकाश नहीं देसकते, इसी से यह भी शिक्षा ग्रहण होती है, कि जहां एक २ दीपक साधारण सा प्रकाश देसकता है, वहां बहुत से दीपक मिल जांय तो सारा नगर जगमग कर सकता है इसी प्रकार अल्प विद्या तथा बल वाले पुरुष भी एक साथ प्रेम की लड़ी में परोये जायं तो सब विघ्नों का नाश करके कृतकार्य्य होसकते हैं। ऐसे अनेक उपदेश ऋषि के परलोक गमन से अपनी २ योग्यता के अनुसार सब पुरुष ले सकते हैं, परन्तु इन वाह्य दृश्यों को छोड़ यदि ऋषि के भीतर की अवस्था को कोई पुरुष अपने मन के आगे रख सके तो वह यही परिणाम निकालेगा कि उस के सब विचारों तथा संस्कारों का तार एक ईश्वर और उसके वेद ज्ञान की ओर खिच रहा है, जो पूर्ण बल से यह शिक्षा देगा, कि "हे आवागमन के चक्र में फंसे हुए, दुःखों में भटकते हुए आत्माओं! यदि ज्ञान की प्राप्ति तथा मृत्यु पर विजय पाकर सच्ची मोक्ष उपलब्ध करना चाहते हो तो केवल ईश्वर और वेद की शरण लो"।

परमात्मा से प्रार्थना है कि वह हम सब को वही बल देवे और वही बुद्धि, जिससे ऋषि दयानन्द ऐसे समय में सत्य की प्राप्ति तथा उसकी रक्षा में कृतकार्य्य हुआ जबकि मत मतान्तरों के बद्दलों ने वेद सूर्य्य का लोप कर रखा था।

और घोर अन्धकार फैल रहा था। ऐसी बुद्धि तथा बल से पुरुषार्थ करके और उस जगदीश्वर की सहायता से ही हमें पाप तथा दुख से बचकर सुख तथा शांति का मार्ग देखने का अवसर मिल सकता है।

प्रभो! कृपा करो हमें भटकने से बचाओ और ऋषि जीवन को वास्तव में हम अपना पथप्रदर्शक बना सकें, ऐसी सुमति हमें प्रदान करो। ओ३म् शम्॥

लक्ष्मण

गुरु विरजानन्द दण्डी
सन्दर्भ पुस्तकालय
पु० परिग्रहण क्रमांक 883
दयानन्द महिला महा

भारत पुस्तकालय लाहौर
नई और उपयोगी पुस्तकें।

—o—

प्रिन्स बिस्मार्क—इस पुस्तक के लेखक श्री० इन्द्र जी वेदालंकार विद्या वाचस्पति गुरुकुल कांगड़ी (हरिद्वार) हैं, काग़ज़ तथा छपाई बहुत उत्तम है, और बहुत से चित्र देकर पुस्तक की शोभा को भले प्रकार बढ़ाया गया है, आशा है पाठकगण इसे बहुत उपयोगी तथा लाभकारी पायेंगे। मू० १॥)

आर्य्य पथिक पं० लेखराम—आर्य्य समाज पर अपने प्राण तक न्यौछावर करने वाले आर्य्य मुसाफ़िर पं० लेखराम जी का यह शिक्षादायक जीवन चरित्र श्री० महात्मा मुन्शीराम जी, भूत पूर्व मुख्याधिष्ठाता गुरुकुल कांगड़ी (वर्तमान श्री स्वामी श्रद्धानन्द जी) का लिखा हुआ सब नरनारियों से पढ़ा जाने के योग्य है। इसके पाठ से सत्य धर्म्म से प्रेम बढ़ना और जीवन में उच्चता का आना आवश्यक है, बहुत थोड़ी पुस्तकें बाकी रह गई हैं शीघ्र मंगाइये। मूल्य १)

भारत पुस्तकालय, लाहौर

ऋषि जीवन कथा—इस में महर्षि स्वामी सरस्वती के जीवन चरित्र सम्बन्धी वह सब घ उत्तम रीति से लिखी गई हैं, जो पुरुष, स्त्री, ब सब के लिये शिक्षादायक हैं। उर्दू का मूल्य ॥) भाषा में ॥=)

विद्या अथवा निर्भ्रान्त ज्ञान—इस में विद्या विषय पर बहुत विस्तारपूर्वक विचार किया गया है, वर्तमान में जो विद्या के अनर्थ हो रहे हैं, उनका खंडन करके सिद्ध किया है कि वेद पर ही वास्तव में सत्य विद्या का शब्द घट सकता है, यह पुस्तक वैदिक सिद्धान्त समझने के लिये बहुत ही लाभकारी हो सकती है। मूल्य उर्दू ।=) भाषा में भी छपने वाली है। मूल्य ॥

हिन्दी		उर्दू	
आनन्द संग्रह	॥)	आनन्द संग्रह	।=)
सत्य उपदेश माला	॥।)	प्राचीन सभ्यता	॥=)
काशी यात्रा	≡)	सन्ध्या योग	≡)
संस्कृत स्वयं-शिक्षक		पुष्पांजलि	।)॥
,, १ भाग	१।)	सम्पूर्ण जीवन चरित्र महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती सजिल्द	
,, २ भाग	१।)		
योग सजिल्द	।)		

मैनेजर—भारत पुस्तकालय, लाहौर।